प्राणनाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य

प्राणनाथ

सम्प्रदाय एवं साहित्य

[गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध]

डॉ० नरेश पंड्या, एम.ए., पी-एच डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गुरुकुल महिला महाविद्यालय,
पोरबन्दर (गुजरात)

पंचशील प्रकाशन, जयपुर-३

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता,
जयपुर-३०२००३
प्रकाशनवर्ष : नवम्बर, १९७३
मूल्य : पैंतीस रुपया
मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स
फिल्म कॉलोनी, जयपुर-३०२००३

स्वर्गीय पूज्य पिता बलवन्तराय
और
पूज्य माता सावित्री
तथा
धर्म प्रेरक आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज
को
सादर

—नरेश

प्राक्कथन

मध्यकालीन सन्तो एवम् भक्तों ने भारत की विभिन्न भाषासाहित्यों के सहारे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक नेताओं के रूप में अपूर्व योगदान दिया है। हिन्दी–साहित्य मे उनमे से कई सन्तो या भक्तों की हिन्दीवाणी का अध्ययन हो चुका है, हो रहा है। लेकिन स्वामी प्राणनाथ की समग्र बानियो को लेकर हिन्दी-साहित्य मे आलोचनात्मक एवम् सशोधनात्मक अध्ययन आजतक नहीं हुआ। इस शोध-प्रबन्ध से उस कमी को दूर करने का मेरा विनम्र प्रयत्न रहा है।

प्रेरणा

स्वामी प्राणनाथ की वाणी से मेरा परिचय भले ही वयस्क होने पर हुआ। लेकिन, जामनगर का प्रणामी मंदिर—खिजडा मंदिर और स्वामी प्राणनाथ मेरे लिए अपरिचित नही थे। सयोग की बात है कि उनकी जन्म भूमि जामनगर मेरी भी जन्म भूमि है। अतः साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते उनके प्रति मेरा आकर्षित होना अस्वाभाविक नही है।

हिन्दी साहित्य मे सूरदास, तुलसीदास, कबीर आदि को लेकर अनुसन्धान कार्य बहुत ही हुआ है। इन सशोधन कार्यों ने मुझे इस विषय का सुझाव दिया। फिर भी मेरे अस्पष्ट मस्तिष्क को प्रकाशित-पथ दिखाने का श्रेय डा० विजयेन्द्र स्नातक के प्रथिनिबन्ध "राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य" को ही दिया जा सकता है। उक्त ग्रन्थ ने मुझे स्वामी प्राणनाथ और उनके सम्प्रदाय पर अनुसन्धान कार्य करने की प्रेरणा दी।

सामग्रीसंकलन के सूत्र

स्वामी प्राणनाथ का अध्ययन करने के लिए इसी सम्प्रदाय के महन्तो, आचार्यों, भक्तो आदि के प्रकाशित एवम् अप्रकाशित वाणी-सग्रह, छोटी-मोटी किताबें और उनके ग्रन्थागार, तथा अन्य विद्वानो की गवेषणात्मक और आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध होती है।

स्वामी प्राणनाथ की बानियो को भक्त या सन्तवाणी-सग्रहों मे विशेषतः स्थान नहीं मिला। गुजराती भाषा के "बृहद काव्य दोहन", और "प्राचीन काव्य

सुधा "जैसे काव्य-संग्रहों मे "इन्द्रामती" नाम से उनकी रचनाओं के अंशों को स्थान मिला है। लेकिन उनकी समग्र वाणी आज तक मंदिरों के ग्रन्थागारों मे सड़ती ही रही। यह बात स्पष्ट है कि प्रणामी सम्प्रदाय के आचार्यों एवम् अनुयायियों ने उनकी वाणी को पूजनीय मानते हुए छिपाए रखा है। इसतः अवश्य हुआ कि दुर्दशा में भी उनका समग्र वाणी साहित्य विशेषतः साम्प्रदायिक मन्दिरों में सुरक्षित रहा है।

प्रो० विल्सन ने अपने "हिन्दू धर्म" (Religions of the Hindus) नामक प्रबन्ध में स्वामी प्राणनाथ या उनके सम्प्रदाय का नामोल्लेख तो किया है। लेकिन, एफ० एस० ग्राउज ने ही सर्वप्रथम स्वामी प्राणनाथ की रचना "क़यामतनामा" किसी करकदास नामक व्यक्ति से प्राप्त होने पर "एसियाटिक सोसाइटी आव बंगाल" की रिपोर्ट में इस विषय पर प्रकाश डाला। हिन्दी के विद्वानों में से मिश्रबन्धु, डा० हीरालाल, डा० श्यामसुन्दरदास, डा० बड़थ्वाल, डा० रामकुमार वर्मा, प० परशुराम चतुर्वेदी, प्रो० मातावदल जायसवाल, डा० *त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ,* डा० गोवर्द्धन शर्मा, डा० अम्बाशंकर नागर, डा० रामकुमार गुप्त आदि ने स्वामी प्राणनाथ या प्रणामी सम्प्रदाय पर थोड़ा-बहुत लिखा है। लेकिन उनके समग्र जीवन और साहित्य को लेकर सर्व शुद्ध सामग्री कहीं नहीं मिलती : विशेषतः डा० बड़थ्वाल ने सर्व प्रथम विस्तार से उनके जीवन और साहित्य पर आलोचनात्मक सामग्री देकर हिन्दी के कई विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। गुजराती साहित्य मे श्री डाह्याभाई देरासरी, श्री जयानन्द दवे, प्रो० अमृत पंड्या, श्री दुर्गाशंकर शास्त्री, श्री के० का० शास्त्री, श्री रमणिक देसाई आदि ने बहुत ही अल्पांश में उनके विषय में गवेषणात्मक और आलोचनात्मक सामग्री दी है। उक्त समग्र उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने का सुअवसर इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है। तत्सम्बन्धी हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी में समग्र उपलब्ध साहित्य का गहरा अध्ययन करने की चेष्टा मैंने की है और साम्प्रदायिक साहित्य-प्रकाशित व अप्रकाशित भी मैंने परखा है। यही नहीं स्वामी प्राणनाथ और उनके सम्प्रदाय के बारे में जानकारी रखने वाले विद्वानों तथा सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त पण्डितों, साम्प्रदायिक-परम्परा को जानने और जीने वाले भाविक भक्तों तथा साम्प्रदायिक मन्दिरों के अधिष्ठाताओं से भी मैंने प्रत्यक्ष और पत्र द्वारा पहुँच कर जानकारी हासिल करने की चेष्टा की है और इस कठिन कार्य में सफल हुआ हूँ। मैंने अपने प्रस्तुत अध्ययन का आधार मूल सामग्री को ही बनाया है और *यथासंभव वैज्ञानिक-दृष्टि से नीरक्षीर-विवेक का यत्न किया है। किसी भी* सम्प्रदाय पर काम करते समय कल्पना और तथ्य, इतिहास और अनुश्रुति, वास्तविकता और धर्म-भावना के व्यूह से बचना सरल नहीं होता। मेरा प्रयास यही रहा है कि अध्ययन पूर्णतः वैज्ञानिक बन सके।

स्वामी प्राणनाथ के जीवन और कृतित्व उनके सिद्धान्त, साहित्य व धार्मिक उपलब्धि पर पहले पहल ही विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। यद्यपि गुजराती हिन्दी में कतिपय विद्वानों ने इस दिशा में थोड़ा-बहुत कार्य किया भी है जिससे प्रस्तुत लेखक ने साभार लाभ भी उठाया है। किन्तु सर्वांगपूर्ण अध्ययन की चेष्टा पहली बार की जा रही है। यही मेरा प्रयास रहा है।

प्रयत्न और कठिनाइयाँ

इस अध्ययन का कार्य प्रारम्भ करने के साथ ही स्वामी प्राणनाथ की वाणी और प्राणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से जानने का प्रश्न मेरे लिए उपस्थित हुआ। लेकिन साम्प्रदायिक साहित्य उपलब्ध करना अध्ययन से कठिन निकला। अन्यत्र कहा गया है कि प्रणामी सम्प्रदाय और स्वामी प्राणनाथ का सम्पूर्ण साहित्य ग्रन्थागार में सड़ रहा है। परन्तु सम्प्रदाय के आचार्यों और अनुयायी अन्य धर्मों के हाथों में अपने पूज्य साहित्य को नहीं जाने देते। लेकिन मैं पूजनीय आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज, श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी महाराज, पंडित प्यारेलालजी, श्री मोहनमुकुन्द प्रणामी, श्री रणछोड़दास वीरजी, श्री मंगलदासजी महाराज, श्री कन्हैयालाल भट्ट आदि उदारमतवादी साम्प्रदायिक विद्वानों से स्वामी प्राणनाथ की रचनाएँ और सम्प्रदाय का साहित्य प्राप्त कर सका हूँ। वैसे भी इस सम्प्रदाय का साहित्य अधिक प्रकाशित नहीं हुआ और जो प्रकाशित हुआ भी है उसे कहाँ तक प्रामाणिक माना जाए यह भी समस्या बनी रही। स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के लिए मैं मूलतः जामनगर, भरोड़ा-ग्रोड़ और कणजरी के मन्दिरों पर ही आधारित रहा हूँ। इन रचनाओं के प्रतिलिपिकारों ने अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ा। हां, शब्दों का थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ है। लेकिन पाठभेद की कोई विशेष परेशानी मुझे नहीं उठानी पड़ी। उनकी रचनाओं के विभिन्न अंश "प्रेमपाठ" "प्रकाश" "कलश" "षट्ऋतु" "रास" के रूप में प्रकाशित हुए हैं। अभी-अभी प्रो० माताबदल जायसवाल और श्री मोहनमुकुन्द प्रणामी ने परिश्रम के साथ "श्री प्राणनाथ वचनामृत" नामक ग्रन्थ में उनकी रचनाओं को ग्रन्थस्थ किया है। अतः मैंने जहाँ से उनकी रचनाएँ मिली हैं उन सभी का उपयोग किया है।

सीमाएँ और विशेषताएँ

जैसा कि अन्यत्र निर्देशित किया जा चुका है, प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय पर प्रकाशित साहित्य बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध होता है। अत्यल्प समीक्षात्मक साहित्य, अधिकृत सामग्री का अभाव और साम्प्रदायिक कट्टरता ने काम को दुरूह बना दिया है। प्रस्तोता ने यथाशक्ति कोई भी क्षेत्र असस्पर्शित नहीं छोड़ा।

सम्प्रदाय मे अन्य सन्तो एवम् भक्तो द्वारा भी साहित्य-रचना विपुल परिमाण मे हुई है। इस सम्प्रदाय की "बीतक" परम्परा—स्वामी प्राणनाथ की काव्यमय जीवनी की पद्धति उल्लेखनीय है। शायद ही अन्य किसी सम्प्रदाय मे जीवनी-साहित्य इतना समृद्ध हो। हमे अपने विषय की परिसीमा के अनुसार इस परम्परा का यथास्थान उल्लेख करके ही सतोष कर लेना पड़ा है। इसी प्रकार हमें प्राणनाथ-परवर्ती सन्तो एवम् भक्तों के साहित्य की परम्परा को विकासात्मक एवम् ऐतिहासिक आधार पर ही ग्रहण करना पड़ा है। फिर भी साहित्यिक दृष्टि से उस साहित्य का विधिवत् मूल्याकन करने के लिए अभी भी अवकाश है।

प्रबन्ध-परिचय

प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच अध्यायों मे विभक्त है।

प्रथम अध्याय मे स्वामी प्राणनाथ के जीवन-चरित्र पर विस्तार से विचार किया गया है और उनके जीवन से सम्बद्ध सभी उपलब्ध सामग्री, साम्प्रदायिक मान्यताएँ और अनुश्रुति के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं। यह अध्याय ११ उपविभागो मे—(अ) जन्म स्थान और जन्म सवत, (आ) मिहिरराज प्राणनाथ, इन्द्रावती, महामति, (इ) जाति, पारिवारिक जीवन और शिक्षा, (ई) गुरु देवचन्दजी से मुलाकात, (उ) प्रारम्भिक सेवाकार्य (ऊ) यात्राएँ धर्म प्रचार और प्रसार, (ए) चमत्कारी प्रसग, (ऐ) बिहारी-प्राणनाथ मुलाकात, (ओ) अन्तिम समय और मृत्यु स्थान, (औ) प्रमुख शिष्य, (अं) प्राणनाथ की रचनाएँ—विभक्त किया गया है। उक्त सभी तत्वो पर विभिन्न विद्वानो के मतो का परीक्षण करते हुए यथासाध्य निष्पक्ष रह कर अपना मत देने का दुस्साहस भी किया है। सभी तत्वों को वैज्ञानिक दृष्टि से सोच-समझ कर देखा-परखा गया है।

द्वितीय अध्याय मे स्वामी प्राणनाथ की पूर्ववर्ती एवम् समकालीन राजनीतिक, सास्कृतिक तथा विभिन्न धर्ममत और सतमत का दिग्दर्शन कराते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि उक्त विभिन्न परिस्थितियो का आलोच्य सन्त-कवि के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर कैसा और कितना प्रभाव पडा है। यह अध्याय प्रमुख रूप से दो उपविभागो—(अ) प्रेरणाएँ और परिस्थितियाँ, और (आ) प्रणामी सम्प्रदाय और उसका विकास—मे विभक्त किया गया है।

तृतीय अध्याय प्रणामी सम्प्रदाय के साहित्य का परिचायक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे इस सम्प्रदाय के स्वामी प्राणनाथ के अतिरिक्त अन्य भक्त-कवियो का सामान्य नामोल्लेख हुआ है या अन्य सम्प्रदाय के रूप में उनको मान लिया गया है। उन भक्तों-सन्तो के समग्र साहित्य का परिचय आज तक एक ही स्थान पर कहीं भी नही मिलता। इस अध्याय मे यह सर्व प्रथम मौलिक प्रयत्न

किया गया है। यह अध्याय भी दो उपविभागों—(अ) प्राणनाथ पूर्व साहित्य, और (आ) प्राणनाथ-परवर्ती साहित्य—में विभक्त किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के आधार पर उनकी दार्शनिक विचारधारा को विविध दर्शनों के साथ तुलनात्मक ढंग से देखा-परखा गया है। इस संदर्भ में भारतीय अद्वैतमतदर्शन, इस्लाम धर्म, सूफीमत, यहूदी धर्म आदि पर विवेचन करते हुए प्रणामी और प्राणनाथ के दार्शनिक विचारों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उनके दार्शनिक विचारों के बारे में प्रचलित मान्यताओं का सप्रमाण खंडन भी करना पड़ा है। साथ-ही-साथ उनकी रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन भी इसी अध्याय में किया गया है। भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से उनकी रचनाओं में क्या साहित्यिकता है—यही निष्पक्ष दृष्टि से देखा गया है। यह अध्याय भी मुख्य रूप से दो उपविभागों—(अ) स्वामी प्राणनाथ की दार्शनिक विचार धारा, और (आ) स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन—में विभक्त किया गया है।

पंचम अध्याय में स्वामी प्राणनाथ का समग्र रूप से अवलोकन किया गया है तथा उनके योगदान का मूल्यांकन किया गया है। उनके योगदान को सामाजिक विचारधारा, धार्मिक सहिष्णुता, राजनीतिक आदर्श, साहित्य एवम् भाषा का महत्त्व इन पाँच तत्त्वों पर से स्पष्ट किया है।

परिशिष्ट १, २ और ३ में प्रणामी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रों जामनगर, सूरत और पन्ना में से जामनगर और सूरत की गद्दी परम्परा, प्रणामी सम्प्रदाय के मंदिरों की सूची तथा प्रणामी सम्प्रदाय के भक्त-कवियों की ग्रन्थ-सूची दी गई हैं।

इस अध्ययन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

(१) साम्प्रदायिक साहित्य, अनुश्रुति, इतिहास और परम्परा के आलोक में सबसे प्रथम स्वामी प्राणनाथ के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इस क्षेत्र में हमें अनेक भ्रामक धारणाओं का खंडन करना पड़ा है और हमने सप्रमाण मान्यताएँ स्थापित की हैं। अब तक अज्ञात ऐसे अनेक तथ्यों का उद्घाटन हुआ है।

(२) स्वामी प्राणनाथ पर दार्शनिक दृष्टि से सम्पूर्ण रूप में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

(३) स्वामी प्राणनाथ के सम्पूर्ण साहित्य का साहित्यिक और सांस्कृतिक धरातल पर तत्कालीन परिवेश के संदर्भ में मूल्यांकन किया गया है।

(४) प्रस्तुत अध्ययन में प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक और साहित्यिक परम्परा का विस्तृत परिचय दिया गया है। ऐसा कार्य अन्यत्र किसी ने सम्भवतः नहीं किया और इस दिशा में यह सब से पहला प्रयत्न है।

आभार प्रदर्शन

मेरे इस अध्ययन-कार्य में जिन विद्वानों एवम् आचार्यों-भक्तों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता दी है उन सभी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। फिर भी जामनगर के आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज, सूरत के परमधाम वासी श्री मगनदासजी महाराज, भाटा पारा के श्री रणछोड़दास बीरजी, इलाहाबाद के श्री मोहनमुकुन्द प्रणामी, मगोड़ा-मोड़ के श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी महाराज, पं० प्यारेलालजी और श्री कन्हैयालाल भट्ट का मैं विशेष ऋणी हूँ क्योंकि उनके सहयोग के बिना साम्प्रदायिक साहित्य प्राप्त करना मुश्किल हो जाता। मैं श्रद्धेय डा० गोवर्द्धनजी शर्मा के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ क्योंकि उन्हीं के कुशल निर्देशन, परिश्रम और उत्साह प्रेरक स्वभाव का ही यह शोध प्रबन्ध एक परिणाम है। उनके आत्मीयता पूर्ण निर्देशन के लिए उनका हृदय से आभारी हूँ। अन्त में, पंचशील प्रकाशन जयपुर के संचालक श्री मूलचन्दजी गुप्ता का आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य आत्मीयता पूर्ण ढंग से किया है।

—नरेश पंड्या

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

प्राणनाथ : जन्म-जीवन-धामगमन

युगों से मनुष्य धर्म को प्राणस्वरूप मानता रहा है उसी धार्मिकता को लेकर वह ईश्वर के अस्तित्व एवम् स्वरूप के संदर्भ में अपने मन्तव्य व्यक्त करता रहा है। डा० राधाकृष्णन ने कहा है, "धार्मिक अनुभूतियाँ उतनी ही पुरातन हैं, जितना मुस्कराना और रोना, प्यार करना और क्षमा करना। .... विचारों की कोई भी गम्भीर साधना, विश्वासों की कोई भी खोज, सद्गुणों के अभ्यास का कोई भी प्रयत्न, ये सब उन ही स्रोतों से उत्पन्न होते है, जिनका नाम धर्म है।"[1] अदृष्ट के प्रति पूज्यभाव और श्रद्धा के फलस्वरूप भक्ति ने जन्म लिया। विशेषतः भारतीय जन-मानस पर भक्ति और भक्तिगीतों ने गहरा प्रभाव डाला है। यह अत्युक्ति नहीं होगी कि धर्म ही भारतवर्ष का प्राण है। भारतीय सन्तों एवम् भक्तों ने समय के प्रवाह के अनुरूप ही धर्म के प्रवाह को भी विविध चिन्तनों में परिपुष्ट किया है।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के हृदयस्थान पर धर्म-चिन्तन की धारा बहाने-वाले भक्त-सन्त ही विराजित है। सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, कबीर, नानक, आदि मध्यकालीन सन्तों एवम् भक्तों की कोटि में प्रणामी सम्प्रदाय के प्रचारक एवम् प्रसारक स्वामी प्राणनाथ का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन प्राचीन मध्यकालीन अन्य भक्त-सन्तों की भाँति उनके जीवन के सन्दर्भ में भी थोड़ी-बहुत गलतफहमियाँ कुछ भावनाशील भक्तों की महिमा कथाएँ और आत्मिक-ऐश्वर्यकामी संतों की लौकिक जगत् विशेषतः निज के सम्बन्ध में उपेक्षा रही हैं, अतः उनकी सर्वशुद्ध जीवनी पाना कठिन है। फिर भी स्वामी प्राणनाथ की जीवनी के लिए उनकी खुद की रचनाएँ, साम्प्रदायिक ग्रन्थ और मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ सहायक

---

१. डा० राधाकृष्णन, धर्म और समाज (हिन्दी सस्करण), पृ० ५१

होते हैं। विशेषत प्रणामी सम्प्रदाय की 'बीतक'[२] (पद्यमय जीवनचरित्र) परम्परा विश्वसनीय जानकारी प्रदान करती है।

(अ) जन्मस्थान और जन्मसमय

स्वामी प्राणनाथ के जन्मस्थान के सन्दर्भ में जामनगर और पन्ना का उल्लेख किया जाता है। इतिहासकार सर वाल्सले हेग ने उनको पन्ना का क्षत्रिय बताया है।[३] संभवतः उन्हीं का आधार लेकर चलने वाले डा० विजयसिंह चावडा ने भी उनको पन्ना निवासी ठहराया है।[४] डा० सावित्री सिन्हा ने धामी सम्प्रदाय के संस्थापक और पन्ना निवासी के रूप में स्वामी प्राणनाथ का उल्लेख किया है।[५] संभव है कि उन्होंने जार्ज ग्रियर्सन[६] और मिश्रबन्धु के[७] उल्लेखों को प्रमाणिक मान लिया हो। भागीरथप्रसाद दीक्षित ने किवदन्ती का आधार लेकर कहा है कि गुजाप्र (औरंगजेब का भाई) ही अराकान से भागकर सिन्ध पहुँचा था और वहाँ से बुन्देलखण्ड में आकर महाराजा छत्रसाल के गुरु के रूप में उक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ था।[८] माधव ने इनकी जन्मभूमि के रूप में सिर्फ काठियावाड का उल्लेख किया है।[९] बाबू नगेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय ने बुन्देलखण्ड को ही इनका आविर्भाव स्थान बताया है।[१०] वस्तुतः प्राणनाथ का जन्मस्थान जामनगर होने पर भी कर्मक्षेत्र पन्ना-बुन्देलखण्ड ही रहा। इसीलिए प्रा० क्षितिमोहन सेन ने कहा है, प्राणनाथ का जन्म काठियावाड में हुआ। किन्तु वे सं० १७०० से १७५० के बीच बुन्देलखण्ड में रहे और वहीं पर उन्होंने धर्मप्रचार का कार्य किया।[११] स्वामी प्राणनाथ के शिष्य स्वामी लालदास ने लिखा है-

---

२ सम्प्रदाय में लगभग १७ बीतकें मानी जाती हैं किन्तु उनमें से स्वामी लालदासकृत बीतक, ब्रजभूषणकृत बीतक–वृत्तान्तमुक्तावली, नवरंग स्वामीकृत बीतक, हंसराज बक्सीकृत बीतक– श्री मिहराज चरित्र, स्वामी लल्लूजी महाराजकृत बीतक "वर्तमान दीपक", जयरामदासकृत बीतक और बहुरंग स्वामीकृत बीतक बहुत प्रचलित हैं।

३. रिचर्ड बर्न, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग–४, पृ० २७१

४. डा० विजयसिंह चावडा, भारतनो सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ४२०

५. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० ८३

६. डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन कृत हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६

७ मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु-विनोद (द्वितीय स०), प्र० भाग, पृ० ४३६

८. भागीरथप्रसाद दीक्षित, महाकवि भूषण, पृ० १६८

९ कल्याण – संत अंक, अगस्त १९३७, पृ० ६०७

१०. नगेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय, पन्ना राज्य का इतिहास, पृ० 3

११. हरिदास भट्टाचार्य, द कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया, वा० ४ (सिलविशेष, द मिडिवल मिस्टीसम आफ नोर्थ इंडिया), पृ० ३९२

हालार देस पुरी नौतन, उदर बाई धंन ।
केसो पिताकी कहियत, तहा राज उतपन ।।[१२]

इतना निश्चित होता है कि स्वामी प्राणनाथ का जन्म सौराष्ट्र (गुजरात) के हालार जनपद मे जामनगर में हुआ था। जाम रावल ने सं० १५९६ श्रावण शुक्ल ७ बुधवार के दिन नवानगर शहर बसाया था और इसे जामनगर, नवानगर, नौतमपुर, नूतनपुर, नूतनपुरी, नौतनपुरी आदि रूप मे पुकारा जाता रहा है।

सम्वत पनर छनवे, श्रावण मास सुधार ।
नगर रच्यो रावल नृपत, सुद सातम बुधवार ।।

× × ×

वरणी न जाय कविता बचन, शोभा नौतम शहर की।
लख लख माहे लखपती, नौतमपुरी मुझार ।
धोक धोक वजना नवल, नौतनपुरी मुझार ।।
श्रोवण कलशें जल भरे, नवतनपुरी मुझार।
घडिया घाट सुघाटरा, नुतनपुरी मुझार ।।[१३]

अतः जामनगर मे आज कहे जाने वाले "नौतनपुरी" (प्रणामी मंदिर) स्थान पर ही प्राणनाथ का जन्म नही हुआ। एक मन्तव्य है कि आज उनका जो जन्मगृह बताया जाता है कि वह किसी चारण का घर था और सम्भवतः सं० १९३२ के बाद उससे खरीद लिया गया है।[१४] प्राणनाथ के जन्मगृह के सम्बन्ध में निर्णय लेना कठिन है।

प्राणनाथ के जन्म के सम्बन्ध में सर्व श्री मातावदल जायसवाल,[१५] डा० गोवर्द्धन शर्मा,[१६] प्रा० परशुराम चतुर्वेदी,[१७] डा० श्यामसुन्दर शुक्ल,[१८]

---

१२. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ११, चौ० ३६

१३. जामनगरनो इतिहास, पृ० ११४, १७६

१४ श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी, श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका, (पादटीप), पृ० ६५

१५ सं० धीरेन्द्र वर्मा–व्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) (श्री मातावदल जायसवाल : "हिन्दवी साहित्य"), पृ० ५८६

१६. डा० गोवर्द्धन शर्मा, सप्तसिंधु (पत्रिका), पृ० २२

१७. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संतपरम्परा, ५६५

१८. डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, (लेकिन "इन्द्रामती" के उल्लेख में सं० १७७६ का उल्लेख किया है। दे० पृ० २२) पृ० ३२

डा० बड़थ्वाल,[१९] डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ,[२०] डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित,[२१] डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया,[२२] डा० रामकुमार गुप्त,[२३] प्रो० अमृत पड्या[२४] आदि एक मत है और वे प्राणनाथ का जन्म सं० १६७५ मानते हैं। डा० ग्रियर्सन ने उनका जन्मसमय निश्चित रूप से न बताकर, १६५० ई० में उपस्थित होने का ही संकेत किया है।[२५] मिश्रबन्धु ने उनको पूर्वालंकृत हिन्दी (१६८१–१७६०) प्रकरण के अन्तर्गत रखते हुए कहा है, "भक्तशिरोमणि प्राणनाथ, सुन्दरदास, गुरु गोविन्द सिंह, ध्रुवदास आदि ने इसी समय को पुनीत किया।" मिश्रबन्धु उनका समय सं० १७०७ मानते हैं।[२६] लेकिन विजयाभिनन्दन ग्र., (जो प्राणनाथ को दिया गया खिताब है) रचनाकाल सं० १७८७ स्वीकार करते हैं और महामति का (प्राणनाथ की साम्प्रदायिक साधनावस्था – प्राप्ति की अवस्था) उसी ग्रन्थ के कवि के रूप में उल्लेख किया है।[२७] श्री डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी और श्री कचरालाल शवजीभाई सोनी ने उनका जन्मसमय सं० १७२५ माना है।[२८] श्री रमणिक श्रीपतराय देसाई ने उनका जन्मकाल सं० १७२० लगभग बताया है।[२९] श्याम सुन्दरदास ने प्राणनाथ का सं० १७३१ के लगभग वर्तमान होना बताया है जबकि इन्द्रावती को (परमधाम की जिस वासना स्वरूप वे यहाँ अवतरित हुए थे) प्राणनाथ से भिन्न मानने

---

१९. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३३
२०. डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ८८
२१ डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ० ७२–७४
२२ डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, सन्त साहित्य, पृ० ८४
२३. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य को गुजरात के सन्तकवियों की देन, पृ० ४१
२४ प्रो० अमृत पड्या, गुजराती साहित्य परिषद, २० मु० संमेलन, हेवाल, पृ० २२१
२५ डा० अब्राहम जोर्ज ग्रियर्सनकृत हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६, २०१
२६. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु–विनोद, भा० २, पृ० ४३८
२७ वही, पृ० ६८६, ८८७
२८ (अ) डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी, गुजरातीओ ए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ० १२
(ब) श्री फार्वस महोत्सव ग्रन्थ, लेख– गुजरातना प्राचीन अने अर्वाचीन साहित्यकारो, पृ० ३१७
२९ रमणिक श्रीपतराय देसाई, प्राचीन कविओ अने तेमनी कृतिओ, पृ० २६५

हुए सं० १७०७ के लगभग वर्तमान बताया गया है।[३०] डा० रामकुमार वर्मा ने उनके सन्दर्भ मे लिखा है, वे बुन्देलखण्ड के सब से बडे और प्रभावशाली सन्त थे। इनका जन्म सं० १७१० मे हुआ था।[३१] डा० उषा पाण्डेय ने उनका जन्मसमय सं० १६७७ माना है।[३२] "माधव" ने इनका जन्मसमय स० १७०० बताया है।[३३] डा० सावित्री सिन्हा के अनुसार, प्राणनाथ और पन्ना-नरेश छत्रसाल समसामयिक थे। छत्रसाल का जन्म सन् १६४६ और मृत्यु सन् १७२६ माना जाता है। इंद्रामति के समय के अनुमान मे इस प्रकार कोई कठिनाई नही पड़ती।[३४] ए० वार्थ और डा० भोलानाथ तिवारी के अनुसार इनका उपस्थितिकाल १७ वी शताब्दी रहा है।[३५] फर्कुहर ने इनका उपस्थितिकाल १८ वी शताब्दी का प्रारंभिक चरण माना है।[३६]

अंग्रेजी साल के अनुसार प्राणनाथ का जन्म सन् १६१८ ई० मे हुआ है।[३७] लेकिन डा. अम्बाशंकर नागर ने उनका जन्म समय ई. १६१६ बताया है[३८]

उपरिलिखित सूचनाओ के आधार प्राणनाथ का जन्मसमय निम्न है—

स० १६७५–प्रो० मातावदल जायसवाल, डा० गोवर्द्धन शर्मा आदि-विद्वानों के अनुसार।

सं० १६७७ – डा० उषा पाडेय के मतानुसार।

स० १७०० – श्री "माधव" के अनुसार।

स० १७०७ – मिश्रबंधु के अनुसार प्राणनाथ का उपस्थितिकाल।

स० १७१० – डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार।

स० १७२० – श्री रमणिक शोपतराय देसाई के अनुसार।

---

३०. स० श्यामसुन्दरदास बी० ए०, हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, भा० १, पृ० १३, ६१

३१. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०२७८

३२. डा० उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे नारी भावना, पृ० ७८-७६

३३ कल्याण, सत अंक, अगस्त, १६३७, पृ० ६०७

३४. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० ८४

३५. (अ) ए० बार्थ, द रिलिजन्स आफ इण्डिया, पृ० २४१
(ब) डा० भोलानाथ तिवारी, हिन्दी नीतिकाव्य,

३६. फर्कुहर-प्रिस्वाल्ड, द रिलिजस क्वेस्ट आफ इंडिया, पृ० ३६१-३६२

३७. (अ) हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ३३१
(ब) धर्मयुग, ५ सितम्बर, १९६५ (शशिकान्त शर्मा का लेखविशेष), पृ. ४५

३८. (अ) डा० अम्बाशंकर नागर, गुजरात की हिन्दी सेवा, पृ० २१६
(ब) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, व. ६३, अंक २, पृ० १३८

उनके कहे जाने वाले ग्रन्थों में "इन्द्रावती' या "इन्द्रामति" की छाप मिलती है। क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग भी है। बस इन दो तथ्यों के सहारे कल्पना कर ली गई कि इन्द्रावती प्राणनाथजी की परिणीता थी, जो वास्तव में गहराई की कमी की द्योतक है। उनके ग्रन्थों में 'महामति' की छाप है, क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग वाले अनेक पद मिलते हैं,[४४] क्या इससे यह मान लिया जाए कि उनकी दो पत्नियां थी – इन्द्रावती और महामति। ऐसा करना नितान्त अनुचित होगा। सखी सम्प्रदाय के साधकों ने अपने उपनाम स्त्रीवाचक रखे थे और कविता के भी, क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग किया था, इससे क्या वे कवि न रह कर कवयित्री हो जाएँगे ?

प्रो० अमृत पंड्या का मन्तव्य है कि प्राचीन एवम् अर्वाचीन गुजराती पद्यसंग्रहों में प्राणनाथ का नामोल्लेख नहीं हुआ।[४६] वस्तुतः बृहद् काव्यदोहन, प्राचीन काव्य–सुधा, प्राचीन काव्य-मंजरी जैसे पद्यसंग्रहों में 'इन्द्रावती" नामक कवि के रूप में ही उनका उल्लेख हुआ है।[४७] प्राणनाथ की गुजराती रचनाओं में 'मारा हो प्राणनाथ" अर्द्धांगना तमारी प्राणनाथ" आदि प्रयोगों को देखकर इन्हें कवयित्री मान लेने का या प्राणनाथ की पत्नी मान लेने का भ्रम होता है। लेकिन इन रचनाओं में "प्राणनाथ" का प्रयोग "प्राणनो नाथ" अर्थात् प्राणों का स्वामी के रूप में ही हुआ है। श्री के० का० शास्त्री ने गुजराती हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में भी "इन्द्रामती" का उल्लेख अन्य स्वतन्त्र कवि के रूप में ही किया है।[४८] "चरोतर सर्व संग्रह" ग्रन्थ में प्रणामी-पंथ का परिचय देते हुए कहा है कि जामनगर के दीवान केशवजी ने ही बाद में अपना नाम प्राणनाथ रखा था।[४९] गुजराती में

---

४५ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरन्तन, प्र० ५, चौ० ११
श्री महामति कहे सावचेत होइयो, मिल्या है अवसर आई।
झूठी छूटे साची पाइये, सतगुरु लीजे रिझाई ।।

४६ गुजराती साहित्य परिषद, २० मुं सम्मेलन–हेवाल, (प्रो० अमृत पंड्या का निबन्ध छत्रसाल गुरु प्राणनाथ अने तेनी गुजराती कृतियो), पृ० २१९

४७- (अ) स० इच्छाराम सूर्यराम देसाई, बृहद्-काव्य-दोहन, भाग ८

(ब) स० छगनलाल रावल, प्राचीन काव्य सुधा, भाग ३ पृ० २४१, भाग ४ पृ० २५७ २८३

(क) स० जेठालाल त्रिवेदी, प्राचीन काव्य मंजरी, पृ० २९, ३३ (प्रवेशक)

४८ सा० के० का० शास्त्री, गुजराती हाथप्रतोनी संकलित यादी, पृ० ११

४९. सा० पुरुषोत्तम छ० शाह – चन्द्रकान्त फू० शाह, चरोतर सर्वसंग्रह, भाग १, पृ० ८२४

सम्भवतः इनके "मेहराज" (मिहिरराज) नाम का सर्वप्रथम उल्लेख डाह्याभाई देरासरी ने किया है।[५०] इन्हीं के आधार पर "फार्बस महोत्सवग्रन्थ" में भी प्राणनाथ का परिचय "मेहराज" नाम से दिया गया है।[५१] सम्भवतः श्री जनक दवे ने भी उसी आधार पर "मेहराज" का उल्लेख किया है।[५२] लेकिन रमणिक श्रीपतराय देसाई ने इन्द्रावती, "मेहराज" और महामतीबाई का उल्लेख तीन भिन्न-भिन्न कवि के रूप में किया है। उन्होंने इन्द्रावती का जीवन परिचय नहीं दिया, किन्तु मेहराज का दिया है। "महामतीबाई" के सदर्भ में लिखा है कि महम्मद ही महामती का अर्थ होता है।[५३] डा० रामकुमार गुप्त ने कहा है, साम्प्रदायिक ग्रन्थों एवम् गुजराती के विवेचन ग्रन्थों में उनका नाम मेहराज श्रीजी, प्राणनाथ आदि मिलता है।[५४] सच तो यही है कि साम्प्रदायिक ग्रन्थों में इन नामों का उल्लेख होना स्वाभाविक है, लेकिन गुजराती के विवेचन–ग्रन्थों में "इन्द्रावती" और "मेहराज" नाम का उल्लेख ही हुआ है। ई० सन् १९५९ की गुजराती साहित्य परिषद में प्रो० अमृत पड्या ने ही सर्वप्रथम उनके "प्राणनाथ" नाम का उल्लेख किया है।

स्वामी प्राणनाथ का जन्मसमय और बाल्यावस्था का नाम मिहिरराज या मेहराज था।[५५] संस्कृत में सूर्य का समानार्थी शब्द है मिहिर। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, ज्योतिषियों ने उनके पैदा होते ही भविष्यवाणी की थी कि यह बालक प्राणीमात्र को जन्ममरण के चक्र से बचाने वाला, पहुँचा हुआ ब्रह्मज्ञानी होगा और इसका भविष्य सूर्य की तरह ओजपूर्ण है।[५६] डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया ने उनका

---

५० डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी, "गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ० १२

५१. स० अम्बालाल बुलाखीराम जानी, फार्बस महोत्सव ग्रन्थ, (कचरालाल सोनी का निबन्ध), पृ० २१७

५२. जनकशंकर मनुशंकर दवे, हिंदीना विकासमां गुजरातीओनो फालो, पृ० १४१

५३ स० रमणिक श्रीपतराय देसाई, प्राचीन कविओ अने तेमनी कृतिओ, पृ० २२, २६५ १५१

५४ डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य को गुजरात के सतकवियों की देन पृ० ११३

५५. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २७७

५६. (अ) मुरलीदास स्वामी, धर्म अभियान, पृ १०

(ब) रणछोड़दास बीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ३५६

(क) वैद्य रामजीभाई नागरदास प्रणामी, महर्षि स्वामी प्राणनाथ जी याने श्री विजयाभिनन्दन निष्कलंक बुद्धजीनु जीवन चरित्र पृ० ५

पूर्वनाम "महाराज" मानते हुए बताता है कि वे गुरु की गद्दी पर "महाराज ठाकुर" के नाम से बैठे।[५७] वास्तव में इसमें उल्टा ही भ्रम रहा है। गुरु देवचन्द्रजी का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद ही वे प्राणनाथ नाम से अभिहित हुए। प्रो० अमृत पड्या ने भी अन्यत्र ऐसा कहा है कि मेहराजजी ने गुरु देवचन्द्र का शिष्यत्व ग्रहण करके 'प्राणनाथ" नाम धारण किया।[५८] साम्प्रदायिक मान्यता यही है, जब वे बड़े हुए और गुरु से भेंट हुई तब दीक्षा मन्त्र देने से पहले उनके सिर पर गुरु ने अपना वरद हाथ रखा और एकबार ध्यानपूर्वक देखकर कहा, यह बालक परब्रह्म परमात्मा का साक्षात स्वरूप है। यही बालक ब्रह्माण्डों को मथकर सत्य पथ पर लाने का महाव्रत पूरा करेगा, संसार के प्राणीमात्र को जन्ममरण की पुनरावृत्ति से मुक्त करने हेतु स्वर्णाद्वैत ब्रह्मवाद का मूल सूत्र अनन्य परा प्रेमलक्षणा भक्ति का मार्ग प्रस्तुत करेगा, और संसार में "प्राणनाथ" के नाम से विख्यात होगा।[५९] अर्थात् प्राणनाथ गुरु की ओर से मिला हुआ नाम है। गौरेलाल तिवारी के अनुसार वैराग्य ले लेने के पश्चात् इनका नाम प्राणनाथ हुआ।[६०] प्रो० अमृत पड्या ने बताया है, उनके सूरत तक के धर्मप्रचारकार्य तक "मेहराज' नाम ही प्रचलित रहा, लेकिन सूरत में वे प्राणनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए।[६१] लेकिन लोगों की जबान पर एक नाम आ जाने के बाद दूसरा नाम इतनी जल्दी से प्रचार में आना अस्वाभाविक लगता है। उन्होंने धर्मप्रचारकार्य शुरू किया तब से प्राणनाथ नाम ही उनके लिए प्रचार में रहा होगा। अतः प्रो० माताबदल जायसवाल का मन्तव्य[६२] उचित लगता है कि मेहराज के धर्मानुयायी 'सुन्दरसाथ' कहलाते थे। 'सुन्दरसाथ' के द्वारा ही उन्हें श्रद्धापूर्वक "प्राणनाथ" की उपाधि दे दी गई थी।

प्राणनाथ के ही अन्य दो नाम इन्द्रावती और महामति को लेकर हिन्दी साहित्य में फैले हुए भ्रम को दूर करने का सर्वप्रथम प्रयत्न काशी नागरी प्रचारिणी

---

५७. डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, सन्त-साहित्य, पृ० ६३

५८. अखण्ड आनन्द (मासिक पत्रिका), प्रो० अमृत पड्या का निबन्ध, भारतमा सर्व धर्मना समन्वयनो प्रथम प्रयत्न करनार महा प्राणनाथ, जुलाई १९५८ पृ० ५०

५९. मुरलीदास शर्मा, धर्म अभियान, पृ० ११

६०. गौरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२१

६१. गुजराती साहित्य परिषद, २० मुं संमेलन – हेवाल, पृ० २२३

६२ हिन्दी साहित्यकोश, भाग २, पृ० ३३१

पत्रिका[६३] और डा० गोवर्द्धन शर्मा ने किया है। वस्तुतः इन्द्रावती और महामति प्रणामी साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अनुसार प्राणनाथ के गुरु देवचन्द्र स्वयं ब्रह्मप्रिया "श्यामसुन्दरी के अवतार थे।[६४] इसी प्रकार प्राणनाथ को अन्य ब्रह्मप्रिया 'इन्द्रावती" का स्वरूप माना गया है।[६५] गुरु ने दीक्षामन्त्र देकर अपनी "श्यामाजी स्वरूप" आत्मा के साथ प्राणनाथ के शरीर में "इन्द्रावती स्वरूप" प्रवेश किया। सम्प्रदाय के स्वरूपदर्शन के अनुसार श्रीकृष्ण–श्रीराजजी, देवचन्द्रजी श्यामारूप श्री श्यामाजी, प्राणनाथ तारतम्यस्वरूप श्रीजी तथा इन्द्रावती की वासना हैं। ब्रजभूषण ने कहा है—

धन्य सखी इन्द्रावती तारतम्य पति सग।
लै उतरी धव लै तहा बैठे सुन्दर अंग।।
श्री इन्द्रावती वासना, मिल्यो निज आवेश।
करुणाबधु केशवसदन, ठर्यो महा नरवेश।।[६६]

इन्द्रावती के धामदिल मे धामधनी के सत्सग से निजबुद्धि और तारतम दोनों अवतरित हुए। अक्षर श्री जाग्रत बुद्धि ने तारतम को धारण किया, जिस के फलस्वरूप बुद्धि, आवेश, तारतम, आज्ञा और दया इन्द्रावती के हृदय में स्थित हुए। इसी संदर्भ मे नवरग स्वामी ने लिखा है[६७]—

इन्द्रावती पर आज्ञा भई, श्रीधाम चलन सनमुख ये रही।
श्री इन्द्रावती देखी निजरूप, श्रीदेवचन्द्रजी आप स्वरूप।।
कियो इन्द्रावती अन्तरप्रवेश, लै तारतम बुद्ध हुकम आवेश।
ये सरूप श्री देवचन्द्रजी लिए, श्री देवचन्द्रजी विराजे हिये।।
तो तारतम सरूप श्री इन्द्रावती कही, ये स्वरूप पंचमिल महामति भई।
ये पच स्वरूप को निरतम भयो, सो श्रीजीयें कलशमें कह्यो।।

"कलश" से बाद वाली उनकी रचनाओं मे "महामति" की छाप मिलती है। लेकिन रुप में पांच दिव्य आधार बुद्धि, आवेश, तारतम, आज्ञा और दया समाहित हो जाने पर उसका वह स्वरूप महामति कहलाता है। अत अब स्पष्ट हो जाता है

---

६३. प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज – नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००८, वर्ष ५६, पृ० २१
६४. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २७०
६५. वही, पृ० ३०२
६६. ब्रजभूषण वृतान्त मुक्तावली, प्र० ३२
६७. नवरग स्वामी, बोजाप्रकाश, प्र० २३

कि उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ अपने नाम से, मध्यकालीन रचनाएँ इन्द्रावती के नाम से और बाद में महामति नाम से लिखी गई है। अन्तिम दो छाप अधिक मिलती हैं। सम्प्रदाय में उनके लिए "श्रीजी" जैसा आदर सूचक सम्बोधन होता है। डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने इन नामों के सदर्भ में कहा है सम्प्रदाय में प्राणनाथ नाम श्री मिहिरराज श्रीजी साहब, इन्द्रावती, इन्दिरा, महामति आदि नाम भी प्रचलित हैं।[६८] मिहिरराज प्राणनाथ, इन्द्रावती और 'महामती' नाम विवेचन ग्रन्थों में और 'श्रीजी' नाम ही साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्रचलित है। अतः उक्त सभी नाम प्राणनाथ से अभिन्न हैं।

(इ) जाति, पारिवारिक जीवन और शिक्षा

उनकी जाति के सदर्भ में क्षत्रिय, लवणीय क्षत्रिय और लोहाणा का उल्लेख किया जाता है। डा० जार्ज ग्रियर्सन, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, एफ० एस० ग्राउज, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इन्डिया के अनुसार उनका जन्म क्षत्रिय जाति में हुआ था।[६९] गुजराती ग्रन्थों में उनकी "लोहाणा" जाती बतायी गई है।[७०] मुरलीदास धामी, ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द आदि ने उनकी लवणीय क्षत्रिय जाति मानी है।[७१] लेकिन गुजरात में – काठियावाड में – यह जाति "लोहाणा" नाम से ही प्रचलित है। सम्भवतः इसीलिए एक गुजराती साम्प्रदायिक ग्रन्थ में उनकी क्षत्रिय लोहाणा जाति बतायी गई है।[७२] उनका जन्म लोहाणा ठक्कर परिवार में हुआ था।[७३]

---

६८ डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ६८

६९ (अ) एफ० एस० ग्राउज, एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, वाल्युम ४८ भाग १, पृ० १८०
(ब) डा० ग्रियर्सन, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६
(स) डा० बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३२
(ड) डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३१
(इ) स० रिचार्ड बर्न, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इन्डिया, वोल्युम, ४, पृ० २२१

७०. (अ) अनन्तशंकर दवे, हिन्दीना विकासमा गुजरातीओनो फालो, पृ० १४१
(ब) रामजीभाई प्रणामी प्राणनाथजीनु जीवनचरित्र, पृ० १
(स) केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, वृत्तिचन्द्रिका, पृ० ५८१

७१. (अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० १०
(ब) स० ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द, पटऋतु, (भूमिका), पृ० ६

७२. रणछोडदास धीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ३५५

७३. लोहाणा जाति के व्यक्ति अपने को लवणशीय क्षत्रिय मानते हैं।

तीसरे और अकबर के शासनकाल दरम्यान जामनगर में राज्य करने वाले शासक ही सताजी होने चाहिए।[८०] जाम सताजी का शासनकाल सं० १६२५ से १६६४ (ई० सन् १५६९ से १६०८) तक रहा।[८१] लेकिन प्रधानअमात्य के रूप में केशवराय का नामोल्लेख नहीं मिलता। केशवराय गरीब परिवार में पैदा हुए थे, किन्तु अपनी कार्यकुशलता के फलस्वरूप प्रधानअमात्य का स्थान उन्होंने प्राप्त किया था ऐसी किंवदन्ती है। ऐतिहासिक उल्लेखों के अभाव में यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्राणनाथ के पिता केशवराय का जाम-नरेश के दरबार में निकट का सम्बन्ध रहा होगा। गोरेलाल तिवारी के अनुसार प्राणनाथ एक धनी पुरुष के लड़के थे।[८२] सम्भव है प्राणनाथ का जन्म श्री और सरस्वतीयुक्त घर में हुआ हो।

केशवराय की सन्तानों की संख्या निश्चित रूप से नहीं बतायी जा सकती। सम्भवतः स्वामी लालदासजी की बीतक के आधार पर[८३] श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी ने केशवराय के छः पुत्रों में से प्राणनाथ (मिहिरराज) को सबसे छोटा पुत्र माना है। उन्होंने कहा है, सामलजी, चतुर्भुज, गोविंदजी, ओधवजी, गोवर्द्धनजी ये सब श्रीजी (प्राणनाथ) के बड़े भाई थे।[८४] प्रो० मानावदन जायसवाल, डा० परशुराम चतुर्वेदी मुरलीदास धामी और कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी ने पांच पुत्रों की संख्या में शामल, गोवरधन, हरवंश, मिहिरराज (प्राणनाथ) और ऊधव के नाम गिनाये हैं।[८५] प्रो० मानावदन जायसवाल ने गोवरधन को श्रेष्ठ भ्राता माना है।[८६] लेकिन, पं० कृष्णदत्त शास्त्री, रणछोड़दास मोरजी और व्रजभूषण ने पुत्रों का नाम-क्रम हरिवंश, शामलिया, गोवर्द्धन, मिहिरराज (प्राणनाथ) और ऊद्धव रखते हुए

---

८०. The Gazetteer of Bombay Presidency, Vol. I, Part 1, p. 273

८१ कवि मावदानजी, श्रीयदुवंशप्रकाश, द्वितीय खंड, पृ० १७९

८२ गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १६३

८३. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० ६, चौ० २५–२६

८४. श्रीकृष्णप्रियाचार्य, श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका, पृ० ६४

८५. (अ) प्रो०-मानावदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ४
(ब) डा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६५
(स) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० १७
(द) कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी, प्राणनाथजीनुं जीवनचरित्र, पृ० ३

८६. प्रो० मानावदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ४

हरिवंश को ज्येष्ठभ्राता बताया है।[८७] नवरंग स्वामी की बीतक मे गोबरधन ऊधो ग्रौर सामल का ही उल्लेख "जी साहेब के भाई" के रूप मे हुग्रा है।[८८] स्वामी लालदास की बीतक अधिक विश्वसनीय होने पर भी प्राणनाथ के परिवारवर्णन में अधिक ग्रस्पष्ट है। इस दृष्टि से व्रजभूषण का कथन स्पष्ट ग्रौर उचित मालूम होता है।

माता प्राणनाथ के बालचरित्रो को देख-देख कर बहुत प्रसन्न रहती थी। कभी-कभी ग्रलौकिक चरित्रों को देखकर ग्राश्चर्य मे भी पड ज ती थी। साम्प्रदायिक मान्यतानुसार, पांच वर्ष पर्यन्त उनके ग्रनेक ग्रलौकिक चरित्र दृष्टिगोचर होते थे। किन्तु पाच वर्ष के बाद साक्षात स्वरूप मिहिरराज (प्राणनाथ) ने ग्रपने ग्रलौकिक चरित्रो का सवरण कर लिया ग्रौर ग्रन्य बालको की भाति ग्राप भी खेल कूद ग्रौर बालक्रीडा करने लगे।[८९] सम्प्रदाय की इन ग्रतिशयोक्तिपूर्ण मान्यताग्रों को हटा देने पर, इतना सम्भवित है कि बाल्यावस्था मे ही उन्होने हिन्दूधर्मशास्त्रो की शिक्षा प्राप्त की हो। मातापिता राधावल्लभी सम्प्रदाय के ग्रनुयायी थे।[९०] ग्रतः बाल्यकाल से ही उनके जीवन मे धार्मिक सस्कारो की समावेश स्वाभाविक है। किन्तु उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के सदर्भ मे विश्वसनीय जानकारी नही मिलती।

---

८७ (ग्र) पं कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २८०
(ब) रणछोडदास मीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ३५६
(स) व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, पृ० ३६ चौ० २९–३०–३१

"केशव ठाकुर पंच सुत, जेठे श्री हरिवंस।
मझले सामलजू कहे, गोबरधन ग्रवतंस।।
तिन लघु श्रीमहेराज है, धाम धनीको रूप।
लघु तिनमें उद्धव कहे, लखौ सु पच प्रमान।।

८८. नवरग स्वामीकृत बीतक, प्र० १०, चौ० ३५, ४१

८९. (ग्र) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरित्रामृत, पृ० २७७–२७९
(ब) सनेहसखीकृत लीलारससागर, प्र० ३६

"कबहूक लाल पौढायके जब जाय बाहर मात।
तब भवन मे होई धूम मारी लीला ग्राय साक्षात।।
कबहूक रास विलास लीला होइ थेई थेई कार।
भये पाच बरस के लालन तब लो लीला कीन्ह।।
ता उपरान्त विचार के बालक चेष्टा लीन्ह।।

९०. श्री प्राणनाथ संदेश, वर्ष १३, ग्रंक ३, पृ० १७

प्राणनाथ के दाम्पत्यजीवन के बारे में निश्चितरूप से कहना कठिन है। साम्प्रदायिक ग्रन्थों में – बीतकों में – भी इस संदर्भ में समान उल्लेख नहीं मिलते। माना जाता है कि प्राणनाथ की फूलबाई के साथ बाल्यावस्था में ही शादी हो गई थी। रणछोडदास धीरजी के अनुसार, गुरु-आज्ञा से अरबस्तान गये हुए प्राणनाथ सं० १७०८ में जामनगर वापस आ गये और बाद में तुरन्त ही सं० १७०८, फाल्गुन शुक्ल पंचमी के दिन फूलबाई की मृत्यु हो गई।[६१] पं० कृष्णदत्त शास्त्री ने इस संदर्भ में संभवत ब्रजभूषण पर आधार रखा है। गुरु धामगमन के बाद, प्राणनाथ ने गुरुपुत्र बिहारी से हुए मनमेल को कम करने के लिए जामनगर राज्य का वजीर पद ग्रहण कर लिया था। लेकिन हर रोज सुबह-शाम सम्प्रदाय के अनुयायियों के समक्ष धर्मचर्चा करते थे। इस प्रकार अनुयायियों में उनके बढ़ते हुए प्रभाव ने बिहारी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न की। उन दिनों में बिहारी ने अनुयायियों में धर्म-जागृति उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक अनुयायी के लिए धर्मचर्चा में सुबह-शाम नियमित रूप से उपस्थित होने का नियम बना दिया था। आज्ञा-भंग करने वाले को धर्मबहिष्कृत की सजा मिलती थी। एक बार, दूर गाँव से आनेवाले अनुयायी को इसी हेतु धर्म बहिष्कृत कर दिया गया। तीन दिन तक वह अनुयायी बिहारी के द्वार पर अन्न-जल त्यागकर खड़ा रहा और दूसरे दिन प्राणनाथ के घर पर गया। उस समय प्राणनाथ दरबार में थे। अतः उनकी पत्नी फूलबाई ने उसको समझाया और भोजन दिया। इस बात को सुनकर बिहारी क्रोधित हो गया और उन्होंने द्वारपाल को प्राणनाथ के मंदिर में प्रवेश नहीं करने देने की आज्ञा दी। शाम को वहाँ पहुँचने पर प्राणनाथ को बताया गया कि अब आप हमको न हो तो अपनी धर्म-पत्नी का परित्याग कर दीजिए। उन्होंने गुरुपुत्र की आज्ञा का पालन किया। अत फूलबाई ने पतिवियोग में अन्न-जल का त्याग किया और छह मास पर्यन्त उनका निरन्तर स्मरण कर अपनी निर्मलात्मा को पतिस्वरूप में मिला दिया। मृत्युसमय पर अपनी इच्छा व्यक्त की कि अंतिम संस्कार का स्थान पति के चरणों से पवित्र किया जाए।[६२] लेकिन इस प्रसंग में ब्रजभूषण ने इनकी पत्नी का नाम फूलबाई नहीं दिया, "बाइजू" दिया है।[६३] कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी ने बताया है कि उनकी प्रथम पत्नी का नाम तेजबाई था और उसकी मृत्यु १४ साल की उम्र में हो गई थी। प्राणनाथ बसरा गये उससे पहले तेजबाई के साथ उनकी शादी की गई थी। और तेजबाई की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् बाईजीराज के साथ उनकी दूसरी शादी

६१. रणछोडदास धीरजी, श्रीपरमधाम प्रणालिका, पृ० ३७३
६२. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३७६–३८०
६३. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४१, चौ० ४२

तेजबाई के साथ व्यतीत हुआ था। सम्प्रदाय के अनुयायी तेजबाई को ही आदरसूचक "बाईजीराज" के नाम से पुकारते थे।[१००] लेकिन फूलबाई और तेजबाई के साथ उन्होंने कब विवाह किया, यह सप्रमाण नहीं कहा जा सकता। "बाईजीराज" नाम तो सम्मान सूचक है।

उनके माता पिता की मृत्यु के सदर्भ में साम्प्रदायिक ग्रन्थ मौन है। कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु सं० १७१२ में जामराज्य का मंत्रीपद उन्होंने ग्रहण किया था ऐसी साम्प्रदायिक मान्यता है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि सं० १७१२ से पहले उनके पिता केशवराय की मृत्यु हुई होगी। कहा जाता है कि पिता के स्थान पर ही तुरन्त उनको नियुक्त किया गया था।[१०१] साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार उनके माता पिता की मृत्यु के बीच विशेष समय नहीं रहा। सं० १७०० में गोवरधनभाई, जो उनसे बड़े थे, उनकी मृत्यु हुई।[१०२] इस प्रसग ने प्राणनाथ के मन में गहरी उदासी ला दी और लौकिक विषय में उनको एकदम ग्लानि होने लगी।

(ई) गुरुदेव चन्द्रजी से मुलाकातें

प्रो० परशुराम चतुर्वेदी, डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, प्रो० माताबदल जायसवाल, प्रो० अमृत पड्या, केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री और डा० गोवर्द्धन शर्मा ने स्वामी प्राणनाथ के गुरु के रूप में देवचन्द्र महाराज को माना है।[१०३] जनकशंकर दवे

---

१००. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ८८५
१०१. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६६
१०२ (अ) व्रजभूषण' वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३८, चौ० ५

गोवरधन सेवा करै, निजानन्द प्रभु जान।
या समये उनको भयो, देहत्याग सुप्रमान॥

(ब) पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३१३

१०३. (अ) प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संतपरम्परा, पृ० ५६३
(ब) डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, हिन्दी संतसाहित्य
(स) डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, संतसाहित्य, पृ० ६४
(द) डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ६८
(इ) प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ४
(ई) गुजराती साहित्य परिषद – २०मु अधिवेशन – हेवाल, पृ० २०२
(उ) केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, चरित्रचन्द्रिका, पृ० ५८१
(ऊ) दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१३
(ए) सप्तसिंधु (पत्रिका), अगस्त, ६४ पृ० २१

ने प्राणनाथ के संदर्भ में लिखा है. कहा जाता है कि राधावल्लभी सम्प्रदायवाले देवचन्द्रजी कायस्थ के यहां वे नौकर थे ..... वहीं रह कर उन्होंने गुजराती, फारसी, अरबी, व्रजभाषा आदि का अभ्यास किया।"[१०४] सम्भवतः उन्होंने डाह्याभाई देरासरी के विधान को अक्षरशः मान्य रखा है।[१०५] डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित और डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया के अनुसार स्वामी प्राणनाथ ने कुछ ही दिनों में जन्मस्थान का त्याग करके साधुओं के साथ भ्रमण करना शुरू किया और इन्हें किसी देवचन्द्र साधु से प्रेरणा प्राप्त हुई थी।[१०६] वास्तव में स्वामी प्राणनाथ को गुरु देवचन्द्र की प्राप्ति जामनगर में ही हुई थी।

प्राणनाथ के गुरु देवचन्द्रजी अर्थात्, निजानन्द स्वामी अपनी २४ वर्ष की अवस्था में जामनगर आये थे। यहां १४ वर्ष तक एकनिष्ठा से भागवत का श्रवण, मनन, निदिध्यासन किया। कहा जाता है कि अन्त में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने साक्षात् दर्शन देकर इन्हें तारतममन्त्र की दीक्षा दी।[१०७] कृष्ण साक्षात्कार के निज आनन्द में वे भावविभोर रहने लगे कि वे जगत निजानन्द स्वामी के नाम से विख्यात हो गये। कृष्णदर्शन और कृष्णाज्ञा के बाद उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना की और सम्प्रदाय के तत्त्वों का प्रचार कथा-कीर्तन द्वारा किया। गुरु देवचन्द्र का जीवनी का उल्लेख अन्यत्र किया जाएगा।

श्यामसुन्दर के मन्दिर में कथाश्रवण के लिए देवचन्द्रजी के साथ गांगजीभाई नामक एक लोहाणा सेठ भी जाते थे। जब देवचन्द्रजी ने कृष्णदर्शन की बात उन्हें बतायी तब वे प्रसन्न हुए और देवचन्द्रजी को अपने घर ले गये। गांगजीभाई ने तारतम्यमन्त्र की दीक्षा ली और वे देवचन्द्र के प्रथम शिष्य हुए।[१०८] उनका सारा परिवार दीक्षित हुआ। और देवचन्द्रजी के कथाचमत्कार की बातें शहर में फैलती गई। गांग-

---

१०४. जनकशंकर मनुशंकर दवे, हिन्दीना विकासमा गुजरातीओनो फालो, पृ० १४१

१०५. डाह्याभाई देरासरी, गुजरातीओए हिन्दीसाहित्यमा आपेलो फालो पृ० १२

१०६. (अ) डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी संत साहित्य पृ० ७२-७४
(ब) डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, संत साहित्य, पृ० ६७

१०७. (अ) कल्याण, संत अंक, अगस्त, १६३७, पृ० ६०७
(ब) लालदासकृत, बीतक, प्र० ७, चौ० =

सुनत भागवत देहुरे, तहां कह्या तारतम।
तुम आये हो धरमसें, जगाओ अपनी आतम।।

१०८. (अ) पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २५७
(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६५

जीभाई के पुत्र सामजी की पत्नी यजबाई जो प्राणनाथ के बड़े भाई हरवंश के साले की लड़की थी उसने प्राणनाथ के घर में ये सारी बातें बतायीं।[109] ये बातें सुन कर प्राणनाथ के बड़े भाई गोवरधन भाई देवचन्द्रजी के दर्शन करने कान्जीभाई के घर गये।[110] इस प्रकार देवचन्द्रजी के अनुयायी बढ़ने गये। इस बात को लेकर किसी ने कोतवाल से चुगली की। अतः आज जो खिजड़ा मंदिर के नाम से प्रख्यात है उस स्थान पर आकर देवचन्द्रजी कथाकीर्तन करने लगे। इस कथाकीर्तन में उपस्थित रहने वाले गोवरधनभाई धर्मकथा की बातें घर में करते थे।[111] इन बातों का प्रभाव प्राणनाथ (मिहिरराज) पर होने लगा और एक दिन उन्होंने गोवरधनभाई से देवचन्द्रजी के पास अपने साथ ले जाने के लिए कहा। गोवरधनभाई मना करते रहे, लेकिन एक दिन प्राणनाथ रो-धोकर उनके पीछे-पीछे गए। गोवरधनभाई ने गुरु से यह बात बताई और उसको लाने की आज्ञा माँगी।[112] गुरु आज्ञा होने पर वे प्राणनाथ को वहाँ ले गये। इस प्रकार प्राणनाथ ने गुरु देवचन्द्रजी के प्रथम दर्शन किये। इस समय स्वामी प्राणनाथ की आयु १२ वर्ष २ मास और १० दिन थी।[113]

(अ) बारह बरस दो मास, ता ऊपर भए दस दिन।
तब देवचन्द्रजी सों मिले, तब पहचान मोमिन।।
(ब) बारह बरस विक्रमके मानो, और मास द्वै दस दिनबखानी।
एनेक दिनके भये जब आप, देवचन्द्र सों करे मिलाप।।
(ड) ऊपर बारह वर्षके, दसदिन अरु द्वै मास।
आई धनी सो तब मिले, लखी वासना खास।।

---

१०९ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ४-१३
११०. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २८३
१११ लालदास स्वामीकृत बीतक, प्र० ११, चौ० ३६
पेहेला मिलाप गोवरधन का, श्री देवचन्द्रजी सें।
तहां राज दीदार की, चर्चा करे घर में।।
११२. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ५०, ५५
सुनि गोवरधन प्रति तबैं, बोले श्री महराज।
चरनन श्रीदेवचन्द्र के, चलो मोहि लै आज।।
आज रोई पाछो लाग्यो, तब आयो दुलराई।
तातें कीजै हुकम जो, करो तौन चित ल्याई।।
११३. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक.
(ब) बख्शी हंसराज, मिहिराज चरित्र, प्र० ६, चौ० १०५
(क) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, प्र० ३०९
(ड) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ६१

नवरग स्वामी ने उनकी आयु ११ साल बतायी है—
एकादश बरसके जब ही, परपी वासना धनीए तबही । ।[114]

प्रो० मातावदल जायसवाल के अनुसार गुरु देवचन्द्रजी से प्राणनाथ की प्रथम मुलाकात के समय उनकी आयु १२ वर्ष, २ मास और १४ दिन की थी ।[115] इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि १२ वर्ष की अवस्था में प्राणनाथ ने गुरु देवचन्द्रजी की शिष्यता स्वीकार की। इसी समय उनको तारतम्य-मन्त्र देकर दीक्षा दी गई। बख्शी हंसराज के अनुसार यह दिन स० १६८७ माघ शुक्ल नौमी का था ।[116] नवरग स्वामी ने सिर्फ स० १६८७ का उल्लेख किया है ।[117] लेकिन स्वामी लालदास और व्रजभूषण ने समान रूप से स० १६८७ मार्गशीर्ष शुक्ल नौमी का ही उल्लेख किया है—[118]

सवत सोलै सतासीए, मगसर सुदी नौम ।
मिलाप श्री देवचन्द्रजी सो, हुए दाखिल कौम । ।
सोरहसै सत्तासिया, अगहन नवमी शुक्ल ।
मिले धनीसो तब भये, जगत रीति तें सुक्ल । ।

प्रा० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है, जब ये केवल १२ वर्ष और कुछ महीनो के थे, स० १६८७ की अगहन शुक्ल ६ को नौतनपुरी मे इन्होंने देवचन्द्रजी के दर्शन किये। उन्होंने इन्हे तारतम्य-मन्त्र दे दिया ।[119] डा० गोवर्द्धन शर्मा ने कहा है, देवचन्द्रजी ने प्राणनाथजी को बचपन मे ही जबकि केवल बारह वर्ष के थे, प्रतिभा-सपन्न और अलौकिक तत्वो से युक्त पाकर तारतम्य-मन्त्र से दीक्षित किया ।[120]

---

११४ नवरग स्वामीकृत बीतक, प्र० १०, चौ० २३
११५. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ३३१
११६ बख्शी हंसराज, मिहिराज चरित्र, पृ० ६, चौ० १०६
मवत सोरह सौ पुनि जानो, और सतासिय साल बखानो ।
माघ शुक्ल नौमो तिथि पाई, ता दिन मिले परम सुखदाई । ।
११७. नवरग स्वामीकृत बीतक, प्र० १०, चौ० २२
मवत सोला सतासीए आगे, जो साहेब चरने लागे । ।
११८. (अ) लालदास स्वामीकृत बीतक, प्र० ११, चौ० ४८
(ब) व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ६३
११९. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६५
१२०. सर्वामधु (पत्रिका), अगस्त, १९६४, डा० गोवर्द्धन शर्मा का लेखविशेष, पृ० २२

डा० रामकुमार गुप्त के अनुसार, बारह वर्ष की अवस्था में अर्थात् संवत् १६८७ में श्यामधाम स्वामी श्री देवचन्द्रजी ने इन्हें तारतम्य की दीक्षा दी।[१२१] लेकिन यह दीक्षा किस स्थान पर दी गई थी यह कहना कठिन होगा। आज तो नवतनपुरी (खिजड़ा मंदिर) और चाकला मंदिर नाम से दो स्थान हैं, उनमें से किसी एक स्थान पर दीक्षा दी गई होगी। लेकिन प्रो० मातावदल जायसवाल ने निश्चितरूप में बताया है कि, अपनी पर्णकुटि में (जहाँ आज प्रणामियों का प्रसिद्ध खिजड़ा मंदिर है) श्री देवचन्द्रजी ने श्री महेराज को "तारतम्य" की दीक्षा दी।[१२२] श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी महाराज का मन्तव्य है कि देवचन्द्रजी का निवास स्थान आज का "श्री राजजी मन्दिर" या और गांगजीभाई सेठ के निवासस्थान, जो आज का चाकला-मन्दिर है उसमें दीक्षा दी।[१२३] आज का खिजड़ा मन्दिर कई दिनों के बाद बनाया गया स्थान है। अत: निर्विवाद विधान यही हो सकता है कि सं० १६८७ (सन् १६३०) मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी के दिन जबकि उनकी आयु बारह वर्ष दो मास और दस दिन की थी, गुरु देवचन्द्र से उन्होंने जामनगर में तारतम्यमन्त्र की दीक्षा ली और शिष्यत्व ग्रहण किया, यही तथ्य है।

(ञ) प्रारम्भिक सेवाकार्य

गुरु देवचन्द्रजी से दीक्षामन्त्र प्राप्त हो जाने के बाद गोवरधनभाई और प्राणनाथ के मन में सांसारिक विरक्ति उत्पन्न हुई थी। माता पिता इन दोनों भाइयों के ऐसे विरक्त भाव से चिन्तित रहने लगे। मुरलीदास धामी लिखते हैं, जब से श्री मेहेराज को इष्ट मंत्र तारतम ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई, उनका मन अधिकाधिक सद्गुरु श्री निजानन्द स्वामी की ओर आकृष्ट होने लगा। वे वहाँ निरन्तर आत्मचिन्तन में मग्न रहते। नित्य अनन्य भाव से वे ब्रह्मानन्द आनरस का आस्वादन करते। सद्गुरु में उनकी अनन्य भक्ति थी। श्री निजानन्द स्वामी के प्रेमानन्द में वे कभी कभी इतने भावविभोर हो जाते कि अपनी धर्मधुन के कई दिनों तक घर पर ही नहीं जाते, भोजन करना भी भूल जाते।[१२४] वस्तुत: उनके वीतरागी स्वभाव को बड़े भाई गोवरधनभाई की मृत्यु ने और भी बढ़ाया। परमधाम, ब्रह्मप्राप्ति आदि तत्वों पर ही वे निरंतर चिन्तन करने लगे। उनके मनमें कृष्णदर्शन की इच्छा प्रबल

---

१२१. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य को गुजरात के सन्त कवियों की देन, पृ० ११३

१२२. प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ८

१२३. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी महाराज, श्रीमतारतम्यनो प्रणालिका, पृ० ६१–६३

१२४. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ११

होनी गई। अतः जितने भी लौकिक विषय थे उन सबका उन्होंने परित्याग कर दिया तथा शरीर को कसौटी पर चढ़ाने लगे। इसी सदर्भ मे नवरंग स्वामी ने लिखा है—[१२५]

छूटो सुप सबे संसारी, जतन देहके सबे विसारी।
पान पान भोजन नही भावे, दिन रैन रोवत ही जावे ।।

इसका परिणाम यह हुआ कि उनका शरीर पीला पड गया और इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो गई। परिवार के सब उनके शरीर की क्षीणता और निष्क्रियता को देखकर चिन्तित हो रहे थे, किन्तु किसी के कहने का उन पर कोई असर न हुआ। अतः गुरु देवचन्द्रजी से प्राणनाथ को समझाने के लिए कहा गया।[१२६] गुरु के इस प्रकार के कष्ट और संयम का कारण पूछा तब प्राणनाथ ने कहा, मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरे विकारों को बता दीजिए जिससे मैं उन्हे अपने शरीर से दूर कर सकूँ और आत्मा निर्मल हो जाए। गुरु ने उनकी कई शंकाओं का निवारण किया तब उनको एक प्रकार का उलटा भय होने लगा कि मुझसे वडी भूल हुई जो धामधनी (कृष्ण) स्वरूप श्री सद्गुरुजी की साक्षात् सेवा को छोड कर इधर उधर शरीर कसौटी मे लगा रहा और श्री सद्गुरु के साक्षात् स्वरूप पर विश्वास न रख सका। इस प्रकार वे पश्चाताप करने लगे। लेकिन गुरु देवचन्द्र ने उनके पश्चाताप को क्षणिक समझकर उनको किसी लौकिक कार्य मे देना उचित समझा। अतः उन्होंने प्राणनाथ को हरिवंशपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण ढूँढ लाने के लिए अहमदाबाद की ओर जाने की आज्ञा दी। लेकिन स्वामी लालदास और ब्रजभूषण ने "अहमदाबाद" का नामोल्लेख न करते हुए गुजरात का ही उल्लेख किया है।[१२७]

---

१२५. (अ) नवरंग स्वामीकृत वीतक, प्र० १०, चौ० २९–३०
(ब) प कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३१५, ३१८
(क) ब्रजभूषण, प्र० ३८, चौ० ३५

जब लौं चर्चा धामकी, झरै नीर बहु नैन।
भयो देह रंग पीत सब, मुखतें और न बैन।।

१२६. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३८, चौ० ४७

एक भ्रात प्रथमहि चले, अब ये भये तैयार।
देहु सिखावन क्यों नही, भय उपजत सार।।

१२७, (अ) रणछोडदास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ३६६
(ब) लालदास स्वामीकृत वीतक, प्र० १२, चौ० ४०–४१
(स) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३८, चौ० ६५

लाखों रुपया कमाये थे, परन्तु जामनगर वापस आने का नाम नहीं लेते थे। वे अपने परिजनों की सुध लेना भी बंद कर चुके थे। अतः प्राणनाथ को यह सारा वृत्तान्त सुनाया गया और खेताभाई को समझा-बुझाकर जामनगर ले आने की आज्ञा दी गई। उनका जहाज ४० दिन में अरबस्तान के बसरा बन्दर पर पहुँचा।[132] वहाँ पर जाकर खेताभाई से मिले और पक्षपात उन्होंने इनको समझाने का प्रयत्न किया। प्राणनाथ को अपने कार्य में सफलता मिली। खेताभाई जामनगर लौटने के लिए तैयार हुए और अपनी बिखरी हुई सम्पत्ति एकत्रित करने का कार्य प्राणनाथ को सौंप दिया। वर्षों से फैले हुए लाखों रुपये के व्यापार को समेटने के कार्य में लगभग चार वर्ष व्यतीत हो गए। इसी बीच असमय में ही खेताभाई की मृत्यु हो गई। शेख सल्ला, जो बसरा का तत्कालीन शासक था, उसकी कुदृष्टि खेताभाई की संपत्ति पर थी। उसने खेताभाई की समग्र संपत्ति पर मुहर लगा दी। खेताभाई की मृत्यु की ग्लानि प्राणनाथ के मन में थी ही, लेकिन अब यह दूसरी समस्या उनके सामने उपस्थित हुई। प्राणनाथ ने शेख सल्ला को समझाने का प्रयत्न किया लेकिन असफल रहे। अतः प्राणनाथ अरब के सुलतान इमाम से शिकायत करने के लिए बसरा से बगदाद गये। वहां पर जाकर सुलतान से बात करने के लिए दो मास तक बहुत कुछ दौड़धूप करते रहे। अन्ततः सुलतान से उनकी मुलाकात हुई। इस मुलाकात में दोनों के बीच भारत के विभिन्न धर्म, रहनसहन, आतिथ्य तथा गुरु देवचन्द्रजी के धर्ममत की चर्चा हुई। प्राणनाथ ने भी मुस्लिम संस्कृति के मूलतत्त्वों का भलिभाँति परिचय प्राप्त किया। सुलतान इमाम इनके अध्यात्मज्ञान और विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने बसरा के शासक शेख सल्ला को आदेश दिया कि खेताभाई की सम्पूर्ण संपत्ति प्राणनाथ को सुपुर्द कर दी जाए। लेकिन आकस्मिक ढंग से वह संपत्ति भयंकर आग में जलकर भस्म हो गई। बहुत थोड़ी चीजें बचाई जा सकीं। इसी प्रसंग का उल्लेख स्वामी लालदास कृत बीतक के "अरबयात्रा" प्रकरण में स्पष्ट नहीं हुआ। लेकिन ब्रजभूषण ने "वृत्तान्तमुक्तावली" में लिखा है।[134]

तीन दिवस बीते पर आये, बैश्रावनगर अति दाह चढ़ाये।
सामा मूल भस्म सब कीन्हो, रूपो सोनों डाढा लीनों।
फैल्यो दवि इकट्ठा कीन्हों, बच्यो अग्निमुख शेषसु लीन्हों॥

---

१३२. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ५
चलत जहाज फाल्गुन माही, जइये आप साज लै ताहीं।
नित चालीस दिवस के माही, पहुँचे जाइ बराम ताहीं॥

१३४. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक प्र० १३, चौ० १–६६
(इ) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ४९–५०

इसी समय प्राणनाथ की मदद के लिए जामनगर से भेजे गए बिहारी और श्याम (देवचन्द्रजी और लालजीभाई के पुत्र) वहाँ पहुँच गये। प्राणनाथ ने उनको मेनाभाई की थोड़ी सम्पत्ति के साथ जामनगर की ओर रवाना किया। लेकिन उन्होंने जाकर गुरु देवचन्द्रजी से प्राणनाथ के बारे में बुरी बातें की और दोषारोपण किया।[135] कुछ थोड़े दिनों के बाद जब प्राणनाथ जामनगर के बन्दरगाह पर आ पहुँचे कि तुरन्त मेनाभाई की बहन रतनभाई की शिकायत के आधार पर द्रव्य-दौलत को जप्त कर लिया गया और प्राणनाथ को डेढ़ साल तक बन्धन में रखे गये—

भई बारहों सादर साथ भई साथ उनके में साथ ।
साल डेढ़ सो उन गुस्साने रहे बन्दीपुरी में जाने ।।[136]

प्रो० मानवेन्द्र जायसवाल और डा० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार मेनाभाई का कुशल समाचार लाने के लिए सं० १७०८ में प्राणनाथ को अरब भेजा गया था और वे वहाँ चार वर्षों तक रह गए।[137] मुरलीधरन शर्मा और पी० कृष्णमूर्ति के अनुसार वे वहाँ लगभग ४ वर्ष रहे।[138] पं० कृष्णदत्त शास्त्री ने बताया है कि मेनाभाई की बिगड़ी हुई सम्पत्ति को इकट्ठी करने में उनको ४ वर्ष तक कोई सफलता नहीं मिली थी।[139] स्वामी लालदास ने लिखा है[140]—

चार बरस परवारने, रहे यहाँ आरब जब ।
मेना कोठीका सगने छोड़यो भार हुआ तब ।।

ब्रजभूषण ने भी चार साल का समय बताया है[141]—

सुरभग बरस चारि निरवीन, भये काज नहीं सबके धीने ।
मेना त्याग तहाँ तनु कीन्हो, प्रभु सुरनाम कछु नहिं चीन्हो ।।

---

१३५ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ६४
पहुँचे कोई धनी के पासा, कीन्ही कपट बात सब खासा ।
१३६ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ६८
१३७ (अ) प्रो० मानवेन्द्र जायसवाल दूसरा प्रणाम, प्र० ४
(ब) डा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६५
१३८ (अ) मुरलीधरन शर्मा, धर्म अभियान, पृ० १८
(ब) पी० कृष्णमूर्ति अय्यर, द डिवाईन मेसेज ऑफ लॉर्ड प्राणनाथ, पृ० ५
१३९. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २३१
१४०. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १३, चौ० १०
१४१ ब्रजभूषण वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० १६

डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित और डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया के अनुसार प्राणनाथ ने विरक्त होकर अपनी इच्छा से साधुओं के साथ भ्रमण किया और अरबी फारसी, हिन्दी और संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।[१४२] इस मान्यता को अन्तर्साक्ष्य या बहिर्साक्ष्य से समर्थन नहीं मिलता। केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी ने माना है कि धर्मोपदेश की दृष्टि से उनको अरब भेजा गया था और खेताभाई पर कोई प्रभाव न पड़ने पर थोड़े दिनों में जामनगर लौट आए थे।[१४३] वस्तुतः प्राणनाथ को खेताभाई के कुशल समाचार के लिए या अपनी विरक्ति के कारण या धर्मोपदेश के लिए अरब जाना पड़ा हो वैसा नहीं था। खेताभाई को वापस जामनगर लाने का कार्य ही उनको दिया गया था। स्वामी लालदास ने लिखा है कि सं० १७०३ (सन् १६४६) फाल्गुन में वे अरब की ओर गये थे और सं० १७०८ में वापस लौट गए थे —[१४४]

सबत सत्रै सो तिलोत्तरे मिने, हुकुम हुआ श्रीराज।
गागजीभाई के कामको तुम जाओ मेहेराज।।

माह फागुन के बीच में नाव चले जब।
सो चालीस दिनमे पोहोचे, बराख तब।।

सबत सत्रह सौ अठोत्तरे, हुआ एक मजकूर।
सब सामा गई रावरमें, जिनके लिखी मंजूर।।

श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी ने उनका जामनगर वापस आने का समय सं० १७०८ वैशाख मास बताया है।[१४५] लेकिन रणछोड़दास वीरजी के अनुसार यह समय सं० १७०८ फाल्गुन शुक्ल पंचमी का था।[१४६] अतः यही कहना उचित होगा सं० १७०३ (सन् १६४६) से सं० १७०८ (सन् १६५३) तक वे अरबस्तान गये हुए थे इसी कारण जामनगर से बाहर रहे। प्राणनाथ की भाषासमृद्धि की दृष्टि से इस यात्रा का महत्व है। कहा जाता है कि "किरन्तन" ग्रन्थ का "होका प्रकरण" भी इसी समुद्र यात्रा के समय लिखा गया था।

---

१४२ (अ) डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सतसाहित्य, पृ० ७३
(ब) डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, संत साहित्य, पृ० ६४

१४३. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, चरित्र चन्द्रिका, पृ० ५८१

१४४. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १३, चौ० १, ५, ४१,

१४५. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी, श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका, पृ० ६८

१४६. रणछोड़दास वीरजी, श्री पन्नधाम प्रणालिका, पृ० २७३

सूरतस्थान से जामनगर वापस आकर जिस श्रद्धा और प्रेम के लिए प्राणनाथ ने आशा रखी थी उसके अनुरूप दर्शन तक न होने पर उन्हें बहुत दुःख हुआ। गुरु देवचन्द्रजी से भी दो मास तक न मिले। इस उदासीनता को मिटाने के लिए उन्होंने "धोल" राज्य का मन्त्रीपद सं० १७१० (सन् १६५३) में ग्रहण कर लिया।[147] उन दिनों में धोल काठियावाड़ का छोटा राज्य था। धोल के राजा कलोजी ठाकोर ने जामनगर राज्य और नवानगर के युद्ध होने के कारण प्राणनाथ को मंत्रीपद का स्थान दिया था। राज्य कार्य संचालन का सम्पूर्ण दायित्व सौंप दिया गया और उन्होंने सफलता से निभाया। दो वर्ष तक वे वहां पर कार्य करते रहे।[148] इस दरम्यान गुरु देवचन्द्रजी और अन्य सम्बन्धियों में जो गैरसमझ हुई थी वह दूर हो गई। कई बार उनको मन्त्रीपद छोड़कर के जामनगर आ जाने के लिए आग्रह किया। अन्ततः कार्यवश अहमदाबाद गए हुए प्राणनाथ ने धोल वापस आने पर कलोजी राजा से मन्त्रीपद छोड़ देने की अपनी इच्छा व्यक्त की और वे सं० १७१२ (सन् १६५५) श्रावण कृष्ण अष्टमी के दिन जामनगर में पुनः गुरु देवचन्द्रजी के सान्निध्य में आ गए। इस सन्दर्भ में स्वामी लालदास और व्रजभूषण ने लिखा है[149]—

(अ) फेर आये गुजरातमें, कला से भागी वगसीस।
सावन सत्रे सौ बारोतरे, अब मैं पाऊँ सीस॥
(ब) सत्रहसे बारोतरा, भादो मास सुहाई।
कृष्णपक्षकी अष्टमी, पहुँचे तब इत आई॥

(ऊ) यात्राएँ : धर्मप्रचार और प्रसार

गुरु देवचन्द्रजी को अपना अन्तिम समय ज्ञात हो गया था इसीलिए उन्होंने स्वामी प्राणनाथ (मिहिरराज) को धोल से जामनगर बुला लिया था। निजानन्द चरितामृत[150] के अनुसार प्राणनाथ ने गुरु देवचन्द्र से कहा, हे धामधनी! लौकिक कामकाज से तो सब प्रकार निवृत्त हो चुका, अब तो केवल आपकी शरण ग्रहण करनी है। यह सुनकर निजानन्द स्वामी (देवचन्द्रजी) को बड़ी प्रसन्नता हुई। कहने लगे इसीलिए मैं तुम को बारम्बार बुला रहा था। अब आप स्वतः सब प्रकार लौकिक-

---

१४७ हिन्दी अनुशीलन, व० १०, अ० ४, पृ० १२
१४८ स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १३, चौ० ६३
कलोजी के पास रह वरस दोय।
या उपरान्त गुजरात, आठ महीना रह सोए॥
१४९. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र०, चौ० ४४
(ब) व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४०, चौ० ३२
प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३४९–३५०

भार से मुक्त होकर धर्मकार्य के लिए उपस्थित हो गये. यह बहुत उत्तम हुआ। श्री इन्द्रावती स्वरूप आप को सम्पूर्ण भार सौंपे बिना धाम के द्वार पर बिलखती छोड़कर मैं परमधाम को नहीं जा सकता था। इसीलिए विशेषकर के तुमको बार-बार बुलवाया। अब मैं बड़े हर्ष के साथ धर्म का सम्पूर्ण भार तुमको सौंपता हूँ, इसे अन्त तक निभाना। अपने सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टि, अनुयायी) सब देश देशान्तरों मे नाना जाति वर्णों मे फँसे हुए हैं। उन सब को एकत्रित करना है। यह सब कार्य आप के द्वारा पूर्ण होगा। साकुण्डल और सकुमार, ये दो सिरदार ब्रह्मसृष्टि है। सुन्दरसाथ सहित इनको ढूँढकर इकट्ठा करो। तब सब ब्रह्मसृष्टि का मेला (मिलाप) होगा[१४१]—

फिरकें देश दिशनि विषे, साकुण्डल सकुमार।
ढूँढो साथ सकल सहित, मेला करो अपार।।

इस प्रकार गुरु देवचन्द्रजी ने प्राणनाथ को धर्म के प्रचार और प्रसार का दायित्वपूर्ण कार्य दिया। उन्होंने २२ दिन तक परमधाम के विविध लीला रहस्यों को यथाविधि समझाया, भूली ब्रह्मात्माओं को (अज्ञानी जीवों) विश्वव्यापी धर्म अभियान द्वारा ढूँढ निकालने का असाधारण कार्य सौंपा और उनको अपना धार्मिक दायित्व सौंपा। लेकिन इतना गौरवपूर्ण स्थान प्राणनाथ को दिया जाना गुरुपुत्र बिहारी को अनुचित लगा।[१४२] अन्त गुरु देवचन्द्रजी ने भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी सं० १७१२ (बुधवार ५ सितम्बर, १६५५) के दिन प्राणनाथ (मिहिरराज) को अपना धार्मिक उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसी दिन उनका धामगमन हुआ। इसके सन्दर्भ मे बीतककारों ने इस प्रकार का उल्लेख किया है—

(अ) सवत सत्रह बारोतरे, भादो मास उजाला पख।
चतुरदशी बुधवारी भई, हुए धनी अलख।।[१४३]

(ब) सवत सत्रहसें बरस, द्वादस अधिक प्रमान।
भादो सुदि चौदस दिवस, समय निशीथ प्रमान।।[१४४]

स्वयं प्राणनाथ ने अपने गुरु देवचन्द्रजी को धामगमन का उल्लेख इस प्रकार किया है[१४५]—

सम्वत सत्रह बारोतरे बरस, भादों मास उजाला पक्ष।
चतुर्दशी बुधवारी भई, सनघ मई बिहारीजीको कही।।
मघरात पीछे कियो पयान, बिहारीजीको सुध भई कछु जान।

---

१४१ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४०, चौ० ४४
१४२ प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३५६
१४३. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० ७, चौ० १६
१४४. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३४, चौ० ३०
१४५. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश, प्र० ५

उद्विग्न वातावरण के कारण धर्मोपदेश का कार्य थोड़े दिनों तक बन्द रहा। प्राणनाथ देवचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र के और बिहारी उनके कनिष्ठ पुत्र थे। बिहारी के मन में प्राणनाथ के प्रति तेजोद्वेष भी था। अतः इस परिस्थिति को सुलझाने के लिए प्राणनाथ ने धर्मगद्दी पर बिहारी को बिठाया और धर्म प्रसार एवम् प्रचार का कार्य गुरु ने शुरू किया। नवरंग स्वामी ने देवचन्द्रजी धामगमन के तीन वर्ष के बाद सं० १७१५ (सन् १६५८) बिहारी का गादी पर बैठना माना है[१५६] —

बरस तीन लों दिन न उचारी, तब देखी श्रीजी साहेब बिचारी।

लेकिन स्वामी लालदास और ब्रजभूषण ने उसी वर्ष अर्थात् सं० १७१२ आश्विन मास में गादी होना लिखा है।[१५७] यह कार्य हो जाने के बाद नित्य सुबह शाम धर्म और ज्ञान चर्चा बड़ा होने लगी। लेकिन जनजागृति से आर्थिकसंकट का अनुभव होने पर उन्होंने पिता के स्थान पर जामनगर राज्य के मन्त्रीपद को ग्रहण कर लिया। यह दायित्वपूर्ण कार्य उन्होंने सं० १७१२ (ई० १६५५) में प्राप्त किया। साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर ही इस तथ्य को यहां रखा जा सकता है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में उनका कोई नामोल्लेख नहीं मिलता। इन दिनों में उन्होंने गुरु की आज्ञानुसार देवचन्द्रजी के अनुयायियों का एक मेला लगाने का निश्चित किया। इसके लिए सब सामान एकत्रित होने लगा। लेकिन इसी बात को लेकर राजा से चुगली की गई कि प्राणनाथ (मिहिरराज) ने द्रव्य धनवान थी, लाड आदि सब चीजों के भण्डार अपने घर भर रखे हैं। तमाम लोगों को खिलाना पिलाना और दान करना प्रारम्भ कर दिया है। यह कार्य राज्य की सम्पत्तियों से हो रहा है। चुगलखोरों की बात सुनकर राजा और दूसरे वजीर ने प्राणनाथ के द्रव्य-भण्डार को जप्त कर लेने का आदेश दिया और प्राणनाथ को कैद किया गया[१५८]—

---

१५६. (अ) नवरंग स्वामीकृत बीतक, प्र० १३, चौ० ३

(ब) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६३

बरस तीन लों दिन न उचारी, तब देखी श्रीजी साहेब विचारी।

सम्वत सत्रह पनोतर आए, गादी श्री बिहारीजी पधराए॥

१५७ (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र०, १५, चौ० १

सवन सत्रह बारोतरे, आसोजे महीने में।

सब साथको खबर, पोहोंची मेहेराजसें॥

(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४०, चौ० ७६

सत्रहसें बारोतरा, आश्विन मास सुहाय।

खबरि सबन मेहराज कू, पठई आप कहाय॥

१५८. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १५, चौ० ३६

इस बात की चुगली, बजीर आगे गई।
उनने कछू ना विचारिया, बात दिल मे लई ॥

सम्प्रदाय मे इस कैदखाने को "हवसा" या "प्रबोधपुरी" के नाम से पहचाना जाता है[१५६]—

कह्यो प्रबोधपुरी वो, हवसा मध्य कुरान।
ऋतु अषाढ मलारमे, तब बैठे इत ग्रान ॥

मुरलीदास धामी के अनुसार, उमी समय वि० स० १७१४ मे अहमदाबाद के सूबेदार कतुबखाँ ने जामनगर पर चढाई कर दी, जिसके परिणामस्वरूप उन्हे एक वर्ष के लिए प्रबोधपुरी मे निवास करना पडा।[१६०] प्रो० अमृत पड्या ने उनका कैद होने के लिए दूसरे वजीर से अनमेल होने का कारण बताया है।[१६१] प्रो० माता-बदल जायसवाल इस सदभ मे लिखते हैं, एक धार्मिक समारोह करने की इच्छा से वही बहुत-सा सामान एकत्र किया। कुछ लोगो ने व्यर्थ ही जामवजीर से चुगली कर दी। उन अविवेकी ने हवसा मे इन्हे बन्दीगृह मे रख दिया।[१६२] अत यही उचित है कि चुगलीवश ही उन्हे कैदखाने मे रहना पडा हो क्योकि कुतुबखाँ की चढाई का ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता। वस्तुत उमी समय सूबेदार की ओर से जामनगर पर चढाई करने की धमकी मिलने पर जामराजा और वजीर इन्हे बन्दीगृह मे छोड कर अहमदाबाद चले गए। इतिहास के पृष्ठो पर इस प्रसग का कोई प्रमाण नही मिलता। लेकिन, साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख हुआ है। उमी के आधार पर, यह समय स० १७१४ (सन् १६५८) का था—

सत्रहमें चौदह विषे, सूबा आयो ग्रोर।
नृपति जाम मन्त्री सहित, गये मिलन तेहि ठौर ॥[१६३]

इस समय "प्रबोधपुरी" अपने दो भाई सामल और ऊधव के साथ स्थित प्राणनाथ को राजा से किये गये अन्याय और फलविरह का अत्यन्त दुःख हुआ। अत. प्रबोधपुरी-कैदखाने-मे वे इतने भावविभोर हो जाते कि उनके हृदय से ब्रह्मवाणी प्रस्फुटित होने लगी। इन वानियो को दोनों भाई दीवार पर लिख लेते थे, जो आज

---

१५९. व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२ चौ० २०
१६०. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० १५
१६१. गुजराती साहित्य परिषद-२० मु अधिवेशन-हेवाल, पृ० २२२
१६२. हिन्दी अनुशीलन, व० १०, अंक ४, पृ० १२–१३
१६३. व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२, चौ० १६

"राम" "प्रकाश" (गुजराती), "कलश" (गुजराती) और "षट्ऋतु" में ग्रन्थस्थ है। "कलश" का केवल प्रारम्भ ही वहाँ हुआ था।[१६४] कहा जाता है कि ग्रहमदाबाद में स० १७१५ (सन् १६५८) में वापस जामनगर आने पर कारावासस्थित प्राणनाथ के चमत्कारों की बातें राजा और वजीर ने सुनी और उनको रिहा कर दिया। जामराजा ने अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी।[१६५] लेकिन इस प्रसंग से प्राणनाथ के मन पर राजनीतिक जीवन के प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ।

इतिहास की दृष्टि से इतना सिद्ध अवश्य होता है कि कुतुबुद्दीन मेसगी नामक प्रांतीय-शासक था। लेकिन वह सोरठ प्रदेश का शासक था। जामराजा की ई० १६६६ (स० १७२०) में मृत्यु होने के बाद उपस्थित हुए आंतरिक झगड़े को लेकर इसी कुतुबुद्दीन को नवानगर पर आक्रमण करने का सूबेदार की ओर से आदेश दिया गया था।[१६६] "बीतक" में दिए गए इस आक्रमण का उल्लेख इस प्रकार इतिहास से प्रमाणित होता है। तत्कालीन गुजरात का सूबेदार कासम खान था।

राजनीतिक जीवन में घृणा होने पर भी जामराजा की ओर से राज्य के आवश्यक कार्य के लिए प्राणनाथ को स० १७१६ चैत्र शुक्ला १ रविवार के दिन(सन् १६५६) जामनगर से जूनागढ़ की ओर गाव बसाने के हेतु जाना पड़ा।[१६७] प्रो० मातावदल जायसवाल के मतानुसार कंदमाले (प्रबोधपुरी) से मुक्ति मिलने के बाद शीघ्र ही उन्हें राजनीतिक जीवन से विरक्ति हो गई और वे उसे त्याग कर पूर्ण रूप से धर्मजागरण के कार्य में लग गए।[१६८] वस्तुतः राजनीति जीवन से घृणा होने पर भी वे उस कार्य से छुटकारा नहीं पा सके। लेकिन जूनागढ़ से ही उन्होंने धर्म-प्रचार का सूत्रपात व्यक्तिगत रूप से शुरू कर दिया था, इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

नया गाँव बसाने का प्रबन्ध करने में वहाँ पर दो वर्ष व्यतीत हो गए। वहाँ पर एक कान्हजी नामक व्यक्ति प्राणनाथ के से धर्मचर्चा सुनने आया करता था। कान्हजी वहा के प्रतिष्ठित विद्वान हरिजी व्यास का नौकर था। वे अचानक बीमार

१६४. वही, प्र० ४२, चौ० ३०–३७
१६५ (अ) वही, प्र० ४३, चौ० २–६
(ब) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६८
१६६. (अ) गेजेटियर आफ वाम्बे प्रेसिडन्सी, वा० १, भा० १, पृ० २८२, २८३
(ब) सर जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ ओरंगजेब, भा० ३, पृ० ४०–४१
१६७. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४०२–४०३
१६८ हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ३३१

हो गए और सन्निपात हो जाने के कारण उनकी परिस्थिति चिन्ताजनक हो गई।' यहां तक कि उनके बचने की कोई आशा न थी। उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा को व्यक्त करते हुए कहा, केवल दो बातों की कामना लेकर मैं जा रहा हूँ। एक तो जिसको मैंने स्थापित किया उसे कोई उत्थापित न कर सका और जिसका मैंने निराकरण किया, उसे कोई स्थापित न कर सका। यह बात कान्हजी ने प्राणनाथ से कही और प्राणनाथ हरिजी व्यास से ज्ञानचर्चा करने के लिए तैयार हुए। दोनों के बीच श्रीमद्भागवत के तत्वों पर चर्चा हुई। अन्ततः हरिजी व्यास शास्त्रार्थ में पराजित हुए और प्राणनाथ के अनन्य शिष्य बन गए।[१६९] प्राणनाथ ने यहीं से गुरु की दी हुई तारतम्यमन्त्र की दीक्षा देना शुरू किया। हरिजी व्यास और प्राणनाथ के बीच हुई एक मास की ज्ञानचर्चा ने जनजाग्रति ला दी। सं० १७१८ (सन् १६६१) में वे जामनगर वापस गए। इसके बाद तुरन्त ही, अर्थात् सं० १७१९ (सन् १६६२) में अहमदाबाद के सूबेदार कुतुबखां ने पुन. जामनगर पर चढ़ाई करदी।[१७०] स्वदेश रक्षा के प्रश्न को विशेष महत्त्व देकर उन्होंने जामनगर राज्य के प्रधान–मन्त्री पद को स्वीकार किया।[१७१] इस सिलसिले में अन्ततः सूबेदार कुतुबखान के साथ समाधान करने के लिए वजीर सहित आप अहमदाबाद गये। जामराजा ने निश्चित किये गये समय पर सूबेदार को पैसे नहीं भिजवाये और इसीलिए उनको कैद किया गया। लेकिन प्राणनाथ के किसी शिष्य ने युक्ति से अपने आपको कैदखाने में ला दिया और प्राणनाथ को मुक्ति दिला दी। इस धोखे से उनका मन उद्विग्न हो गया और वे पुनः जामनगर गये ही नहीं। वार्तिक बीतक में बताया है कि वे अहमदाबाद से जामनगर आये थे और धर्मप्रचार के लिए दीव आदि स्थानों पर भ्रमण करना शुरू किया। प्रो० मातावदल जायसवाल ने लिखा है, सं० १७१९ (१६६२ ई०) में कुतुबखां ने

---

१६९. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४३, चौ० २३, ५३

रहे आप द्वै वर्ष तित, साथ कान्हजी एक।
ब्राह्मण हरिजी व्यासकी, बाते कही बिवेक॥
शीश नवायो चरनतर, तुम हो ब्रह्मसरूप।
मेरो मेटन गर्व तुम, धरि आयो निजरूप॥

१७०. स्वामी लालदासकृत, बीतक, प्र० १६, चौ० ६५

सवत सत्रैसें उनईसें, देस पर आया कुतुबखान।
उत हुआ इलहाम, थी - मोमिन पेहेचान॥

१७१. वही, प्र० १६, चौ० ६७

फेर बीसोत्तरे जामी सत्ताक ले दीवानगीरी सब।
सारा कसाला सिर पर, खीच लिया तब॥

पुन जामनगर मे चढाई की। इसी समय उस सूबेदार को समझाने के लिए जाम-वजीर के साथ श्री मेहेराज भी अहमदाबाद (गुजरात) गए; किन्तु वहाँ इनके साथ इस प्रकार का धोखा हुआ कि राजकार्य से इन्हे तिरस्कार हुआ। तभी से लौकिक कार्य त्याग कर पूर्ण रूप से आप धर्मजागरण के कार्य में दत्तचित्त हो गए।[१७२] स्वामी लालदास और ब्रजभूषण के आधार पर यही सिद्ध होता है कि वे पुन जामनगर नही गए।[१७३] इतिहास की दृष्टि से यह प्रसग सही नही उतरता। कुतुबुद्दीन की चढाई जामनगर पर सन् १६६४ (स० १७२०) मे हुई थी।[१७४] यह सम्भवित है कि प्राणनाथ के अहमदाबाद के कैदखाने से भाग जाने के बाद इतिहास-लिखित चढाई कुतुबुद्दीन ने की हो। प० कृष्णदत्त शास्त्री का मन्तव्य है कि सता जाम से विदा लेकर के प्राणनाथ ने स० १७२२ (सन् १६६५) मे दीव की ओर प्रयाण किया था।[१७५] लेकिन सता जाम की मृत्यु (सन् १६६४) स० १७२० में हो चुकी थी।[१७६] अतः यही सम्भव है कि उन्होने यहीं से धर्म हेतु भ्रमणकार्य का मुख्य उद्देश्य के रूप मे प्रारम्भ किया हो।

सं० १७२२ (सन् १६६५) मे वे दीव पहुँचे और वहा अपने पुराने साथी जयरामभाई कंसारा के निवासस्थान पर ठहरे। दीव मे उन्होने अपनी धर्मपत्नी तेजबाई को बुला लिया। यहा पर वल्लभाचार्य के अनुयायियो ने उनको परेशान किया। इस समय कुछ अरब दस्युओं ने दीव पर छापा मारा। उन्हे जो कुछ हाथ लगा द्रव्य दौलत और तरुण स्त्रियो का अपहरण कर वे ले गए। इनमे प्राणनाथ के अनुयायी भी थे। धर्म प्रचार और इस अपहरण प्रथा का नाश करने के लिए उनको कच्छ की ओर प्रयाण करना पड़ा।[१७७] बताया जाता है कि दीव मे वे दो वर्ष रहे और स० १७२४ (सन् १६६७) मे वे कच्छ के माटवीनगर मे प्रभासपाटन

---

१७२. प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ५

१७३. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १६, चौ० ६८
(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४३ चौ० ६२–६४

१७४. गेजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडन्सी, वा० १, भाग १, पृ० २८३

१७५. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४१४

१७६. गेजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडन्सी, वा० १, भाग १, पृ० २८३

१७७ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४४, चौ० २६–३०

माघी दश पाचक गये, कंद माहि ठाम।
चले आप तब कच्छको, प्रगट करन प्रभु नाम ॥
पोरवन्दर पाटन नवो, ग्राम ग्राम प्रति फेर।
भवजलकी लहरें उठें, जगे जीव नहि टेर ॥

नवीबन्दर और पोरबन्दर होकर पहुँचे। एक दिन मांडवी, दो दिन कपई, दो दिन भुज और नलिया होते हुए वे सिन्ध के प्राचीन शहर ठठ्ठा मे पहुँचे। कपई मे बडे भाई हरिवंश से मिले।[१७९] ठठ्ठा मे १०-१२ दिन गुजारे और लाठो मे ४ दिन व्यतीत करने के बाद वे मस्कत के लिए रवाना हुए। किन्तु मौसम प्रतिकूल होने के कारण समुद्र मे जोर का तूफान आ गया। अतः १७ दिन के बाद जहाज पुनः लाठी बन्दर लौट आया। वहा से पुनः वे ठठ्ठा नगर पहुँचे और इस वक्त दस मास तक वे यहीं रहे। उस समय वहां चिन्तामणि नामक कबीरपंथी महन्त रहते थे। प्राणनाथ ने उनके ज्ञान की बहुत महिमा सुनी और एक दिन उनसे मिलने गए। उनके साथ धर्मचर्चा हुई—

मुने साध चिन्तामन, रहे कबीर धरम में।
कीजे दीदार तिनका, सुने चरचा उन मुख मे॥[१८०]

प्राणनाथ ज्ञानपिपासु थे। उन्होने कबीर के "एक पलक ते गग जो निवसी, ह्वै गयो चहुँ दिसि पानी" पद का गूढार्थ चिन्तामणि से जानना चाहा। लेकिन चिन्तामणि इसका रहस्य स्पष्ट न कर सके और जब उसका रहस्य प्राणनाथ ने समझाने की कोशिश की तब चिन्तामणि प्रभावित हो गये। कहा जाता है कि चिन्तामणि जब काशी में अपने गुरू के साथ रहते थे तब उसी पद की चर्चा चली थी। उस वक्त गुरु ने कहा था कि इस पद का अर्थ बतानेवाला एक महापुरुष तुम्हें भविष्य में अमुक वर्ष मे मिलेगा। यह बात उन्हे आज सच मालूम हुई।[१८१] यहीं पर पोरबन्दर निवासी लक्ष्मणदास नामक धनी सेठ से भी प्राणनाथ की मुलाकात हुई। वैष्णव-भक्ति मे लीन रहनेवाले लक्ष्मणदास प्राणनाथ के शिष्य

---

१७८ स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १६, चौ० १५

सवत सत्रै बाईसे, दीव पधारे श्री राज।
दोए वरस तहां रहे, सब पूरे मनोरथ काज॥

१७९. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० २०, चौ० ३५

हरिवंस ठाकर तहा रहे, अपने कबीले समेत।
तहा आये वासा किया, जान धामका खेत॥

१८०. वही, पृ० २१, चौ० ११

१८१. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४३१

हो गए और तारतम्य-मन्त्र से दीक्षित हुए। वही सेठ बाद में लालदास स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए।[१८२]

प्राणनाथ अपने अल्प अनुयायी के साथ पुनः ठट्ठा से लाठी बन्दर होते हुए फिर से सं० १७२५ (सन् १६६८) में मसकत (अरबस्तान की सीमा पर) पहुँचे। अपने धर्मोपदेश से यहां पर कई व्यक्तियों को अनुयायी बनाया। यहां पर महावजी नामक व्यक्ति ने उनको सजातीय जानकर स्वागत किया था। यहां पर लूटखेप के बन्धन में पड़े हुए अनुयायियों का पता लगा तो प्राणनाथ दरोगा से मिले। दरोगा ने २८ हजार रुपये की मांग की। लेकिन प्राणनाथ इस प्रथा को ही निर्मूल करना चाहते थे, इसलिए वे कुछ देने के लिए तैयार न हुए। दरोगा ने इनके उपदेश को ग्रहण किया, लेकिन डाकू दल सम्बन्धी अपने विचार वह कार्यरूप में परिणत न कर सका। यहां पर वे २ वर्ष और ६ मास तक रहे—

इन भात बरस अठाइसें, रहे मसक्त में।[१८३]

यहां से सं० १७२८ (सन् १६७०) में अबासी बन्दर आये और तीन मास रहे। वहां मांस मदिरा का सेवन करनेवाले भैरो सेठ को अपने धर्मोपदेश से व्यसनों से मुक्त करवाया। भैरो सेठ के ७० हजार अर्थदान से बन्धन में पड़े हुए अनुयायियों को उन्होंने सं० १७२८ में छुड़वाया।[१८४] यहां पर मुलतान के दो खत्री रहते थे, जो गुरु नानक के मत में और योगाभ्यास में बहुत प्रवीण थे। उनके पास कबीर की साखियों का एक ग्रन्थ था। लेकिन कई साखियों का रहस्य वे खोल न सके थे, इसीलिए प्राणनाथ से मिलने आये थे। प्राणनाथ ने साखियों का रहस्य समझाया। यहां अन्य व्यक्तियों में भैरो सेठ और गोवर्द्धन भट्ट, तारतम्यदीक्षा

---

१८२. (अ) वही, पृ० ४४५ (पादटीप)

(ब) व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, पृ० ४५, चौ० ६८-८९

लदमन सेठ तहां रहे, है इनको जजमान।
भारत गीता भागवत, माहि प्रवीन प्रमान॥
लालदास आगे भये, चतुरदास प्रवीन।
साथ माहि दाखिल भये, प्रेम परम कुल चीन॥

१८३. स्वामी लालदासकृत बीतक, पृ० २४, चौ० ४६

१८४ प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४६०

लेनेवालों मे से मुख्य हैं।[185] यहाँ पर वे दो-तीन मास तक रहे।[186] सं० १७२८ वैशाख (सन् १६७१) मे वे मस्कासी बन्दर से होकर कोकबन्दर और पुनः लाठी बन्दर आ पहुँचे। यहाँ चार दिन ठहरकर पुनः ठठ्ठा में आए—

तहां चार दिन रहेकें, आए नगर ठठे।[187]

ठठ्ठानगर मे आ पहुँचने के बाद प्राणनाथ ने बिहारी को जामनगर एक पत्र लिखा, जिसमे लिखा कि हम कच्छ नलिया जा रहे हैं और आप जामनगर से नलिया आकर मिलिए। इस बार ठठ्ठा मे एक मास रहकर, लक्ष्मणपुर होते हुए कच्छ नलिया पहुँचे। यहाँ पर डेढ मास रहकर घोघा बन्दर में तीन दिन व्यतीत करते हुए वे मुहाली पहुँचे।[188] वस्तुत. प्राणनाथ ने "नलिया" मे गुरुपुत्र का इन्तजार किया था और उस वक्त बिहारी का मांडवी (कच्छ) बन्दर पर उतरने का समाचार नलिया आकर खंभालिया के धाराभाई ने आकर दिया। यहाँ प्राणनाथ और गुरुपुत्र बिहारी की मुलाकात हुई। बिहारी ने धाराभाई को धर्म से बहिष्कृत कर दिया था। यहाँ पर गुरुपुत्र से प्राणनाथ ने यही विनती की कि धाराभाई के प्रति उदारता दिखाई जाए। लेकिन बिहारी अपने निर्णय मे अडिग रहे। दोनों के बीच धर्म प्रचार का प्रश्न भी निकला। बिहारी को धर्मप्रचार के लिए नगर-नगर भ्रमण करना पसन्द न था। अत उन्होने प्राणनाथ से कहा, आप भी हमारी आज्ञा मानो तो किसी राज्य का कार्यभार सभालो। देश में ठीक न लगे तो कच्छ मे ले लो। इस प्रकार दोनों के बीच अन्तर पडता गया। नलिया से सब माडवी आये और गुरुपुत्र जामनगर की ओर रवाना हो गए।[189] प्रो० मातावदल जायसवाल

---

१८५. वही, पृ० ४३८

१८६. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक, पृ० २५, चौ० ६७
तब मास दो-तीन भए, रजा मागी जब।
(ब) ब्रजभूषण, वृतान्तमुक्तावली, पृ० ४६, चौ० ७७
इत भये जब मय मास, मुख बिदा वचन हुलास।

१८७ स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० २६, चौ० २

१८८. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० २३

१८९. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० २८, चौ० २४-२५
इहा सेंती चलकों, आए मंडई बन्दर।
तहां साथ सब आए मिल्या, बाग मे लई जागा उताराकर॥
गए बिहारीजी खभालिए, देख दजालने किया बडासोर।
मोमिन एक ठोर भए, इनें पोहोचाऊं जोर॥

दे सकता। [१९९] लेकिन प्राणनाथ ने इन नियमों का विरोध किया—[२००]

देवचन्द्र के धर्म को, हिरदे करो विचार।
उत्तर जो अब बात को, समुझि परे तब सार॥
बाह्य दृष्टि को छोड़िकें, नजर करी निज नूर।
देख्यो जित अक्रूर को, बकस्यो तहाँ हजूर॥
प्रगट लखो है बात तुम, भवन बधू कुन जान।
परखो त्यागी वासना, दयो तारतम ज्ञान॥
विधवा दारा वह हुती, नीच असुर की जात।
नजर करी अक्रूर पर, बाई रई मु जात॥

इस प्रकार जिस लोजीबाई को गुरु देवचन्दजी ने दीक्षा दी थी उसका उदाहरण देकर प्राणनाथ ने प्रत्युत्तर में लिखा कि गुरु देवचन्द्रजी के मार्ग में विधवा-सधवा, स्त्री-पुरुष अथवा केवल वर्ण विशेष के भेद को स्थान नहीं है। इस प्रत्युत्तर के साथ सूरत में लिखा गया ग्रन्थ "रास" भी भेजा। लेकिन गुरुपुत्र इस प्रत्युत्तर में नाराज हुए और ग्रन्थ भी उन्होंने जामनगर से लौटा दिया। [२०१] तदनन्तर अनुयायियों के आग्रहवश प्राणनाथ ने स्वतन्त्र होकर धर्म भार उठाया। इतना स्पष्ट है कि बिहारी रूढ़िवादी और तेजोद्वेषी थे इसीलिए उनके साथ इनके विचारों का पूरा मेल नहीं बैठ सका। सूरत से ही इन दोनों के बीच तीव्र विरोध हुआ। फिर भी प्राणनाथ ने निरपेक्ष भाव से धर्म प्रचार और प्रसार कार्य जारी रखा। यहाँ पर ठठ्ठा के लक्ष्मण सेठ (स्वामी लालदास) सं० १७२९ (सन् १६७२) आ पहुँचे। [२०२]

---

१९९ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४६, चौ० ५-६

हम तुम बिन यह तारतम, कबहू कहै न कोइ।
नीच जानि को तारतम, कहिये नाही दोइ॥
पुन कोऊ विधवा बधू, ता प्रति कहो न आप।
ये तीनों बाते करो, उत्तम बढ़े प्रताप॥

२०० वही, प्र० ४६, चौ० २३-२४

२०१. स्नेह सखी की बीतक, प्र० ५५

तुम सम्बन्ध हमारो छोड्यो, आत्म सबध श्री देवचन्द्र से जोड्यो।
अही सबै उनकी तुम बातें, छोडी सब हमरी विख्याते॥

२०२. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० २८, चौ० १०७

तहा से नाउ चढ़के, आए बंदर सूरत।
सवंत सत्रै से ओगनती से, एह आए पोहोची सूरत॥

बाद मे भीमजीभाई भट्ट, जो कट्टर वेदान्ती थे और प्राणनाथ के अनुयायी बन गए थे, उनके घर पर प्राणनाथ और तेजबाई की पूजा की गई। लेकिन आज जो स्थान "मंगलपुरी" के नाम से अभिहित होता है, संभवत शिवजीभाई का मकान होगा। क्योंकि शिवजीभाई की सेवा से प्रसन्न होकर प्राणनाथ अपने युगल स्वरूप मे वहा गए थे और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की गई थी—

> बन्दर सूरत पचशत चले भुजा गहि साथ।
> मन्दिर शिवजी ग्रह अचल थिर करि थानो नाथ॥[२०३]

इस प्रकार उन्होंने सूरत को धर्मयज्ञ महा अभियान सकल्प की जन्म भूमि के रुप में संस्थापित किया। यहाँ पर वे १७ मास तक रहे।

सं० १७३१ (सन् १६७४) मे सूरत से २५० अनुयायियों को लेकर औरंगजेब की धर्मांधता का नाश करने के हेतु दिल्ली जाने के लिए अहमदाबाद की ओर वे रवाना हुए। मढ्च होते हुए अहमदाबाद पहुचे और वहा चार दिन ब्रह्मज्ञान चर्चा की। वहा से सिद्धपुरपाटन मे २२ दिन ठहरे। वहाँ पर उन्होंने धर्मचेतना ला दी। भगवान उपाध्याय को जागृत करके केशवदास भट्ट ने धर्म मंदिर की स्थापना की। वहाँ से पालनपुर होकर राजस्थान अन्तर्गत मेड़ता मे वे आ पहुँचे। प्रो० मातावदल जायसवाल ने उनके मेड़ता आगमन को सं० १७२१ (१६६४ ई०) माना है।[२०४] वस्तुत वे उक्त साल मे ही मेड़ता आ पहुँचे थे।

मेड़ता मे लाभानन्द नाम का एक यति था। उसके साथ ब्रह्मज्ञान की चर्चा प्राणनाथ ने शुरु की। वह यति योगविद्या और चमत्कारिक प्रयोगों मे प्रवीण माना जाता था। उनके साथ १० दिवस तक ब्रह्मज्ञान की चर्चा हुई और अन्ततः वह पराजित हुआ। अत प्राणनाथ पर वह बहुत क्रोधित हुआ और तन्त्र मंत्र से उनको मार डालने का प्रयत्न करने लगा—[२०५]

> दस दिन चरचा मे भए, ठौर ठौर हुओ जब बध।
> तब कही माहातम मेरो गयो, मेरे मारण को परबंध॥
> मारों दाव के पहाड मे, इनकों डारों उलटाए।
> मवदैतों के मंत्र से, भांत भांत किए उपाय॥

---

२०३. व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४६, चौ० ८१

२०४. (अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ५
(ब) हिन्दी अनुशीलन, व १०, अं० ४, पृ० १४

२०५. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३१, चौ० ४३-४४

यहां पर राजाराम और भाभन भाई, जो सनाणि सेठ थे, इन दोनों ने परिवार सहित प्राणनाथ का शिष्यत्व स्वीकार किया। उन्होंने लगभग दस वर्ष तक सुन्दरसाथ अनुयायियों की तन मन धन से सेवा की। राजाराम ने अपनी हवेली में ही मंदिर की स्थापना करवायी।[206] एक दिन मेड़ता में प्राणनाथ मसजिद के सामने से निकले। मसजिद के मीनार पर चढ़कर मुल्ला नमाज के निमित्त बांग दे रहा था। बांग के शब्द उन्होंने ध्यान पूर्वक सुने। वे कलाम के गूढ़ार्थ पर चिन्तन करने लगे। गहन स्वाध्याय के पश्चात् वे इस मत पर पहुँचे कि कुरआन और पुराण के मूल तत्वों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अपने शिष्य लालदास से उन्होंने बतलाया कि सबसे पहले आत्मिक ज्ञान की महत्ता और उसके साथ इसलाम की आध्यात्मिक परम्परा की सूझ औरंगजेब को समझानी चाहिए। रसूल (मुहम्मद) साहेब ने ब्रह्मसृष्टि (इस्लाम के मत से अरस अजीम से नाजिल हो। यानी एक जमात) के स्वरूप को समझने के लिए, कलाम आगाह करता है कि जो मोमिनों के इल्म इलाही का और उनकी दावत का ऐतबार न होगा, वह नबी की रिसालत का भी ऐतबार नहीं हो सकता। यदि औरंगजेब इस बात को कबूल कर ले तो फिर दूसरे लोगों को समझाने कठिनता न होगी।[207] यहीं पर महाराजा जसवन्तसिंह की धर्मनिष्ठा सुनने पर प्राणनाथ ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध होने की प्रेरणा देते हुए दो पत्र गोवर्द्धन भट्ट के द्वारा पेशावर भेजे। मेड़ता में चार मास गुजार कर और इस्लाम की शरीयत के साथ युद्ध करने का निश्चय करके वे सं० १७३२ (सन् १६७५) में मेड़ता से मथुरा होकर वृन्दावन पहुँचे। श्रीकृष्ण की क्रीडास्थली वृन्दावन में उन्होंने रासलीला के रहस्यों का विशद विवेचन किया। जिसे सुनकर राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी प्रभावित हुए। फिर आगरा होकर वे दिल्ली पहुँचे। उस वक्त आगरा सुरक्षित स्थान था और इसलिए ("बाईजीराज") तेजबाई तथा अन्य स्त्रियों को आगरा में छोड़ कर वे दिल्ली की ओर रवाना हुए।[208] इस प्रकार सं० १७३३ (सन् १६७६) में वे सर्व प्रथम

---

२०६. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५०, चौ० २७

महा साथ सबके बिचे, राजाराम प्रवीन।
तिन घर मंदिर थापना, कीन्ही आप नवीन॥

२०७. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द, चरितामृत, पृ० ५२२-२३

२०८. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५१, चौ० १५-१६

चले मेरता शहर ते, करि विचार नृप एह।
वृन्दावन मथुरा गये, लरयो आगरा जेह॥
रहिके वहां कछुक दिन, दिल्ली पहुँचे आइ।
ठट्ठाके साथी यहां, रहे सचामक आइ॥

दिल्ली आये। प्रो० मातावदल जायसवाल लिखते हैं, वे गोकुल, मथुरा और आगरा होते हुए सन् १६७८ (सं० १७३५) में दिल्ली पहुँचे।[२०९] वस्तुत प्रथम बार दिल्ली में वे विट्ठलगौरपुरा नाम के मुहल्ले में एक हवेली में उतरे थे। अपने ध्येय की पूर्ति के लिए सब तजवीज करने लग गए। इसी समय ठठ्ठा से करीब ५० साथी (अनुयायी) और सूरत से मुकन्ददास (नवरंग स्वामी) आदि यहां आ पहुँचे। यशवन्तसिंह से मिल कर निराश होकर गोवर्द्धन भट्ट भी यहां आ गया। यहां छः मास तक प्राणनाथ ने अपना ब्रह्मज्ञान का समापण जारी रखा। अनन्तर अन्य अनुयायियों के आग्रहवश उक्त मुहल्ला छोड़ कर वे सब "लाल दरवाजा" नामक मुहल्ला में चले गए।[२१०] यहां पर प्राणनाथ को औरंगजेब की कट्टरता की बातें मिलती रही और उस आधार पर उनको निश्चय हो गया कि औरंगजेब की कट्टरता को हटाने के लिए कोई युक्ति रचे बिना सफलता प्राप्त न होगी। अत एकान्त चिन्तन के लिए वे यहां से शाहजहांपुर बोडिया के लिए रवाना हो गए। यहां से १०–१२ दिन के बाद उन्होंने औरंगजेब को अपने वश में लाने के लिए इस्लाम की महत्ता प्रदर्शित करता हुआ एक पत्र लालदास और भीमभाई के द्वारा औरंगजेब पर लिख भेजा। इस कार्य में असफलता की शंका उत्पन्न होने पर कान्हजी भाई नामक अनुयायी द्वारा दिल्ली में लालदास और भीमभाई से कहलवाया कि हमारे आने के बाद ही औरंगजेब को पत्र देने का कार्य करना। प० कृष्णदास शास्त्री ने प्राणनाथ का एक मास तक बोडिया में ठहरना बताया है।[२११] स्वामी लालदास लिखते है—

मास चार इत रहे, फेर चले हरद्वार।[२१२]

लेकिन उनका वहां चार मास तक रहना स्वाभाविक लगता है और लालदासजी की पुष्टि मिलती है। वहां से वे हरिद्वार गये। हरिद्वार में सं० १७३५

---

२०९. (अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ५
(ब) हिन्दी साहित्यकोश, भाग २, पृ० ३३१

२१०. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३२, चौ० २८, ३१
विट्ठल गोरके मुहल्ले, सैयदकी हवेली मे।
तहा जो साहेब रहत हैं, मैं खबर करों उनसें॥
इन हवेली मिनें, रहे मास छे।
तहा से लालदरवाजेको, ले चला उतके॥

२११. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ५२६

२१२. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३३, चौ० २१ (यहाँ पर, हजारीलाल की प्रति मे "मास एक इत रहे" मिलता है। लेकिन यह सही नहीं है।)

(सन् १६७८) में कुम्भ का पर्व था। प्राणनाथ ने भी वहाँ जाना आवश्यक समझा। लेकिन कुम्भ मेला लगने उससे कुछ दिन पहले वृन्दावन में चारों सम्प्रदाय और अखाड़े वालों का एक सम्मेलन मिलना था। इस सम्मेलन में कुम्भमेले के लिए नियम बनाये जाने थे। लेकिन प्राणनाथ इन बातों से अज्ञात थे। अतः उन्होंने हरिद्वार में जाकर ब्रह्मज्ञान की धर्म चर्चा शुरू कर दी। इस समय अन्य मतावलम्बियों ने विरोध किया कि आपको सम्मेलन की ओर से झंडा-निशान लेकर फिरने का अधिकार प्राप्त नहीं है। फलतः इस समस्या को सुलझाने के लिए शास्त्रार्थ का, जिसको मुरलीदास धामी ने सर्व धर्म परिषद् कहा है,[213] आयोजन किया गया। इस शास्त्रार्थ में रामानुज सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय और माध्व सम्प्रदाय अर्थात चारों सम्प्रदाय के प्रतिनिधि, दशनामी सन्यासी, षट्शास्त्र के दार्शनिक आदि उपस्थित थे।[214] प्रारम्भ में प्राणनाथ ने देवी भागवत, लिंगपुराण, मुण्डक उपनिषद् श्रीमद्भागवत, श्वेताश्वतर उपनिषद् यजुर्वेद आदि शास्त्रों के सहारे विविध धर्मों और सम्प्रदाय की मर्यादाओं का दिग्दर्शन कराया। तदनन्तर, चारों सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों ने अपने अपने मत के अनुसार विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, और द्वैतवाद के प्रतिपादनार्थ अपनी साम्प्रदायिक दर्शनपद्धति प्रस्तुत की। इसके बाद दशनाम सन्यासी अपना मत प्रकट करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने चार मठों की स्थापना, मठाधीश के पद, दशनामों की रचना के बारे में अपने दीक्षामन्त्र के आधार पर अपनी पद्धति की व्याख्या की। तत्पश्चात् नैयायिकमतदर्शन, मीमांसामतदर्शन, सांख्यमतदर्शन, वैशेषिकमत दर्शन, पातञ्जलमतदर्शन और वेदान्तमतदर्शन के प्रतिनिधि विद्वानों ने अपने अपने मत का समर्थन किया। प्राणनाथ उक्त सभी विद्वानों के सामने उनके धर्म मत की त्रुटियाँ प्रस्तुत करते थे और उसके लिए उन विद्वानों के पास कोई प्रत्युत्तर एवं समाधान नहीं था। उक्त विद्वानों में गुरु से ही क्षोभ था और अब उलझन पैदा होने पर प्राणनाथ से अपने साम्प्रदायिक विचार व्यक्त करने की प्रार्थना की—[215]

---

२१३ मुरलीदास धामी, धर्म अभियान- पृ० ४६

२१४. व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५२, चौ० २–३

सन्यासी दस चारि सप्रदा, षट दरशन सब मिलियो।
वरन चारि अरु चारयो आश्रम, उन इकसघट मिलिग्रो॥
सवत सत्रहसौ पैंतीसा, हरद्वार को मेला।
वरन आश्रम पद्धमत दरसन, तिनमें सतगुरु खेला॥

२१५. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३५, चौ० ५७–५८

अपने मत हम सब कहे, अब आप कहो साख्यात ॥
कौन शास्त्र मे कहा कही है, हमे कहो दे साख ।
नई राह है तुमारी. सो कहो हमे विध भाख ॥

तदनन्तर, प्राणनाथ ने गुरु देवचन्दजी के सिद्धान्तो को कठोपनिषद्, हरिवंशपुराण, छान्दोग्य उपनिषद्, पुराणसंहिता, अथर्ववेद यजुर्वेद, मुण्डकोपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद्, पद्मपुराण, भविष्यपुराण, माहेश्वरतन्त्र, स्कन्दपुराण, ब्रह्मोपनिषद्, श्रीमद्भगवतगीता, वाराहसंहिता, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मविद्योपनिषद्, भविष्यदीपिका आदि शास्त्रो के आधार पर स्वधर्म के मूल सिद्धान्त स्वलीलाद्वैत ब्रह्मवाद मे मुख्य सूत्र अनन्यपराप्रेमलक्षणा भक्ति का विवेचन किया । इस विवेचन से उन विद्वानों पर प्राणनाथ का खूब प्रभाव पडा । इसके बाद भागवत स्कद १०, अ० ८७, भविष्यदीपिका अ० ३, पुराणसंहिता आदि शास्त्रों के आधार पर उपस्थित विद्वत्समाज ने सर्वसम्मति से प्राणनाथ को "विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध" स्वरूप स्वीकार किया और उस तिथि को, अर्थात् वैशाख कृष्ण एकादशी, स० १७३५ को उसी नाम से "विजयाभिनन्द बुद्धजी" शाका की घोषणा की।[२१६] आज भी साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे उक्त शाका का उल्लेख रहता है ।

इस प्रकार, हरिद्वार मे चार मास व्यतीत करके वे पुन मथुरा होकर दिल्ली आए । उन्होने औरंगजेब को समझाने का और उसके जघन्य अपराधो का अहिंसात्मक ढग से रोकने का दृढ निश्चिन किया । अत दिल्ली से अपने सारे समुदाय के साथ वे अनूपशहर मे आये और वहाँ पर एक हवेली को अपना निवास स्थान बनाया । स्त्रियों को तथा अन्य अनुयायियो को वही छोडकर वे फिर से दिल्ली गये और वहाँ पर शाहगज मे रहने लगे । प्रो० माताबदल जायसवाल के अनुसार, हरिद्वार में चार मास रहकर पुन. अपने धर्म युद्ध को पूरा करने के उद्देश्य से दिल्ली लौट आए और लाल दरवाजे के पास रहने लगे ।[२१७] वस्तुत: थोडे दिनो के बाद शाहगज से निकलकर वे लालदरवाजे की एक हवेली मे रहने गए थे—[२१८]

आये शहर अनूपते, साह गज के माहि ।
गये इच्छते दरशनै, लाल द्वार है जांहि ॥

अब प्राणनाथ ने इस्लाम धर्म के मूलतत्त्वों के सहारे ही औरंगजेब के

---

२१६. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ६८८
२१७. (अ) प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ६
(ब) हिन्दी साहित्यकोश, भाग २, पृ० ३३१
२१८. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५४, चौ० ५

हिंसात्मक हृदय का परिवर्तन करने का संकल्प लिया। कुरान का अध्ययन करने के लिए उन्होंने स्वामी लालदास और गोवर्धन भाई को किसी मौलवी के पास भेजा। लेकिन इसी बात को लेकर लालदास और गोवर्द्धनभाई के बीच झगड़ा हुआ। लालदास कुरान का आधार लेने के पक्षपाती थे जबकि गोवर्द्धनभाई कट्टर वेदान्ती थे। अतः गोवर्द्धन भाई को सूरत और भीमभाई व मुकुन्ददास (नवरंग स्वामी) को उदयपुर जाने की प्राणनाथ ने आज्ञा दी।[२१९] स्वयं अनूपशहर की ओर रवाना हुए। यहाँ पर कुरान के सिद्धान्तों पर सनद के ३० प्रकरण लिखे और इनको औरंगजेब के पास सुनाने के लिए शेखबदल नामक व्यक्ति को दिल्ली भेजा। शेखबदल दिल्ली गया और वहाँ जाकर जुमा मस्जिद के पास जहाँ पर बादशाह नमाज को आता था और हजारों मुसलमान जमा थे—बड़े जोर से पुकार पुकार के सनदें गाने लगा। लेकिन ये सनदें हिन्दी में लिखी गयी थी इसीलिए मुसलमानों पर विशेष प्रभाव न पड़ा। प्राणनाथ भी दो-चार दिन के बाद दिल्ली में आ पहुँचे। शेखबदल से परिस्थिति जानने पर उन्होंने लालदास को शेखसुलेमान के पास भेजा और बादशाह के साथ मुलाकात करने की इच्छा प्रकट की। लेकिन इस कार्य में दो मास तक कोई सफलता न मिली। अब वे लालदरवाजे से उठकर रोहिल्लाखान की सराय में आकर ठहरे। यहाँ कायम मुल्ला से उन सनदों का फारसी रूपान्तर करवाया और शेख मीराजी का एक किस्सा भी फारसी में लिखवाकर बादशाह और बादशाह के दोस्तों के पास भिजवा दिया। लेकिन इसका कोई असर न हुआ। उन्होंने कुरान का अध्ययन कायम के सहारे शुरू किया। सराय से वे दुलीचन्द की हवेली में जाकर ठहरे और वहाँ से किसी एकान्त स्थान में बैठकर, सब की राय लेकर उन्होंने निश्चय किया कि ५ रुक्के (दिव्य संदेश) लिखकर तैयार किये जाएँ और उन्हें बादशाह के खास आदमियों को दिया जाए। इस प्रकार ५ रुक्के कान्हजी भाई के हाथ में दिये गये और जिन-जिन को देना था सब के नाम भी बता दिये गए। लेकिन इस कार्य में असफलता मिली। अतः उन्होंने एकदिन किसी बाग में अपने अनुयायियों को एकान्त में बुलाकर निश्चय किया कि धर्म के लिए यदि मरना भी पड़े तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं, परन्तु अपने सन्देशों को बादशाह तक पहुँचाना है।[२२०] इस प्रकार निश्चय कर, जुमा मस्जिद के ऊपर गये और सीढ़ियों पर बैठकर सब प्रकार

---

२१९. स्वामी नवरंगकृत बीतक, प्र० १६, चौ० २६

हम भेजे उदेपुर यहा थे, आए निरमनदास संग तहाने।
अनूपशहर छोड्योंहम एठाही, आए उदेपुर जाहीं॥

२२० स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० ३८, चौ० १०-११

का भय और संकल्प-विकल्प छोड़कर ऊंची आवाज मे कुरान के भावार्थ की सनदों को गाना शुरु कर दिया। इसके पीछे आशय यही था कि कोई उन्हें पकड़ कर बादशाह के पास ले जाए। लेकिन इच्छित नही हुआ। अन्तत: एक रुक्का दरबार के द्वार पर रात्रि के समय चिपका दिया गया। प्रातःकाल होते ही बादशाह को रुक्के की बात मालूम हुई। वे काजी पर क्रोधित हुए, क्योंकि काजी ने यह बात न सुनी तब यह कार्य हुआ। अत: शहर मे ढिंढोरा पिटवा दिया गया कि जिसकी फरियाद हो वह जुम्मे के दिन जुम्मा मस्जिद मे बादशाह से मिल ले। लालदास और निर्मलदास अपना रुक्का लेकर गये। लेकिन काजी ने मुलाकात नही होने दी। तदनन्तर वे चांदनी चौक की एक हवेली में ठहरे। अब १२ आदमियों को चुना गया जो पुन: जुमा मस्जिद मे जाकर सनदें गाते रहे। इस प्रकार करते ही काजी के जरिये औरंगजेब को समाचार मिला कि १२ आदमी मिलना चाहते है। इस मुलाकात में इन १२ व्यक्तियों ने अपने उद्देश्य को बादशाह के सामने स्पष्ट कर दिया। बादशाह के मन मे प्राणनाथ के दर्शन की इच्छा जाग्रत हुई। लेकिन इस्लाम काजी ने उनको काफिरों से रुबरु नहीं मिलने की सलाह दी। इन १२ व्यक्तियों को नजरकैद कर लिया गया। प्राणनाथ को यह समाचार मिलने पर दुःख हुआ। लेकिन उन्होंने शेखबदल द्वारा उन शिष्यों को यही कहलवाया कि धर्म युद्ध करके सब का मुख उज्ज्वल बनाए रखना। बाद मे कार्यवश वे कामा पहाड़ी कामवन होते हुए आमेर के लिए रवाना हुये। आमेर के राजा विष्णुसिंह को इस धर्म युद्ध के लिए उत्साहित करने का उन्होंने प्रयत्न किया। लेकिन विष्णुसिंह तैयार न हुआ।[२२१] "ब्रजभूषण" ने ही "विष्णुसिंह" का नामोल्लेख किया है, विष्णुसिंह से मुलाकात होने का उल्लेख नहीं है। लेकिन प्राणनाथ के तत्कालीन शिष्यों ने, अर्थात स्वामी लालदास और स्वामी नवरंग ने, अपने "बीतक" ग्रंथ मे *"विष्णुसिंह" का उल्लेख नहीं किया।* इतिहास के अनुसार भी "विष्णुसिंह" का राजा होना सिद्ध नही होता। इतिहास के अनुसार,[२२२] तत्कालीन आमेर के राजा मिर्जा जयसिंह थे। हां, सन् १६६० मे रामसिंह के बेटे किशनसिंह को आमेर का राज्य मिला था। वह नौ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इस विष्णुसिंह को किशनसिंह माना जाय तो वह ई० सन् १६९९ से १७०० ई० तक इस स्थान पर रहा और १७०० ई० मे काबुल मे मारा गया था। अत: प्राणनाथ की आमेर यात्रा ई० १६६० के बाद होनी चाहिए थी। लेकिन वैसा नही माना जा सकता क्योंकि तत्कालीन उदयपुर के राजा राजसिंह का उल्लेख सभी

---

२२१. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ७१३
२२२. टॉडकृत राजस्थान का इतिहास' पृ० ६३६–६३७

बीतकारों ने किया है[२२३] और इतिहास से भी राजसिंह की उपस्थिति सिद्ध होती है। [२२४] सम्भव है कि "विष्णुसिंह" (विसनसिंह) प्राणनाथ की आमेर-यात्रा के समय कुमारावस्था में हो और प्राणनाथ ने, "व्रजभूषण" के कथनानुसार, उसको पत्र लिखा हो। यहां से वे सांगानेर में दो-चार दिन ठहर कर "पोहड" नामक गाँव पहुँचे। इस प्रकार आठ मास तक दिल्ली में सत्याग्रह चलाया और जनशक्ति के प्रयोग बिना धर्मरक्षा का कार्य कठिन लगने पर वे हिन्दू राजाओं को एकत्रित करने के प्रयत्न में लगे रहे।

यहां पर इतना कहना उचित होगा कि दिल्ली के प्रसंगों का कोई नामोल्लेख इतिहास के पृष्ठों पर नहीं मिलता। फिर भी 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इन्डिया" में इस प्रकार का प्रश्न है [२२५]

A crowd of Hindus that gathered in Delhi, blocking the road from the forgate to the Jami mosque and appealing to the emperor to withdraw the tax, was trodden down by elephants when they did not disperse in spite of warning

पोहड गाँव में उदयपुर से निकले हुए मुकुन्ददास प्राणनाथ से आ मिले। यहाँ पर दस दिन गुजारने के बाद वे लोग सं० १७३६ (सन् १६७६) में उदयपुर गये। यहाँ आगरा से तेजबाई आदि 'साथ' को बुला लिया और दिल्ली से लालदास आदि १२ सत्याग्रही भी आ पहुँचे। उदयपुर का राणा प्राणनाथ की ज्ञान चर्चा से अवश्य प्रभावित हुआ, लेकिन औरंगजेब का सामना करने के लिए तैयार न हुआ। यहाँ ४ मास ठहर कर वे दुधलाई होकर सं० १७३७ (सन् १६८०) के प्रारंभ में मन्दसोर पहुँचे। यहां उनकी ज्ञान-चर्चा सुन कर कई हिन्दू और मुसलमान उनके अनुयायी हो गए। यहां से औरंगाबाद के राजा भावसिंह हाडा को सचेत करने के लिए उन्होंने मुकुन्ददास को भेजा। मन्दसोर में आठ मास तक रहकर सीतामऊ और नौनाई होते हुए वे अवन्तिकापुरी (उज्जैन) पहुँचे। यहा २२ दिन व्यतीत करने के बाद वे पुनः नौनाई गए और वहाँ से लूनेरा होकर बुर्हानपुर पहुँचे। यहाँ से वे

---

२२३ (अ) स्वामीलालदासकृत बीतक, प्र० ४८, चौ० ६

(ब) स्वामी नवरंगकृत बीतक प्र० चौ० ३४

(क) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ६०, चौ० ६३

२२४ जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आव औरंगजेब, भा० ३, पृ० ७-८

२२५. Ed Richard Burn, Cambridge History of India, Vol. IV, p. 242.

औरंगाबाद गए। राजा भावसिंह हाडा देश धर्म रक्षार्थ तैयार हो गया था। लेकिन वह कुछ कार्य करे उससे पहले ही उसकी मृत्यु हुई। यहाँ वे ४ मास रहे और पुनः बुढ़ानपुर लौट आए। सं० १७३८ (सन् १६८१) में वे वहाँ से आकोट गए। यहाँ पर ४ मास गुजारने के बाद वे कापस्तानी पहुँचे। वहाँ २० दिन निवास करके एलचपुर, देवगढ़, रामटेकरी में धर्मोपदेश करते हुए वे रामनगर गए। यहाँ केतकी नदी के घाट पर गणेश महन्त के मठ के समीप एक स्थान पर दो साल तक रहे। यहाँ पर हरिसिंह, मुजानसिंह, किशोरसिंह, सूरतसिंह और देवकरन जैसे राज्य परिवार के सदस्य उनके अनुयायी हुए। सूरतसिंह व देवकरन बुन्देला छत्रसाल के दो भतीजे थे। एक बार देवकरन ने प्राणनाथ से प्रस्ताव रखा कि अगर आपका वह उपदेश छत्रसाल तक पहुँच जाए तो वे आप के वचनों को अवश्य ग्रहण करेंगे। वे भी धर्म रक्षा के लिए निकल पड़े हैं लेकिन उनको परमावश्यकता मार्ग दर्शक सद्गुरु की है। १२ साल में महापुरुष से मिलने का व्रत उन्होंने ले रखा है। हमें लगता है कि आप के हाथों में ही यह कार्य पूरा होगा।

इसी समय पर रामनगर में भयंकर बीमारी फैल गई और प्राणनाथ के कई अनुयायियों की मृत्यु हो गई। दर्म्यान औरंगजेब को करामात की शंका होने पर प्राणनाथ को ढूंढ निकालने का हुक्म निकाला। पुरदलगान सूबेदार को हुक्म मिलने पर उसने शेख खिदर को रामनगर भेजा। उसके साथ आया हुआ भिखारीदास प्राणनाथ से मिलने गया। उन्होंने उसे पुराण और कुरान के मुताबिक विश्वरचना और विश्वविनाश के चिन्ह बताये। इस ज्ञानचर्चा में वह तीन दिन तक लीन रहा। प्राणनाथ से दीक्षित हो जाने के बाद ही वह शेख से जाकर मिला। शेखखिदर मिलने गया और वैसे ही प्रभावित हुआ। भिखारीदास सपरिवार यहीं पर रह गया।

देवकरन स्वयं मऊ गया और उसने छत्रसाल से सारा समाचार कह सुनाया। रामनगर के राजा के आदेशानुसार प्राणनाथ सं० १७३६, मृगशीर्ष शुक्ला दशमी (सन् १६८२) में रामनगर से गढा और बिलहरी होते हुए अगरिया पहुँचे। यहाँ पर छत्रसाल का प्रार्थनापत्र लेकर निकला हुआ देवकरन आ पहुँचा। अतः प्राणनाथ अपने ५००० अनुयायियों के साथ पन्ना के लिए रवाना हुए।

उनके पन्ना-प्रवेश का समय प्रो० माताबदल जायसवाल ने सं० १७४० (सन् १६८३) बताया है और आ० चतुर्वेदी, डा० गोवर्द्धन शर्मा, मिश्रीलाल शास्त्री

कि शेर अफगन की नियुक्ति "चपत के पुत्रो" का दमन करने के लिए ई० १६८३ मे की गई थी।[२३६] वास्तव मे शेर अफगन को युद्ध मे पराजित करने के बाद छत्रसाल महाराज "मऊ" मे ही प्राणनाथ का धर्मोपदेश सुनते रहे और वही पर छत्रसाल और राणी देव कुंवरी ने तारतम्यमन्त्र ग्रहण किया था।[२३७] बाद मे प्राणनाथ चैत्र माह स० १७४० (सन् १२८३) मे पन्ना आये। थोड़े दिनो के बाद राजा भी सपरिवार पन्ना आ पहुचे। वहा पर अपने निवासस्थान चौपड़ा हवेली में बड़े सम्मान के साथ प्राणनाथ को पालकी मे बिठाकर ले गये।[२३८] प्राणनाथ और तेजबाई की राजभवन मे युगलस्वरूप में सिंहासन पर प्रतिष्ठा की गई और उनकी अनन्यभाव से आरती उतारी गई।[२३९] विजदशमी के पुण्यपर्व पर छत्रसाल को उन्होंने महाराजा पद से विभूषित किया और लौकिक तथा अलौकिक शक्ति के रूप मे तलवार दी। महाराजा पद मे विभूषित किये जाने की बात अन्य राजसमुदाय मे फैल गई। उनमे चदेरी के दुर्गासिंह, दलीपुर के दलपतिराय, ओरछा के सुजानसिंह और गढा के पहाड़सिंह ने कड़ा विरोध किया।[२४०]

प्राणनाथ के साथ आये हुए अनुयायियो के लिए छत्रसाल ने एक स्थान पसन्द किया जो आज "बगलाजी का मन्दिर" नाम से प्रसिद्ध है। छत्रसाल ने यहाँ से थोडी दूर पर अपना महल बनवाया और उसे ही अपना स्थायी निवास बनाया। राज्य का मुख्य स्थान यही पद्मावतीपुरी पन्ना बन गया। सब धर्म के अनुयायियो के समाधान हेतु एक चर्चासभा का आयोजन भी किया गया और उसमे अन्य पण्डितो के पराजित होने से प्राणनाथ का प्रभाव और भी फैल गया।

स० १७४३ (सन् १६८६) मे छत्रसाल की प्रार्थना से प्राणनाथ बुन्देलखन्ड के भिन्न-भिन्न राज्य और प्रदेशो मे धर्म प्रचार के लिए छत्रसाल को साथ लेकर निकले। वे देवगढ, गढा, ओरछा, पडवारी, रीढखडील पहुँचे। यहा के राजाओ को हराकर के छत्रसाल ने अपनी सत्ता स्थापित की। बाद मे यमुनातट की ओर मुड़े और जहाँ औरंगजेब की सत्ता स्थापित थी। उन्होने झाँसी और जालान पर अपनी सत्ता स्थापित की। यमुनातट पर स्थित कालपी होते हुए वे जलालपुर पहुँचे। इतिहास के पृष्ठों पर इस सदर्भ मे प्राणनाथ का नामोल्लेख नही मिलता। लेकिन छत्र-

---

२३६ डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देल, पृ० ५८
२३७ प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरित्रामृत, पृ० ७४६
२३८ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५०, चौ० ७७
२३९. वही, प्र० ६५
२४०. वही, प्र० ७६

साल की इस यात्रा एवम् विजय का प्रमाण मिलता है।[२४१] वहाँ पर आलिम-फाजिल काजियों के साथ मानवीय तत्वों के आधार पर कयामत तथा पांच भांति की पैदाइश के बारे में चर्चा हुई। उन्होंने प्राणनाथ को साक्षात् "इमाममेंहदी अलैहिवसल्लम" समझा और औरंगजेब को एक मजहरनामा लिखकर भेज दिया। कहा जाता है कि औरंगजेब पर इनका इतना प्रभाव पड़ा कि युद्ध के लिए भेजे गए रणमस्तखाँ को वापस बुला लिया। इतिहास की दृष्टि से यह बात उचित सिद्ध नहीं होती।

सं० १७४४, चैत्र रामनवमी (सन् १६८७) में प्राणनाथ अपने अनुयायियों के साथ चित्रकूट पहुंचे।[२४२] सं० १७४५ के प्रारम्भ (सन् १६८७ के उत्तरार्ध) में वे वापस पन्ना आ गए। बाद में एक मास के लिए बिजावर गए और वहाँ रासलीलाओं का उद्घाटन किया। इसके बाद उन्होंने अपने स्थायी धर्मकेन्द्र मुक्तिपीठ–पद्मावतीपुरी धाम की स्थापना की।

(ए) चमत्कारी प्रसंग

भक्तों, सतों या साधुओं के जीवन को लेकर समाज में कई कथाएँ, मान्यताएँ प्रचार में आती हैं। उनमें से कल्पना और सत्य को अलग करना मुश्किल बन जाता है। वस्तुत भारतीय जनमानस श्रद्धा से एक कदम आगे बढ़ता है, तब अन्धश्रद्धा से उत्पन्न कई बातें महापुरुषों के जीवन के साथ जोड़ दी जाती हैं या चमत्कारी परिधान में छोटे से प्रसंगों को देखा-समझा जाता है। प्राणनाथ का जीवन भी ऐसी जनमान्यताओं से अस्पृश्य नहीं रहा। उनके जीवन में कई चमत्कारी घटनाएँ घटित होने के उल्लेख मिलते हैं। लेकिन यहां पर हम उनमें से प्रमुख घटनाओं को देखेंगे।

जामनगर के कैदखाने में जब प्राणनाथ को कैद किया गया था तब एक चमत्कारिक घटना घटित हुई।[२४३] उनके मुँह से वानियाँ निकल रही थीं और वे रामलीला की रामतोक वर्णन करके अखण्ड स्वरूप का वर्णन कर रहे थे, तब साक्षात्स्वरूप (श्रीकृष्ण) सामने प्रकट हो गये। दिव्यावेश का प्रकाश हुआ। उस वक्त मिश्री के टुकड़ों की बरसात होने लगी। पास के घर में रहनेवाली वजीर की स्त्री आदि ने इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर ही वजीर के अहमदाबाद से लौटकर आने पर प्राणनाथ को सत्कारपूर्वक तत्काल मुक्त करने की प्रार्थना की थी। कहा जाता है कि इसी कारण प्राणनाथ को तुरन्त ही कैदखाने से मुक्ति दी गई थी।

---

२४१. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० ५६–६०

२४२. प० कृष्णदत्त शास्त्री निजानन्द चरितामृत, पृ० ७८८

हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्राणनाथ अपने शिष्यों–अनुयायियों के साथ जब गए तब उनके आगमन के साथ ही कैदखाने की चक्की खुद-ब-खुद चलने लगी। इस आधार पर अन्य मतों को लगा कि हमारा उद्धारक देवता आ पहुँचा है। चौकीदार यह देखकर दंग रह गया और उसने दौड़कर औरंगजेब को सूचित किया कि कोई सिद्ध पुरुष हिन्दुओं में आ गया है।

प्राणनाथ ने हरिद्वार में प्रवेश करते ही अपने शिष्यों को आदेश दे रखा था कि औरंगजेब जहां हो वहां से उसको लाना। यह कार्य लालदास को सौंपा और प्राणनाथ ने एक 'लकड़ी" (दण्ड) दी। प्राणनाथ ने लालदास को सूचना दी कि इस लकड़ी को जिस वक्त तुम जमीन पर पटकोगे, उसी वक्त तुम्हारा काम बन जाएगा।

जहां सुलतान नमाज पढ़ता था वहां पर लालदास पहुँच गए। सुलतान को को देखकर उनको लगा कि बादशाह भी जानकार है। उन्होंने "जय श्री प्राणनाथ जी' कहकर उस लकड़ी को जमीन पर पटक दिया। बादशाह इससे इतना डर गया कि उसको चद्दर के साथ आकाश में उड़ने का अनुभव होने लगा। बादशाह तुरन्त ही दिल्ली कि ओर रवाना हो गया।[२४४]

कहा जाता है कि जब प्राणनाथ रामनगर आ पहुँचे थे तब दिल्ली में एक चमत्कार देखने में आया। बादशाह औरंगजेब दरबार में गया और अपने सिंहासन पर बैठने लगा तो शाही सिंहासन के उपर उसे "सिंह" बैठा नजर आया। जिसे देख कर बादशाह पीछे हट गया और उसकी बैठने को हिम्मत न पड़ी। लोगों ने पूछा, हजूर' ! आप पीछे क्यों लौट आए ? बादशाह ने कहा, मुझे सिंहासन पर सिंह नजर आ रहा है। लोगों ने कहा, आपको ऐसा भ्रम हो गया है। वहां पर कोई नहीं है। होता तो हमें क्यों दिखाई न पड़ता। इस प्रकार कहकर बादशाह को बैठाना चाहा। जैसे ही बादशाह सिंहासन पर बैठने लगा, सिंहासन उलट गया और बादशाह गिर पड़ा। इस घटना से दरबार में बड़ी हलचल मच गई। दरबार के जितने भी उमराव, खलीफा और मुल्ला काजी थे सब मिलकर कहने लगे, हजूर, यह सब जादू उसी फकीर (प्राणनाथ) का है जो बारम्बार कयामत का मुकद्दमा और अपने इमाममेहदी होने का पैगाम भेजता रहा है। जब उसकी बात कबूल नहीं की गई तो आपको खौफ बनाकर अपनी बातों को कबूल कराने के वास्ते यह सब करामात बता रहा है। लिहाजा ऐसे जुल्मी फकीरों को तो जरूर पकड़ कर सजा

---

२४३ वही, पृ० ३६० (पादटीप)

२४४ श्री प्राणनाथ सदेश (पत्रिका), अक्टूबर, ९४, पृ० ९–१०

करनी चाहिए। बादशाह के दिल मे एक तो दहशत समा चुकी थी। दूसरे इमाम मेहदी के दीदार मे रुहानी फायदा उठाना चाहता था। इसलिए बादशाह को उस फकीर को किसी प्रकार की सजा देने की बात पसन्द नही आयी। किन्तु उस फकीर के आने पर दीदार का लाभ अवश्य होगा, इस प्रकार निश्चय प्राणनाथ को बिना किसी किस्म की तकलीफ दिए, खुशी के साथ अपने पास हाजिर करने का औरंगजेब ने हुक्म दिया। कट्टर और धर्मांध औरंगजेब का हृदयपरिवर्तन कराने वाला कोई चमत्कारी तत्त्व प्राणनाथ मे था, ऐसी मान्यता सम्प्रदाय मे है।[२४५]

(ऐ) महाकवि बिहारी–प्राणनाथ मुलाकात

हिन्दी साहित्य के इतिहास या ग्रन्थों मे प्राणनाथ का महाकवि बिहारी से मुलाकात होने का उल्लेख नही मिलता। सं० १८६१ मे असनी के ठाकुर कवि ने अपने आश्रयदाता काशीनिवासी देवकीनन्दन के नाम पर "सतसैया-वर्णार्थ" टीका लिखी थी। इस टीका मे बिहारी का विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है और उन्होने सतसैया के सम्बन्ध मे बताया है कि वह इनकी (बिहारी की) पत्नी की बनाई हुई रचना है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसी "सतसैयावर्णार्थ" का संदर्भ लेकर, प्राणनाथ-बिहारी मुलाकात का प्रसंग इस प्रकार रखा है।[२४६] 'बिहारी की पत्नी बड़ी कवयित्री थी। वे जयपुर मे साधारण ब्राह्मण की भाँति वृत्ति पाया करते थे। एक बार जब जयपुर वृत्ति लेने गए तो महाराज को नई ब्याह लाई रानी के प्रेम में पड़ा पाया। वे महलो मे अभी दरबार तक भी न आते। बेचारे को लौट आना पड़ा। उन्होंने यह समाचार जब पत्नी को सुनाया तब उसने तुरन्त "नहि पराग नहि मधुर मधु" दोहा बनाकर उन्हें उल्टे पाँव जयपुर भेजा। जब उक्त दोहा महाराज के पास पहुँचा तो वे महल से बाहर निकले और "अन्जुरीभर" मोहरें दी। साथ ही कहा कि इसी प्रकार दोहा बना कर लाया करो तो तुम्हे प्रति दोहा एक मोहर मिलेगी। उन्होने पत्नी से सब समाचार आ सुनाया। उसने १४०० दोहे बनाए और १४०० मोहरे प्राप्त की। उन्ही १४०० दोहो मे छाँटकर ७०० की सतसैया तैयार की गई। इसे लेकर पत्नी आज्ञानुसार वे महाराज छत्रसाल के दरबार मे पहुँचे। सतसैया उन्हें दिखाई गई उन्होंने जाँच के लिए उसे अपने धार्मिक गुरु प्राणनाथजी को दिया। प्राणनाथजी साधु थे इसी लिए शृंगार की कविता को उन्होने घृणास्पद कहा। वे बेचारे अपना मुँह लिये लौट आये। पर पत्नी कब चूकने वाली थी। उसने बिहारी को उल्टे पैरो

---

२४५. (अ) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ७३५–७३६
(ब) प्राणनाथ, कुलजमस्वरुप, सिनगार।

२४६. प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बिहारी की वाग्विभूति, पृ० ४६–४७

फिर लौटाया और कहा कि महाराज से जाकर कहना कि पन्ना में युगलकिशोरजी के मन्दिर में प्राणनाथजी की कविता और सतसैया रात में रखी जाय। जिस पर भगवान के हस्ताक्षर हो जाएँ वही प्रमाणिक मानी जाय। ऐसा ही किया गया। सतसैया पर ही हस्ताक्षर हुए। इधर वे कुत्ते से उड़ आए, आकर पत्नी को सब समाचार सुनाया। महाराज ने खोज कराई तो कुछ भी पता न लगा। तब उनके यहाँ पत्र भिजवाया। पत्र के उत्तर में पत्नी ने ये दोहे लिख भेजे :

नो अनेक अवगुन भरी चाहे चाहि बुलाय।
जो पति सम्पति हू बिना जदुपति राखे जाय।।
दूरि भजन प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चगरंग गोपाल।।

दूसरा दोहा प्राणनाथजी के पत्र के उत्तर में था महाराज ने यह उत्तर पढ़ा तो बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बिहारी को बहुत से ग्राम दिये।"

डा० रणधीर सिन्हा ने बिहारी के सदर्भ में फैले हुए गलत विधानों का खण्डन किया है,[२४७] लेकिन इन्होंने बिहारीप्राणनाथ मुलाकात के लिए कोई विधान नहीं किया। वे मौन ही रहे हैं। उन्होंने भी पं० अम्बिकादत्त व्यास के मतानुसार बताया है कि बिहारी पन्ना के राजा छत्रसाल के दरबार में भी गए थे तथा उन्होंने पुरस्कार प्राप्त किया था। छत्रसाल के यहाँ निवाज, रतनेश, पुरुषोत्तम, विश्वासिनन्दन, लाल हरिकेश, पचन, प्राणनाथ कवि आदि कई कवि उपस्थित थे। उस वक्त बिहारीलाल उनके यहाँ पहुँचे।[२४८]

लेकिन सत्य यही है कि स्वामी प्राणनाथ ने ई० १६८३ (सं० १७४०) के समय में ही पन्ना प्रवेश किया और बाद में वहीं स्थिर हुए थे। लेकिन कविवर बिहारीलाल की मृत्यु का समय सं० १७२०–१७२१ प्रायः सभी विद्वानों ने मान्य रखा है।[२४९] अतः यही कहना उचित होगा कि बिहारी और प्राणनाथ के जीवनकाल को देखते हुए उक्त मुलाकात को असंभव ही मानना चाहिए।

(औ) अन्तिम समय और धामगमन

चित्रकूट में वापस पन्ना आ जाने के बाद प्राणनाथ को अपने अन्तिम समय का ज्ञान हो चुका था। अतः अब वे रातदिन निरन्तर ब्रह्मज्ञान चर्चा में ही लगे

---

२४७ डा० रणधीर सिन्हा, कविवर बिहारीलाल और उनका युग, पृ० १०६–१०८

२४८ वही, पृ० ३६

२४९ आ० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २२७

रहते थे। अपने अन्तिम दिनों में उन्होंने छत्रसाल को क्षर, अक्षर और अक्षरातीत ब्रह्म का पूर्ण परिचय कराया। तदनन्तर उन्होंने स्वधाम के ध्यान में लीन होने के निमित सोचना शुरू किया। मुरलीदास धामी लिखते है,[२५०] मृत्यु से पहले ही उन्होंने सारी व्यवस्था कर डाली थी और धर्म-अभियान की जिम्मेदारी छत्रसाल को तथा धर्म-अभियान के इतिहास का काम स्वामी लालदास को सौप दिया था। लेकिन प० कृष्णदत्त शास्त्री के अनुसार यही सभव है कि ये सारी व्यवस्था बाद में ही हुई हो। क्योकि जब उनका धामगमन हुआ। तब छत्रसाल "मऊ" में थे।[२५१]

उनकी मृत्यु के सदर्भ मे विद्वानो मे विभिन्न मतव्य हैं। डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, रमणिक श्रीपतराय देसाई, डाह्याभाई देरासरी डा० उषा पाण्डेय, श्यामसुन्दरदास, जार्ज ग्रियर्सन, शशिकान्त शर्मा, डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, के० का० शास्त्री, और मिश्रबन्धु उन परमधाम वास के बारे मे मौन रहे हैं। "चरोतर सर्व सग्रह" मे उनकी मृत्यु का समय स० १७६१ बताया है।[२५२] डा० रामकुमार वर्मा ने सं० १७७१ का उल्लेख किया है।[२५३] डा० अम्बाशकर नागर ने इनकी अन्तिम लीला का समय सन् १६७५ और डा० उपाध्याय ने १७१४ ई० माना है।[२५४] मिश्रीलाल शास्त्री और मुरलीदास धामी ने स० १७५१ श्रावण कृष्ण चतुर्थी प्रात काल चार बजे धामगमन बताया है।[२५५] पी० कृष्णमूर्ति अय्यर ने शुक्रवार २६ जून ई० सन् १६६४ (सं० १७५१) का समय दिया है।[२५६] प्रा० परशुराम चतुर्वेदी ने कहा है, इनका देहान्त स० १७५१ की श्रावण कृष्ण ३ को रात की पिछली दो घडी रहते हो गया।[२५७] प्रो० मातावदल जायसवाल के अनुसार,

---

२५०. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६२

२५१. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ८३१

२५२. प्रा० पुरुषोतमदास छ० शाह-चन्द्रकान्त फू० शाह, चरोतर सर्व सग्रह, पृ० ८२४

२५३. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७८

२५४. (अ) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, स० २०१५, व० ६६, अं० २, पृ० ६३८
(ब) डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, सन्त-वैष्णव काव्य पर तान्त्रिक प्रभाव पृ० २६२

२५५. (अ) साहित्यसंदेश, सन्त अक, १६५८, पृ० ६८
(ब) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६२

२५६. P. Krishnamurty Iyer, The Devine message of Lord Prannath, p. २०

२५७. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६७

१७५१ वि० आषाढ़ वदी ४ को रात्रि के चार बजे इनकी इहलीला समाप्त हुई।[२५८] पं० कृष्णदत्त शास्त्री ने वि० सं० १७५१ श्रावण कृष्ण तृतीया की रात्रि के अन्तिम प्रहर में इनका परमधाम वास होना बताया है।[२५९] हमें मिश्रीलाल शास्त्री, मुरलीदास धामी, पं० कृष्णदत्त शास्त्री का मत ही समीचीन जान पड़ता है। इसी तिथि को सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त है। चूंकि रात के बारह के बाद नवीन तिथि लग जाती है। कुछ लोगों ने श्रावण कृ० तृतीया माना और कुछ ने चतुर्थी।
स्वामी लालदास ने लिखा है[२६०]—

तीन भई रात घड़ी चौद लौं, उपरान्त भई चौथ जब।
दोइ घड़ी बाकी रही, समयो अन्तर्ध्यान को तब॥

प्रो० अमृत पण्ड्या,[२६१] मणिशंकर करसन जी[२६२] दवे और बीतक सर्वसंग्रह के[२६३] अनुसार उनकी देह लीला समाप्ति जामनगर या सूरत में नहीं हुई। उनका परमधाम वास पन्ना में ही हुआ है।

(औ) प्रमुख शिष्य

प्राणनाथ धामगमन के अनन्तर उनके आसन पर किसे प्रतिष्ठापित किया जाय यह समस्या उनके अनुयायियों के सामने उपस्थित हुई। अन्ततः प्राणनाथ के वाणीसंग्रह को उस स्थान पर प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया गया। उस समय प्राणनाथ की रचनाएं पृथक् पृथक् रूप में थीं और उनको क्रमबद्ध करने का कार्य प्राणनाथ के प्रमुख शिष्य केशवदास को सौंपा गया। प्रो० माताबदल जायसवाल और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है।[२६४] साम्प्रदायिक मान्यतानुसार, प्राणनाथ अन्तर्ध्यान के दो मास के अन्दर केशवदास ने यह कार्य पूर्ण कर दिया था और प्राणनाथ के जन्म दिवस आश्विन कृष्णा चतुर्थी के दिन बड़े समारोह के साथ पन्ना के बंगलाजी मन्दिर के सिंहासन पर प्राणनाथ के वाणी-संग्रह

---

२५८. सं० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य, द्वितीय भाग, पृ० ४६०
२५९. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ८३१
२६०. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० ७ चौ० ७०
२६१. अखण्ड आनन्द, जुलाई, १९५६, पृ० ५१
२६२. मणिशंकर करसनजी दवे, महागुजरातना सन्तो अने महन्तो, पृ० ७२
२६३. सं० पुरुषोत्तम शाह, चन्द्रकान्त शाह, बीतक सर्वसंग्रह, पृ० ८७४
२६४. (अ) हिन्दी साहित्यकोश, भा० २, पृ० ३३२
(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६८

को प्रतिष्ठित किया गया।[२६५] उसी प्रकार, अपने दूसरे शिष्य स्वामी लालदास को प्राणनाथ ने अन्तिम लीला से पहले ही गुरु देवचन्द्र से लेकर पन्ना तक के धर्म-कार्य आदि को लेकर एक ग्रन्थ-"बीतक" लिखने की आज्ञा की थी। कहते हैं कि प्राणनाथ का धामगमन के पीछे पंचमी के दिन से स्वामी लालदास ने उक्त ग्रन्थ को लिखना शुरू किया और श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिवस पर उसको पूर्ण कर दिया था।[२६६] प्राणनाथ के जन्मदिन पर आयोजित समारोह में महाराजा छत्रसाल ने धर्मप्रचारयोजना प्रस्तुत की और पंजाब, नेपाल, बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, आसाम आदि प्रान्तों तक प्रणामी-सम्प्रदाय के प्रसार एवं प्रचार करने का निर्णय लिया गया।[२६७] इसी आधार पर स्वामी नवरंग को राजस्थान में और जीवनमस्ताना को कान्यकुब्ज में धर्मप्रचार के लिए भेजा गया था। वस्तुतः केशवदास, स्वामी लालदास महाराजा छत्रसाल, स्वामी नवरंग और जीवन मस्ताना को सम्प्रदाय के प्रचार हेतु जिम्मेदारीपूर्ण कार्य किये थे, इसी आधार पर उनको प्रमुख शिष्य माना जा सकता है। लेकिन समय-समय पर प्राणनाथ ने अन्य शिष्यों को भी जिम्मेदारी पूर्ण कार्य सौंपा था। औरंगजेब के पास जिन बारह शिष्यों को उन्होंने भेजा था उसमें लक्ष्मन भाई, शेख बदलभाई, कायम मुल्ला, भीमभाई, सोमजीभाई, नागजीभाई, खिमाभाई, दयारामभाई, चिन्तामणि, चंचलदास, गंगाराम और बनारसीदास का उल्लेख मिलता है।[२६८] उसी प्रकार "निगमार्थप्रदीप" कार भट्टाचार्य, मुकुन्दस्वामी और स्वामी लक्ष्मनदास को भी उनको प्रमुख शिष्यों के अन्तर्गत माना जाता है।[२६९] स्वामी लक्ष्मनदास और लक्ष्मनभाई एक ही है। फिर भी इतना निश्चित है कि साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उनके प्रमुख शिष्यों की विस्तृत सूची नहीं है और जहाँ पर अन्य कई शिष्यों का नामोल्लेख हुआ भी है, उनको प्रमुख शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।

(ग्रं) प्राणनाथ की रचनाएँ

प्राणनाथ की रचनाओं के संदर्भ में भी आ० रामचन्द्र शुक्ल और आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे गणमान्य विद्वान अपने हिन्दी साहित्य इतिहासों में मौन

२६५. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ८३१–८३२

२६६. वही, पृ० ३८१

२६७. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ८९

२६८. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्दचरितामृत, पृ० ७०६ (पादटीप)

२६९. श्री प्राणनाथ संदेश (पत्रिका) श्री पद्मावतीपुरी महात्म्यांक, व० ६, अ० १, पृ० ८

रहे है। डा० नगेन्द्र ने भी प्राणनाथ का उल्लेख करके ही संतोष मान लिया है, इनकी वानियों के लिए मौन ही रहे है।[२७०] वस्तुत प्राणनाथ और उनकी रचनाओं का सर्वप्रथम नामोल्लेख का श्रेय एफ० एस० ग्राउस को ही मिलता है।[२७१] लेकिन प्राणनाथ की एक ही रचना "कयामतनामा" का ही उन्होंने शुद्ध रूप से उल्लेख किया है और कुछ ग्रन्थों के नाम अशुद्ध दिये हैं। मिश्रबन्धुओं ने प्राणनाथ, विजाभिनन्दन और महामति का अलग-अलग नामोल्लेख करते हुए इनकी रचनाओं के अन्तर्गत (१) कयामतनामा (२) राज-विनोद (३) ब्रह्मवाणी (४) कीर्तन (५) प्रगटबानी (६) बीस गरोहों का बाब (७) पदावली (८) परिक्रमा (९) सम्बन्धसागर (१०) वेदांत कीर्तन को प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट और चतुर्थ त्रैवार्षिक रिपोर्ट के आधार पर गिनाया है।[२७२] श्यामसुन्दरदास ने उसी प्रकार इन्द्रामती और प्राणनाथ को भिन्न-भिन्न मानते हुए भी उनकी रचनाओं का नामोल्लेख नहीं किया।[२७३] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इन के ग्रन्थ "कुलजमसरीफ" का उल्लेख करते हुए लिखा है इनके अतिरिक्त उन्होंने प्रगटबानी, ब्रह्मबानी, बीस गिरोहों का बाब, बीस गिरोहों की हकीकत, कीर्तन, प्रेमपहेली, तारतम्य और राज-विनोद ये ग्रन्थ भी लिखे हैं जो अभी प्रकाशित नहीं हुए है। इम्पीरियल गेजेटियर आव इंडिया में आधार पर उन्होंने "महातरियान" नामक ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए उसकी "कुलजमसरीफ" ग्रन्थ से अभिन्न माना है।[२७४] सम्भवत उन्होंने "कुल-जमस्वरूप" ग्रन्थ को बिना देखे ही प्रगटबानी आदि रचनाओं का उल्लेख सिर्फ डा० हीरालाल लेख-विशेष के[२७५] आधार पर किया है। साथ ही साथ "पदावली" नामक रचना को प्राणनाथ दम्पति की संयुक्त रचना माना है।[२७६] उसी प्रकार डा० अम्बाशंकर नागर ने लिखा है, इस दंपती ने मिलीजुली भाषा में १४ ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें "कुलजमसरीफ" विशेष प्रसिद्ध है।[२७७] डा० श्यामसुन्दर शुक्ल

---

२७० स० डा० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (रीतिकाल: रीतिबद्ध) षष्ठ भाग, पृ० १९

२७१ एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल, वा० ४८, भा० १, १८७९, पृ० १७१-१८०

२७२. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धुविनोद, भा० २, पृ० ४३९, ६८६, ८८७

२७३ श्यामसुन्दरदास बी० ए०, हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पहला भाग, पृ० १३-६१-६२

२७४. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दीकाव्य में निर्गुणसम्प्रदाय, पृ० १३३

२७५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका खोज रिपोर्ट अंक १९-२४-२४ सं० १९९३

२७६ डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दीकाव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३३

२७७ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, व० ६३, अ० २, पृ० १३८

इनकी रचनाओं के संदर्भ में लिखते है, [२७८] रासग्रन्थ, प्रकाशग्रंथ, षटऋतु, कलश, सनन्ध, किरतन, खुलास, प्रकरण इलाही दुल्हन, सागरसिंगार, बड़ोसिगार, सिंधी भाषा, मारफतसागर, कयामतनामा, प्रगटवानी, ब्रह्मवानी, प्रेमपहेली, तारतम्य और राजविनोद आदि। "कलजमेशरीफ" भी इन्हीं की रचना है, जो ध.मीपंथ का प्रमुख धर्मग्रन्थ है इसके अतिरिक्त अन्जीरा राम, बीतक, परिक्रमा प्रकरण, और विराट चरितामृत भी इन्हीं की रचनाएं हो सकती हैं। "पद बनी" को इन्होंने भी प्राणनाथ दंपति की सयुक्त रचना माना है।[२७९] डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया ने भी इनकी १४ रचनाओं के अतिरिक्त 'कलजमेशरीफ' को सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ समझा है।[२८०] डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने इसी सदर्भ में लिखा है, आपकी रचनाओं की संख्या १४ कही जाती है जिस में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "कलजमेशरीफ" है।[२८१] डा० सावित्री सिन्हा के अनुसार प्राणनाथ दंपति द्वारा एक बृहद्काय ग्रन्थ लिखा है जिसके अन्तर्गत किताब जम्बूर, बेहदवाणी, दूधपानी का बेवरा, श्री भागवत को सार, पटऋतु मरजाद पक्ष, परगटवानी, षटऋतु, षटऋतुनो कलश, बारहमासी, किताबतौरते, सनंधे, कीर्तन, खुलासा फुरमान, खिलवत, परिक्रमा, आठो सागर, कयामतनामा छोटो, कयामतनामा बडो और मारफतसागर, रामतरहस्य नामक ग्रन्थों को सकलित किया गया है।[२८२] गुजराती विद्वानों ने प्राणनाथ की रचनाओं का नामोल्लेख, सभवत: इनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से अज्ञात रहने के कारण अल्पांश में ही किया है। श्री दुर्गाशकर केवलराम शास्त्री ने १४ ग्रन्थों की सख्या दी है, नाम नहीं। फिर भी इतना स्पष्ट किया है कि ये रचनाएं ही 'कुलजम" नामक ग्रन्थ में सग्रहीत हैं।[२८३] केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी ने कलश और "कुलीयमस्वरुप" ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है।[२८४] डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी ने[२८५] इनके कलश, सिन्ध, वेदान्तवाणी, आखरीकीर्तन, बड़ासिंगार छोटासिंगार, मारफत सागर, खेलवत, खुलासा, परमधामनु वर्णन ग्रन्थों का उल्लेख किया है। के० का० शास्त्री, ने बारहमासी, वैराट-वर्णन, श्रीसाथजीनो शणगार षटऋतुवर्णन और हिन्दी-गुजराती कविता

---

२७८. डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दीकाव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३१

२७९. वही, पृ० २२

२८०. डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, सन्त साहित्य, पृ० ६४

२८१. डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ० ७३

२८२. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० ८४-६०

२८३. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, वैष्णवधर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१२

२८४. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, चरित्र चंद्रिका, पृ० ५८१, ५८३

का नामोल्लेख किया है।[286] रमणिक श्रीपतराय देसाई ने ब्रह्मज्ञानना पदो, वैराट-वर्णन, रासलीला, षटऋतुवर्णन, द्वादशमास, कलश (सिंधी), बड़ासिणगार, सार-मतसागर, सनंधतखुलासा, परमधाम वर्णन, कयामतनामु और पदसंग्रह का नामोल्लेख किया है।[287] जटाशंकर मनुशंकर दवे ने कलश, वेदान्तवाणी, सागरो कीर्तन बड़ासिंगार, छोटासिंगार, सनंधम खुलासा और सारमतसागर का नामोल्लेख किया है।[288] कचरालाल सोनी ने कलश, वेदान्तवाणी आसिरी कीर्तन, बड़ासिंगार, छोटासिंगार, सारमतसागर, सनंधत खुलासा और परमधामवर्णन को इनके रचित ग्रन्थों में गिनाया है।[289] पं० वेदमित्र ठाकोर ने प्रणामी सम्प्रदाय के विरोध में लिखी हुई एक पुस्तक में प्राणनाथ की रचनाओं के नाम इस प्रकार दिये हैं— रास-कीर्तन, षटऋतु, प्रकाश, कलश, सनंध, कीर्तन, खुलासा, खिलवत परिक्रमा, सागर, सिन्धी, सिंगार, मारफत और कयामत।[290] इस प्रकार गुजराती विद्वानों ने सार-मतसागर जैसे गलत नामोल्लेख किया है और हिन्दी के कई विद्वानों ने श्री भागवत को सार जैसे प्रकरण-विशेष को भी अलग ग्रन्थ मान लिया है।

वस्तुत प्राणनाथ का साहित्य होशवाणी और बेहोशवाणी के रूप में विभाजित किया जाता है। गुरु की प्रेरणा और विरह से प्राप्त ही आप प्रस्फुटित होने वाली वाणी को सम्प्रदाय में बेहोशवाणी या जोशवाणी के नाम से अभिहित किया जाता है। "कुलजमस्वरूप" में समग्रीत रचनाओं की वाणी बेहोशवाणी समझी जाती है। तदनन्तर उपदेश के रूप में कही गयी वाणी होशवाणी मानी जाती है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, किसी चुगली के फलस्वरूप जब उनको जामनगर के कैदखाने (प्रबोधपुरी-हबसा) में रखा गया था तब गुरु विरह और वीतरागी भावना से बेहोशी में वाणियाँ प्रस्फुटित होने लगी। जैसे, इस्लाम के अनुसार "कुरान" ईश्वरप्रेरित

---

२८५ डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी, गुजरातीओए हिन्दीसाहित्यमा आपेलो फालो, पृ० १२

२८६ केशवराम काशीराम शास्त्री, गुजराती हाथप्रतोनी संकलित यादी, पृ० ११

२८७ रमणिक श्रीपतराय देसाई, प्राचीन कविओ अने तेमनी कृतिओ, पृ० २२, २६५, १५१

२८८ जटाशंकर मनुशंकर दवे, हिन्दीना विकासमा गुजरातीओनो फालो, पृ० १४१

२८९ फार्बस त्रैमासिक अंक मार्च १९४० पृ० ३१७

२९० पं० वेदमित्र ठाकोर, प्रणामी पाखंडनु प्रदर्शन पृ० २

वानी है[२६१] वैसे ही प्रणामी सम्प्रदाय में प्राणनाथ की यह बेहोशवाणी अक्षरातीत पर ब्रह्म से ही प्रेरित मानी जाती है। ये बेहोशवाणी विभिन्न स्थानों पर उतरती गई। रास, प्रकाश और षटऋतु रचनाओं की वानियाँ उक्त कैदखाने प्रबोधपुरी में सं० १७१४-१५ (सन् १६५८) के दरम्यान उतरी थी। "कलश" ग्रन्थ की प्रारम्भिक वानियाँ यहीं उत्पन्न हुई—

ग्रन्थ राम पूरन करयो, प्रगट्यो ग्रन्थ प्रकाश।
याई उत्तम प्रात लहु, उद्धव लिये उजास।
बारहमासी षटऋतु, इश्क बिरहको नूर।
सो पुनी उतरी या समै, जिन्हीं बड़ो जहूर॥
ई चौपाई कलश की, कीन्हों उन प्रारम्भ॥
यह बानी "हवशा" विषे, भयो धर्मको थम्भ॥[२६२]

उक्त "कलश" ग्रन्थ की पूर्णाहुति सूरत में सं० १७२६ (सन् १६७२) में हुई।[२६३] उक्त चारों ग्रन्थ गुजराती भाषा में ही अवतरित हुए हैं। कई हस्तलिखित प्रतियों में "रास" के साथ "जंजीर" "प्रकाश" के साथ 'जम्बूर" और "कलश" के साथ "तौरेत" शब्द लगे पाए जाते हैं। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, ईसाई यहूदी और दाऊद के धर्ममत में साम्य दिखाने का ही इसके पीछे निहित उद्देश्य है।

आ० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, रास नामक ग्रन्थ सर्वप्रथम सं० १७१२ में रचा गया था, किन्तु वह सं० १७३१ में पूरा हुआ। "बेहदवानी" की रचना सं०

---

२६१. Alban G. Widgery M. A, The Comparative study of Religions, p. 61

Tho Quran claims within itself be to a 'sign' sent by God, a 'reminer' a light a guidance and a warning 'the' spirit as well as the giver of glad tidings 'It is' a mercy brom God, a revelation form the Lord of Worlds .. ... To the Muslims, therefore the Quran is Kalam Allah–the word of God

२६२. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२, चौ० ३०, ३१, ३७

२६३. (अ) वही, प्र० ४२, चौ० ३८

(ब) स्वामी लालदास, प्र० १५, चौ० ५६

कलसका बीज इन समै, उठा इत अंकूर।
सो तब तें चढ़े दौरमें, हुआ सूरतमें मजकूर॥

१७२२ में हुई थी, कलश या कलस ग्रन्थ सं० १७१६ में निर्मित हुआ था।[२६४] वस्तुत रास की रामतें वेहदवानी, बारहमासा आदि उक्त ग्रन्थों के प्रकरण विशेष हैं। डा० चतुर्वेदीजी ने इनका रचनाकाल सं० १७१२ किस आधार पर मान लिया है यह स्पष्ट नहीं किया। प्रो० मातावदल जायसवाल ने कहा है, कारावास जीवन में मेहेराज की दिव्यवाणी प्रस्फुटित हुई और उनकी प्रथम गुजराती "रास" अवतरित हुई।[२६५] लेकिन जैसाकि हम पहले देख आये हैं कि सं० १७१२ (सन् १६५५) में प्राणनाथ राजकीय व्यवस्थापन प्रशासन कार्य त्याग कर आये ही थे और उनके गुरुपुत्र बिहारी नाखुश थे। स्वयं प्राणनाथ ऐसी मन स्थिति में नहीं थे कि वे इन रचनाओं को सन् १७१२ (सन् १६५५) में लिख पाते। अतः साम्प्रदायिक आधार[२६६] यह है कि इन रचनाओं का प्रणयन कारावास में ही हुआ, अधिक विश्वसनीय है। डा० चतुर्वेदी की इस सम्बन्ध की मान्यता को स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

उक्त ग्रन्थों में से 'प्रकाश' और 'कलश' को उन्होंने अनूप-शहर में हिन्दुस्तानी भाषा में रूपान्तरित किया। यहीं "सनंध" (सनद) ग्रन्थ की वाणियाँ अवतरित हुईं। इन तीनों का रचनाकाल सं० १७३६ (सन् १६७८) ठहरता है। स्वामी लालदास जी ने कहा है,[२६७]

> और किताब तौरेत, उनकी बीच सूरत।
> नारी काया कलस, सनधें अनूप मेहेर बरत।।
>
> गुजराती भाषा फेरके, करी भाषा हिन्दुस्तान।
> ए जो वास्ते मोमिनोंके, गुझ पावे कर पेहेचान।।

"किरंतन" ग्रन्थ में समय समय लिखे गए उनके पदों का संग्रह किया गया है। ऐसी स्थिति में उन पदों का रचनाकाल निश्चितरूप से बताना मुश्किल है। श्री मुरलीदास धामी ने इन पदों का रचनाकाल सं० १७२४ से सं० १७३८ के बीच का समय और दीव, सूरत, मेड़ता आदि को रचनास्थान माना है।[२६८] पी० कृष्ण मूर्ति अय्यर के अनुसार सन् १६६६ से १६९१ के बीच विविध स्थानों पर ये "किरं-

२६४. डा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६८
२६५. हिन्दी साहित्यकोश, भा० २, पृ० ३३१
२६६. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६०–३६६
२६७. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १५, चौ० ६२–६३
(ब) पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६७
२६८. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३

तन" के पद लिखे गए थे।[२९९] लेकिन रणछोड़दास वीरजी ने गुरु देवचन्दजी का धामगमन (सं० १७१२) से पहले ही इन पदों का अवतरित होना माना है।[३००] उन्होंने कई कीर्तन-पदों का रचनाकाल और रचनास्थल देने का प्रयत्न किया है। उन्हीं के अनुसार "किरंतन" के पद प्राणनाथ ने अरबस्तान-बसरा-जाते समय समुद्र-मार्ग पर जहाज में, गुरुजी की उपस्थिति में, सं० १७३५ (सन् १६७८) हरिद्वार में, सं० १७२४ (सन् १६६७) ठट्ठा नगर में, सं० १७२९ (सन् १६७२) सूरत में, सं० १७२८ (सन् १६७१) मस्कतबंदर में, सं० १७३६–३७ (सन् १६७९–८०) मंदसौर में, सं० १७१२ (सन् १६५५) में गुरु देवचन्दजी की इह लीला समाप्ति के सन्दर्भ में, सं० १७४३ (सन् १६८६) पन्ना में, सं० १७३६ (सन् १६७९) में उदयपुर छोड़ते समय तथा सं० १७४८ (सन् १६९१) में धामगमन-मृत्यु के सन्दर्भ में पद लिखे गए हैं।[३०१] पं० कृष्णदत्त शास्त्री के "निजानन्द चरितामृत" में उक्त तथ्यों की पुष्टि स्थान-स्थान पर हो जाती है।

वेहोशवाणी की शेष रचनाएँ खुलासा (खुलासा), खिलवत (खिलवत), परकरमा (परिक्रमा), सागर, सिनगार (शृंगार), सिन्धी, मारफत सागर तथा कयामतनामा छोटा व बड़ा सं० १७४० (सन् १६८३) से सं० १७४८ (सन् १६९१) के समयान्तर्गत प्रस्फुटित हुई। उक्त रचनाओं में से कयामतनामा छोटा व बड़ा के सिवाय अन्य रचनाएँ पन्ना, जिसको सम्प्रदाय में पद्मावती पुरी नाम से अभिहित किया जाता है, में उतरी थी। आ० परशुराम चतुर्वेदी ने बताया है, कयामतनामा का निर्माण सं० १७४४ में हुआ था। खुलासा, खिलवत, मारफत, सागर, आदि ग्रन्थ सं० १७४०–५१ में कभी रचे गए थे। इन सभी के विषयों का स्पष्ट तथा यथेष्ट विवरण उपलब्ध नहीं।[३०२] प्रो० मातावदल जायसवाल ने कयामतनामा को प्राणनाथ की अन्तिम रचना मानते हुए लिखा है, सं० १७४४ में स्वामीजी ने चित्रकूट की यात्रा की, वहीं प्राणनाथ की अन्तिम बानी कयामतनामा की रचना हुई।[३०३] लेकिन ग्रन्थ के क्रम में भले ही कयामतनामा छोटा व बड़ा को अन्तिम स्थान मिला हो, साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार प्राणनाथ की वेहोशवाणी सं० १७४८ तक ही, (आ० परशुराम चतुर्वेदी के

२९९ P. Krishnamurty Iyer, the Devine message of Lord Prannath p 38.

३००. रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम, प्रणालिका, पृ० ४८३

३०१. वही, पृ० ४८३ से ४८९

३०२. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५९८

३०३ प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ७

अनुसार सं० १७५१ तक नहीं), प्रस्फुटित होती रही।[३०४] पं० मिश्रीलाल शास्त्री ने कहा है, सब से अन्तिम वाणी मारफतसागर के रूप में आविर्भूत हुई। इसके अनन्तर दैनिक उपदेश और उसके मनन चिन्तन का क्रम तो यथावत चालू ही रहा, लेकिन वि० सं० १७४८ के पश्चात् श्रीमुखवाणी (प्राणनाथजी की बेहोशवाणी) का पुनः अवतरण नहीं हुआ।[३०५] पं० कृष्णदत्त शास्त्री ने इसके संदर्भ में कोई स्पष्टता नहीं की। सिर्फ इतना ही बताया है कि खुलासा के कुछ प्रकरण और कुछ ग्रन्थवाणी रामनगर में प्रगट हुई। खिलवत, परिक्रमा, सागर, सहासिंगार और मारफतसागर और सिंधी किताब ये सब श्री पद्मावतीपुरी में पूर्ण हुआ एवं क्यामतनामा चित्रकूट में लिखा गया।[३०६] लेकिन रणछोड़दास वीरजी ने इन सभी ग्रन्थों के रचनाकाल एवं स्थान के संदर्भ में स्पष्ट किया है। उनके अनुसार खुलासा सं० १७४३ में; खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार, सिन्धी स० १७४५ और स० १७४८ के समयान्तर्गत, मारफतसागर ग्रन्थ सं० १७४८ में (और महाशुक्र १४ वी के दिन पूर्ण हुआ), छोटा बड़ा क्यामतनामा भी स० १७४४ चित्रकूट में रचना हुई[३०७] स्वामी लालदास ने लिखा है,[३०८]

> बेतीय बानी, अतीयकी, रामनगर में भया मूल।
> तहां से विस्तार भया, भया परनामें बड़ा तूल।।
> और बानी फिरवानकी, हदीसा महमद अलेहसलाम।
> भई सो सारी परणा मिने, दीन दीनइस्लाम।।
> ए खिलवत और सागर, बेतिव बानी और।
> सो हुई मोमिनों वास्ते, मजल परणा ठौर।

इसी संदर्भ में ब्रजभूषण ने कहा है,[३०९]

> प्रगट करयो हिरदो धनी, "रामनगर" में मूल।
> भयो वृक्ष परना विषे, बानी पुरन फूल।।
> बानी और कुरानकी, हदीसें बहु जात।
> परिक्रमा निज धाम वसु, बरनन कीनें मात।।

---

३०४. रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४६०
३०५. श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० ११
३०६. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६३
३०७. रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४६०-४६१
३०८. स्वामी लालदासकृत, बीतक, प्र० १५, चौ० ६४,६५, ६७
३०९. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२ चौ० ४२-४५

दिव्य ज्ञान को श्री तारतम ज्ञान कहा गया है। उसी ज्ञान का संग्रह "तारतम्यसागर" है।[३१५] प्रो० अमृत पंड्या ने "तारतम्य सागर" और "कुलजमस्वरूप" नामों का उल्लेख करते हुए लिखा है, प्राणनाथजी का प्रयत्न हिन्दू तथा पश्चिम एशियाई धार्मिक परम्पराओं के बीच समन्वय स्थापित कराने का था अतः उनके ग्रन्थों, सिद्धान्तों आदि के दो-दो नाम रखे जाते थे। उन नामों में से एक संस्कृत और दूसरा अरबी या फारसी। इसीलिए इस ग्रन्थ के दो नाम हैं।[३१६] अन्य स्थान पर प० मिश्रीलाल शास्त्री ने बताया है कि मध्ययुग में भाषा की उत्क्रान्ति के कारण आध्यात्मिक–ज्ञान की महान उत्प्रेरक महाप्रभु की यह श्रीमुखवाणी "कुलजमस्वरूप" के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।[३१७] लेकिन साम्प्रदायिक विकास को दृष्टि समक्ष लाते हुए यही लगता है कि मध्ययुग में यह ग्रन्थ मुस्लिमों की सहानुभूति प्राप्त करने के हेतु "कलजम-ए-शरीफ" नाम से ही अभिहित होगा। तदनन्तर, "कुलजम स्वरूप" नाम तुरन्त ही, सम्भवतः ब्रजभूषण के ही समय प्रसिद्ध में रहा होगा। इसके पश्चात् आज तक, वैष्णव धर्मावलम्बियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए, "कुलजमस्वरूप" नाम के साथ श्रीमुखवाणी, तारतम्यसागर, निजानन्दसागर आदि नाम प्रसिद्धी में लाये गये होंगे और "कलजम-ए-शरीफ नाम हटा दिया गया होगा। आज "कलजम-ए-शरीफ" नाम की कोई स्पष्टता सम्प्रदाय के विद्वानों की ओर से नहीं होती।

कई विद्वानों ने रास, प्रकाश आदि रचनाओं से 'कुलजमस्वरूप' (कलजमे शरीफ) ग्रन्थ को भिन्न समझा है। लेकिन उक्त विवरण से इतना स्पष्ट हो जाता है उन बेहोशवानियों जोशवाणी में यह ग्रन्थ अभिन्न है। उक्त अलग अलग रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

(१) रास

प्रो० माताबदल जायसवाल के अनुसार इसमें १०१० चौपाई संख्या हैं।[३१८] आ० परशुराम चतुर्वेदी ने भी यही संख्या दी है।[३१९] मुरलीदास धामी ने प्रकरण ४७ और १०७ चौपाईयों का होना बताया है।[३२०] पी० कृष्णमूर्ति अय्यर ने चौपाईयों की संख्या ६१३ दी है।[३२१] प० मिश्रीलाल शास्त्री ने ४७ प्रकरण और ६२३ चौपाई

३१५ श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई–जून, १९६३, पृ० १०
३१६. गुजराती साहित्य परिषद, २०मु सम्मेलन–हेवाल, पृ० २२०
३१७ श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० १२
३१८. *प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४*
३१९. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६७
३२० मुरलीदास धामी धर्म अभियान, पृ० ६३
३२१ P. Ksrhnamurty Iyer, The Divine message of Lord prannath, p. 37

संख्या दी है।[322] रणछोड़दास वीरजी के अनुसार इसमें ४७ प्रकरण और ९१३ की चौपाई संख्या है।[323] जामनगर–श्रीराजमन्दिर–की प्रतिलिपि के अनुसार चौ० संख्या ९१३ है।[324] ओड़ के प्रणामी मन्दिर की प्रतिलिपि में प्रकरण ४७ और चौपाईयां ९०७ की संख्या दी गई है।[325]

(२) प्रकाश (किताब जम्बूर–गुजराती)

प्रो० माताबदल जायसवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इसकी चौपाई-संख्या ११७६ है।[326] पी० कृष्णमूर्ति के अनुसार चौ० संख्या १०६४ है।[327] मुरलीदास धामी, पं० मिश्रीलाल शास्त्री और रणछोड़दास वीरजी के अनुसार इसमें ३७ प्रकरण, १०६४ चौपाइयां हैं।[328] ओड़ की प्रतिलिपि में भी यही संख्या दी गई है।[329] जामनगर की प्रतिलिपि में १०६१ की संख्या दी गई है।[329]

(३) षटऋतु

प्रो० माताबदल जायसवाल, आ० परशुराम चतुर्वेदी और पी० कृष्णमूर्ति अय्यर ने इसकी चौपाई संख्या ७६० बतायी है।[330] मुरलीदास धामी और पं०

---

३२२. श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई–जून ६३ पृ० १३
३२३. रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
३२४. जामनगर–श्रीराजमन्दिर–दरशनदास की (हस्तलिखित) प्रतिलिपि के आधार पर।
३२५. ओड़-प्रणामी मन्दिर-श्यामदास की (हस्तलिखित) प्रतिलिपि के आधार पर।
३२६ (अ) प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम पृ० १४
(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५१७
३२७. P. Krishnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannaath, p. 37
३२८ (अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
(ब) प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई–जून ६३, पृ० १३
(स) रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
३२९ ओड़–प्रणामी मंदिर–दरशनदासजी की प्रतिलिपि (हस्तलिखित)
३२९ जामनगर की–दरशनदास जी की हस्तलिखित प्रतिलिपि।
३३० (अ) प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५१८
(स) P. Krishanamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p. 37

मिश्रीलाल शास्त्री ने १२ प्रकरण और २३० चौ० संख्या दी है।[331] रणछोड़दास वीरजी और खोड़ की प्रतिलिपि के अनुसार ७ प्रकरण और २३० की चौ० संख्या है।[332] जामनगर की प्रतिलिपि के अनुसार इस रचना की चौपाई संख्या २३० दी है।[333]

(४) कलस (किताब नौरन–गुजराती)

प्रो० मातावदल जायसवाल और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इस रचना में ७६८ की चौपाई–संख्या है।[334] मुरलीदास धामी, प० मिश्रीलाल शास्त्री, रणछोड़दास वीरजी, खोड़ और जामनगर की प्रतिलिपियों के अनुसार प्रकरण १२ और ५०६ चौपाई–संख्या दी गई है।[335]

(५) प्रकाश (हिन्दुस्तानी)

प्रो० मातावदल जायसवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इस रचना की चौपाई संख्या ११७६ दी है।[336] पी० कृष्णमूर्ति अय्यर ने इसकी चौपाई संख्या ११८५ दी है।[337] मुरलीदास धामी, प० मिश्रीलाल शास्त्री और रणछोड़दास वीरजी ने प्रकरण ३७ और चौपाई–संख्या ११८५ बताई है।[338] जामनगर–

३३१　(अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
　　(ब) श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई–जून ६३, पृ० १३

३३२　(अ) रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
　　(ब) खोड़ प्रणामी मंदिर–दयालदास जी की प्रतिलिपि।

३३३.　जामनगर–श्रीराजमंदिर–दरसनदासजी की हस्तलिखित प्रतिलिपि।

३३४　(अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
　　(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६८

३३५　(अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
　　(ब) श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई–जून, ६३, पृ० १३
　　(स) रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
　　(द) खोड़–प्रणामी मंदिर–दयालदास की हस्तलिखित प्रतिलिपि।
　　(इ) जामनगर–श्रीराजमंदिर–दरसनदास की हस्तलिखित प्रतिलिपि।

३३६.　(अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
　　(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६७

३३७.　P Krishnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p 37

३३८.　(अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
　　(ब) श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामीसाहित्य अंक, मई–जून ६३, पृ० १३
　　(स) रणछोड़दास वीरजी श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६

श्रीराममंदिर–की प्रतिलिपि में ११८५ की चौपाई संख्या दी गई है।[339] लेकिन मोड-प्रणामी मंदिर–दयालदासजी की प्रतिलिपि में प्रकरण ३६ और चौपाई संख्या ११८४ दी गई है।[340]

(६) कलस (हिन्दुस्तानी)

प्रो० मातावदल जायसवाल और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इस रचना में ७६८ की चौपाई-संख्या है।[341] मुरलीदास धामी ने प्रकरण २४ और चौपाई-संख्या ७६६ दी है।[342] प० मिश्रीलाल शास्त्री और रणछोड़दास वीरजी ने प्रकरण-संख्या २४ और ७११ चौपाई-संख्या दी है।[343] जामनगर की प्रतिलिपि में भी ७११ चौपाई-संख्या दी गई है।[344] मोड की प्रतिलिपि में प्रकरण २४ और चौपाई ७६६ की संख्या है।[345]

(७) सनंध

प्रो० मातावदल जायसवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इस रचना की चौपाई-संख्या १६६१ दी है।[346] अन्य सभी ने एकमत होकर इसकी प्रकरण संख्या ४२ और १६६१ चौपाई-संख्या दी है।

(८) किरंतन

प्रो० मातावदल जायसवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इसकी २१०३ चौ० संख्या दी है।[347] मुरलीदास धामी, प० मिश्रीलाल शास्त्री और पी० कृष्णमूर्ति

---

३३९. जामनगर–श्री राममंदिर–दरसनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि।
३४०. मोड प्रणामीमंदिर–दयालदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि।
३४१ (अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संतपरम्परा, पृ० ५६८
३४२ मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
३४३ (अ) श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, पृ० १३
(ब) रणछोड़दास वीरजी, श्रीपरमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
३४४ जामनगर–दरसनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि।
३४५ मोड़–दयालदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि।
३४६ (अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६८
३४७. (अ) वही, ० १४
(ब) वही, पृ० ५६८

अय्यर ने प्रकरण १३३ और २१०३ चौ० सख्या दी है।[३४८] रणछोडदास वीरजी ने प्रकरण-सख्या १३३ और २१० चौपाई-सख्या दी है।[३४९] ग्रोड की प्रतिलिपि मे प्रकरण १३१ और चौपाई-संख्या २०६७ दी गई है।[३५०] जामनगर (श्रीराज मन्दिर) की प्रतिलिपि मे २१०८ चौपाइया है।[३५१]

(६) पुलासा (खुलासा)

इस रचना की चोपाई-सख्या के सदर्भ मे प्रो० मातावदल जायसवाल ने भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न उल्लेख किया है। एक स्थान पर १०१६ की सख्या दी है और दूसरे ही स्थान पर १०२६ की संख्या बतायी है।[३५२] प्रा० परशुराम चतुर्वेदी ने १०१६ चौ० सख्या दी है।[३५३] पी० कृष्णमूर्ति अय्यर ने १०२० चौपाई-सख्या दी है।[३५४] मुरलीदास धामी प० मिश्रीलाल शास्त्री और रणछोडदास वीरजी के १८ प्रकरण और १०२० चौ० सख्या बतायी है।[३५५] ग्रोड की प्रतिलिपि मे प्रकरण १६ और चौपाइयाँ १०२० है।[३५६] (श्रीराजमंदिर) जामनगरवाली प्रतिलिपि म १००७ चौपाइयाँ है।[३५७]

३४८ (अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
(ब) श्रीप्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, ६३, पृ० १३
(स) P Krshnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p. 38

३४९ रणछोडदास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६

३५० ग्रोड—दयालदास की ह० लिखित प्रतिलिपि।

३५१. जामनगर—दरसनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि।

३५२ (अ) प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(ब) धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य, द्वितीयखण्ड, पृ० ५६१

३५३. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६८

३५४ P Krishnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p, 38.

३५५. (अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ. ६३
(ब) श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० १४
(स) रणछोडदास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६

३५६ ग्रोड—दयालदासजी की ह. लिखित प्रतिलिपि।

३५७ जामनगर—दरसनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि।

उक्त विवरण में दूसरी प्रतिलिपि दयालदासजी की है। इस प्रतिलिपि की पुष्पिका (अन्तिम हिस्सा) इस प्रकार है—

श्री कुलजममाहेबनमाम हुई है। वार सुकरवार पोहोर दिन चढ़ते तमाम हुई मासकार्तिक ।। प्रतप्रमाणे लिपि है। लीपतग माई देग्रालदाम प्रप्रसेनेह सो ग्रगप्यारसो लिपि है बैठक सुरत वदर मोटामदिर मधे बाई साहेब का गिरी सुन्दरमाथजी को प्रनाम कोटानकोट प्रन अविचार ग्रोर भूलचुक हो जोर कसभाइन्त जो कोई बाचे या पढ़ या लीखे वहाँ गुनेगार है ।। संम पुदाऐ कार्तिक वदिवार सुकरवार आगनीस साल पाँच ।। श्री श्री राज श्री श्री ठकुरानीजी ।। सवत ओगनीस साल पाचमको तमाम ।। १६०५ ।। श्री वावाजी भीषारीदासजी के सेवक दयालदास लिखनग ।। दोहा ।। कोट कोट प्रनाम ।। डडवत करमयजोर ।। भूले हरफ सुधारीं ग्रोडे औगुन है ।।६।।

अर्थात्, बाबा भिखारीदास के शिष्य दयालदासजी ने सूरत-प्रणामी मंदिर में शुक्रवार कार्तिक कृष्णपक्ष सं० १६०४ में यह प्रतिलिपि तैयार की थी। इस प्रतिलिपि में १८७२१ चौपाइयाँ हैं। ग्रोड के मंदिर में दयालदासजी की प्रतिलिपि के अतिरिक्त अन्य प्रतिलिपि अजीरदास की लिखी हुई है। उसका प्रारंभिक हिस्सा इस प्रकार है—

"श्री निजनाम श्री कृष्णजी। अनाद अक्षरातीत। सो तो अब जाहेर भये। सब वीधी वतन सहीत ।।१।। श्री किताव अजीरदास लिखी है।"

लेकिन अजीरदासवाली प्रतिलिपि ५०-६० साल पूर्व की ही लिखी हुई प्रतीत होती है। स्वामी कृष्णप्रियाचार्य महाराज ने अनेक पाठान्तरभेदों को दर्शाते हुए एक प्रामाणिक प्रतिलिपि तैयार की है जिसमें कुल १९००६ चौपाइयाँ है। यह प्रतिलिपि भगोडा में श्री कृष्णप्रियाचार्य महाराज के अपने ग्रन्थागार में सुरक्षित है।

प्रणामी सम्प्रदाय में रतनदासजी महाराज की प्रतिलिपि विशेष आदरपात्र रही है। उसी के आधार पर मोहन मुकुन्द प्रणामी और प्रो० माताबदल जायसवाल ने "श्री प्राणनाथ वचनामृत" का संपादन किया है। उसी प्रकार, प्राणनाथ की बेहोशवाणी की चौपाइयों का संकलन "प्रेमपाठ" नाम से भी हुआ है। डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने अपने प्रबन्ध "हिन्दी साहित्य में कृष्ण" में इसी संकलन का आधार लिया है।

प्राणनाथ की होशवाणी का उल्लेख बहुत ही अल्प-संख्या में मिलता है। फिर भी, होशवाणी का संपूर्ण विवरण कहीं पर भी नहीं हुआ। उनकी होशवाणी का विवरण इस प्रकार है:—

(१) शेख मीराजी का संवाद (दिल्ली-रचनास्थान) गद्य।

(२) कुरान के जवाब सवाल (दिल्ली-रचनास्थान) गद्य ।
(३) तीसरा कयामतनामा (पद्य) ।
(४) कुरान की पत्रिकाएँ (गद्य) ।
(५) नवतनपुरी और अनुयायियों को लिखी पत्रिकाएँ (गद्य) ।
(६) निगम आगम तन्त्र संहिता, शासन पट्टन आदि के प्रश्न (गद्य) ।
(७) जामिम मारफत (फारसी गद्य) ।
(८) छद्यमान प्रबोध (पत्रिका गद्य) ।
(९ से १३), बीस गिरोह की हदीसन, किताब चालीसा तथा नज्जुमुल अखबार, मसारकंजुलवर्दन, तरकुदुनिया आदि कई किताबों को हिन्दी में रूपान्तरित किया है ।

प्राणनाथ की जोश (बेहोश) वाणी और होशवाणी के वर्ण्य विषय के सन्दर्भ में अन्यत्र विस्तार से देखा गया है। इतना समृद्ध साहित्य देखते हुए प्रो० मातावदल जायसवाल का यह कथन[३७३] ठीक ही प्रतीत होता है कि, हिन्दवी में इतनी अधिक रचना मध्यकाल में सम्भवतः किसी अन्य हिन्दू द्वारा नहीं हुई ।

---

३७३. सं० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खंड, पृ० ४३

द्वितीय अध्याय

प्रणामी सम्प्रदाय : उद्भव और विकास

(अ) प्रेरणाएँ और परिस्थितियाँ

मनुष्य और समाज अभिन्न है। अत मनुष्य और उसके कार्यों का मूल्यांकन करने से पहले उसके चारो ओर बिखरे पड़े समाज को देखना भी आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति से व्यक्तित्व का निर्माण युगीन एवम् राष्ट्रीय वातावरण, उसके परिवेश तथा सामाजिक जीवन, उसकी पारिवारिक परिस्थिति, शिक्षा-दीक्षा, जन्मजात गुण आदि पर आधारित रहता है। किसी भी समाज पर पड़े हुए युगीन समस्याओ, राष्ट्रीय परिस्थितियो और राष्ट्रशासको के प्रभाव से व्यक्ति अपने आप को दूर नही रख सकता। कोई साहित्यिक रचना केवल व्यक्तिगत कल्पना का सर्जन ही नही होती। मैक्समूलर ने ठीक ही कहा है, कि व्यक्ति ऐसी भूमि मे उपजता है जो उसके लिए पहले से बनी-बनाई होती है और ऐसे बौद्धिक वातावरण मे सांस लेता है जिसका उसने स्वय निर्माण नही किया।[1] अर्थात् व्यक्ति तो अपने समय की उपज होता है। अतः जिस कालविशेष मे स्वामी प्राणनाथ ने कार्य किया तथा प्रणामी सम्प्रदाय का उद्भव हुआ उसका अध्ययन तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवम् धार्मिक दृष्टिकोणों से करना आवश्यक हो जाता है। प्रथम अध्याय से इतना स्पष्ट हो जाता है कि विवेच्य विषय के संदर्भ मे मुगलशासक जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब का शासनकाल ही विशेष महत्व रखता है।

(क) राजनितिक पृष्ठभूमि

एक या अन्य हेतु से ससार की कई जातियो ने भारत पर आक्रमण किये हैं। असीरिया की महारानी सेमिरामिस, ईरान के साइरस सिकन्दर, सेल्युकस,

---

१. Max Muller, Six systems of Indian Philosophy, p. 2

ऐन्टिओकस आदि तथा शक, पल्हव और हूण जातियों ने आक्रमण किये, लेकिन उनसे भारतीय शासक व्यवस्था पर कोई बुरा प्रभाव उत्पन्न नहीं हुआ। प॰ जवाहर लाल नेहरू ने ठीक ही कहा है कि आर्यों के बाद इस देश में बहुत-सी जातियाँ आती रहीं, जैसे ईरानी, यूनानी, पार्थियन (पल्हव), बैक्ट्रियन, सिदियन (शक), हूण, तुर्क (इस्लाम से पहले के), कदीम ईसाई, यहूदी और पारसी। यह सभी लोग आये, इन्होंने अपना प्रभाव डाला और बाद में यहाँ के लोगों में घुल-मिल गये।[2] लेकिन उसके बाद ई॰ सन् ७११ से[3] मुस्लिम आक्रमणों के कारण इस देश में जो अराजकता या अंधकार छा गया था वह मुगलशासक अकबर के शासनकाल में ही दूर हुआ। १६ वीं से १८ वीं शताब्दी तक मुगलों ने स्थिरता से भारत पर शासन किया। प्रथम मुगलशासक बाबर ने १६ मार्च १५२७ सन् में[4] राणा सांगा को पराजित करके मानो कि हिन्दुत्व को भारत में बन्दी बना दिया। वह धर्मांध और क्रूर नहीं था लेकिन हिन्दुओं के प्रति उसके तिरस्कार और दुर्व्यवहार के संकेत संत नानक से मिलते हैं।[5] हुमायूं और शेरशाह झूठी धर्मांधता और अत्याचार में नहीं मानते थे, अतः हिन्दुओं ने शांति का अनुभव किया। पश्चात् अकबर कि जो अच्छा व्यवाधीश और नीतिकुशल व्यक्ति था उसने योग्य शासक के रूप में दर्शन दिये। अपनी सहिष्णुनीति के कारण अकबर हिन्दु-मुस्लिम के बीच संतुलन रख सका। फिर भी काश्मीर पर उसकी जिस प्रकार से विजय हुई उसको अकबर के चरित्र में काले धब्बे के रूप में माना गया है।[6] उसने सितम्बर १५७३ में गुजरात पर आक्रमण किया और गुजरात पर मुगलशासन स्थापित हुआ।[7] अब हिन्दुओं ने आराम की साँस लेना शुरू किया। अकबर ने राजनीतिक सफलताएँ प्राप्त की। अतः हुसैन का कथन ठीक है कि मुस्लिम शासक, जिन्होंने मुगलों से पहले भारत में शासन किया था उन्होंने सिर्फ नींव ही डाली थी, लेकिन फलप्राप्ति मुगलों के शासनकाल में ही हुई थी।[8] अकबर ने जो ज्योति जलाई थी, वह जहांगीर और शाहजहां के समय में

२. पं॰ जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त), पृ॰ २४
३ Baij Nath Puri, Indian Histosy–A Review, p. 71.
४ Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV. p 17
५. M. A. Maculiffe, Sikh Religion, Vol 1–2, p 44
६. Riehard Burn, The Cambridge History of India, Vol III, p 293
७. गो॰ हा॰ देसाई, गुजरातनो अर्वाचिन इतिहास, पृ॰ ८०
८. A M. Hussain, The Rise and Fall of Muhammd Bin Tughlak, p. 3

जलती रही। वे विलासी अधिक थे और धर्मांध कम। इसीलिए उस ज्योति का प्रकाश आहिस्ते आहिस्ते मन्द होता चला और औरंगजेब के आगमन के साथ ही वह बुझ गई। जहाँगीर मुसलमानों का पक्षपात अवश्य करता था।[९] रामधारीसिंह "दिनकर" के अनुसार जहाँगीर और शाहजहाँ ने अकबर की नीति बहुत दूर तक बरती, लेकिन सन् १६३३ में न जानें शाहजहाँ को क्या हुआ कि उसने फरमान निकाल दिया कि अब आगे से नये मंदिर नहीं बनाए जाएँ और जो मंदिर बन ये दिये जाने के क्रम में हो, वे तोड़ दिये जाएं।" किन्तु, पुराने मंदिर तोड़े नहीं गये इससे शाहजहाँ की उदारता जरूर झलकती है।[१०] लेकिन अन्य इतिहासकार के अनुसार,[११] सन् १६३३ में शाहजहाँ ने वाराणसी आदि स्थानों के मन्दिर तुड़वाने का आदेश दिया तथा हिन्दुओं को जबरदस्ती मुस्लिम बनाने की प्रवृत्ति भी की। इस्लाम के प्रचार एवम् प्रसार में वह रुचि रखता था और धर्मपरिवर्तन के लिए उसने एक अधिकारी की भी नियुक्ति की थी। औरंगजेब की सी धर्मांधता उसमें नहीं थी, लेकिन हकीकत मिटायी नहीं जा सकती कि उसने गुजरात काशी, इलाहाबाद और काश्मीर में कई हिन्दू मन्दिर तुड़वाये थे।[१२] कीन ने बताया है कि[१३] शाहजहाँ के पिता व पितामह धार्मिक सहिष्णुता की तुलना में उसके क्रिश्चियनों और हिन्दुओं के प्रति किये गये बर्ताव को उसके चारित्र्य के काले धब्बे ही मानना पड़ता है। रामधारीसिंह "दिनकर" शाहजहाँ के ऐसे ही व्यक्तित्व को दृष्टि समक्ष रखते हुए लिखते हैं, शाहजहाँ यद्यपि हिन्दू माँ का बेटा था, किन्तु उसका व्यक्तित्व फटा हुआ था। उसके व्यक्तित्व के दोनों टुकड़े उसके

---

९. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p 18

१० रामधारीसिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३६१–३६२

११ Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV, p 217. In 1633 Shah Jahan ordered the domolition of Hindu temples which had been begun in the previous reign, *especially at Benares, and many were demolished* The orders were followed by a prohibition of the erection of new Shrines or the repair of older buildings ....Mass conversions of Hindus to Islam were also encouraged and in some cases were forcibly effected

१२ Shri Ram Sharma, Mughal Government and Administration, pp 165, 179

१३. H. A. Keen, A sketch of the History of Hindustan, p. 217

दो पुत्रों में साकार हुए। व्यक्तित्व का जो अंश अकबर में आया था उसका प्रतिनिधि दाराशिकोह हुआ। इसके विपरीत, उसके व्यक्तित्व के जिस अंश पर शेख अहमद के प्रचारों का प्रभाव था, उसका प्रतिनिधित्व औरंगजेब ने किया।...... ......औरंगजेब ने खदेड़कर दारा को मार डाला और बाप को कैद करके वह खुद सिंहासन पर बैठ गया। जिस दिन दाराशिकोह मारा गया और औरंगजेब गद्दीनशीन हुआ, सामाजिक संस्कृति का कलेजा, असल में उसी रोज फटा और तब से यद्यपि हम इस फटन को बार-बार सीने की कोशिश करते रहे हैं, किन्तु वह ठीक से सिल नहीं पाती।[१४] भले ही कुरान ने कहा हो कि, धर्म में बल का प्रयोग नहीं होना चाहिए। विश्वास लाने के लिए कोई मजबूर नहीं किया जा सकता।[१५] लेकिन मोहम्मद गोरी और अकबर के बीच वाले समय से भारतवासियों ने मुस्लिम आक्रमणों की जिस बर्बरता धर्मांधता, अत्याचार, अनाचार,, संकीर्णता, निर्दयता, नृशंसता और उद्दंडता के दर्शन किये थे उसी का पुनरावर्तन औरंगजेब ने किया।

औरंगजेब कट्टर मुसलमान और हिन्दुओं का उत्पीडक था। हालांकि जिस ढंग से वह सिंहासनारूढ हुआ उस पर से ही लोगों ने अन्दाज लगा लिया था कि वह दुष्ट, निडर, क्रूर-निर्दयी और निर्लज्ज व्यक्ति है।[१६] सभी मुगलशासकोंमें से औरंगजेब के ही समय में हिन्दुओं को सबसे अधिक अत्याचारों एवम् अनाचारों को मूक रहकर सहन करना पड़ा। हिन्दुओं का जीवन फिर निराशा का भण्डार बन गया। सहिष्णुता और धर्मांधता की लड़ाई में धर्मांधता की विजय हुई। औरंगजेब ने धर्मांधता के चश्मे से ही कुरान के नियमों को देखा और मानने लगा कि बिन-मुस्लिम इस्लाम को ग्रहण करें तबतक धर्मयुद्ध करना आवश्यक है।[१७] अतः हिन्दुओं के लिए हिन्दुत्व एक गुनाह बन गया था।

---

१४. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३६२

१५. कुरानेशरीफ, २-२५६

16. Jadunath Sarkar, History of Aurangzeb,'III pp 141-145 Aurangzeb's treatment of his father outraged not only the moral sense but also the social decorum of the age....He now came to execrated by the public as a,bold bad man, without fear, without, pity, withoutal shame.

17. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV. p. 240....... or in in otherwords to wage holy wars Jihad) against non-muslim countries (dar-ul-hurb) till they are turned into realms of Islam (Dar-ul-Islam).

औरंगजेब ने अपने शासनकाल के प्रारंभ में १० मार्च १६५६ के दिन जाहिर किया कि मेरा धर्म नये मन्दिर बनवाने के लिए मना करता है। लेकिन पुराने मन्दिर ज्यों के त्यों रखे जा सकेंगे।[१८] अपने इसी फरमान का ही आगे बराबर पालन नहीं किया और कई मन्दिर तुड़वाने शुरू किये। उसको शंका हुई कि हिन्दूलोग विद्रोह की बातों के लिए इन मन्दिरों का उपयोग करते हैं। श्रीराम शर्मा के अनुसार, औरंगजेब की इस नीति परिवर्तन के पीछे कई ऐतिहासिक घटनाओं तथा व्यक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुगलदरबार में कार्य करनेवाले राजा जसवन्तसिंह, राजा रघुनाथ और जयसिंह की मृत्यु के बाद ही औरंगजेब ने अपने हिन्दू-विरोधी विचारों को खुलकर के प्रकट किया।[१९] लेकिन वी० डी० महाजन ने इसके संदर्भ में स्पष्ट उल्लेख किया है कि इस नीति-परिवर्तन के पीछे यही कारण था कि सिन्ध, मुलतान और बनारस के ब्राह्मण दुष्ट हो गये हैं, शास्त्र की शिक्षा में लगे रहते हैं, दूर-दूर के हिंदू-मुसलमान उनसे धर्मज्ञान प्राप्त करने के हेतु आते हैं और इस प्रकार मन्दिरों को उपयोग में लिया जाता है।[२०] तब अपने राज्यपालों को फरमाया कि वे लोग अपने प्रान्त के उन स्थानों को, मन्दिरों को नष्ट कर दें।। औरंगजेब अपनी धार्मिक कट्टरता का खुलकर प्रदर्शन करने लगा था। अप्रेल १६६९ ई० में उसने प्रान्तीय सूबेदारों को नास्तिकों के सभी मंदिरों और विद्यालयों को नष्ट करने[२१] और उनकी शिक्षाओं और धार्मिक कृत्यों को बिल्कुल बंद कर देने का आदेश दिया। अगस्त १६६९ ई. में बनारस के विश्वनाथ और गोपीनाथ मन्दिर को गिरा दिया गया। बुन्देले राजा वीरसिंहदेव द्वारा ३३ लाख रुपयों की लागत से बनवाया हुआ मथुरा का सबसे शानदार देवालय-केशवराय का मन्दिर-जनवरी १६७० ई० को धराशायी कर दिया गया और उसके स्थान पर मसजिद बनवा दी गयी। इस मन्दिर की मूर्तियाँ आगरा लायी गयी और उन्हें जहाँनारा मसजिद की सीढ़ियों पर लगा दिया गया, जिससे वे नमाज पढ़ने के लिए भीतर

18 Ibid. p. 241.

19. Shri Ram Sharma, Mughal Government and Administration. p. 181

20. V.D. Mahajan, India since 1526, p 151

21. Ed. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV. P. 241.
So large was the official temple-breakers that a Darogha (Superintendent) had to be placed over them to guide and unite their activities.

जानेवाले मुसलमानों के पैरों से लगातार खुदती रहें।[२२] इससे पहले ही इस्लाम के प्रसार और प्रचार के लिए हिन्दुओं को कई ढंग से उसने परेशान किया। हिन्दुओं के पर्वोत्सवों पर १६६५ ई० में ही प्रतिबंध लगा दिया गया था।[२३] औरंगजेब के मन में अपनी प्रजा के विशाल बहुमत अर्थात् हिन्दुओं के प्रति जितनी उग्र घृणा थी, इतनी ही अरुचि उसे शियाओं से भी थी, यद्यपि उसके कतिपय योग्यतम सेनानायक तथा सर्वोत्तम असैनिक अधिकारी शिया थे। वह शियाओं को नास्तिक (राफिजी) समझता था।[२४] १६६६ ई० में शिया-मुस्लिमों को मुहर्रम मनाने पर प्रतिबंध लगाकर तंग किया गया।[२५]

हिन्दू राजाओं ने औरंगजेब की विनाशलीला की प्रवृत्ति को रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न भी किया। सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं,[२६] जिन अन्य छोटे धार्मिक भवनों को विनाशलीला का शिकार होना पड़ा, उनकी गणना ही नहीं की जा सकती। अकेले मेवाड़ में १६७९-८० ई० के राजपुत-युद्ध के साथ २४० मन्दिर नष्ट किये गये, जिनमें सोमेश्वर का प्रसिद्ध मंदिर और उदयपुर के तीन शानदार मन्दिर भी सम्मिलित थे। जयपुर के वफादार राज्य में भी ६७ मन्दिर ढा दिये गये।[२७] कहा जाता है कि,[२८] चित्तौड़ के प्रसिद्ध ६३ मन्दिरों को उसने आँखों के सामने नष्ट करवाया था।

---

२२. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनूदित), पृ० ६

२३. V. D. Mahajan, India since 1526, p. 152

२४. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनूदित), पृ० १२

२५. A L Shrivastava History of India (1000 to 1707), p 675 He persecuted the Shias, particularly Ismalia and Daudi Bohras, and Put down their teachings and practices. Persian Shias whose genius had shown brilliantly in the revenue & military departments alike, and who had made the reigns of Akbar & Shah Jahan glorious, were discriminated against the royal service.

२६. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनूदित), पृ० ९-१०

27. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 242

28. Ibid, p 242

औरंगजेब ने मुस्लिमेतर प्रजा पर धार्मिक दबाव डालकर भी इस्लाम का प्रसार सफलतापूर्ण ढंग से करने का प्रयत्न किया। १२ अप्रैल, १६७९ ई० को मुस्लिमेतरों पर जजिया या व्यक्तिगत-कर फिर से लागू कर दिया गया। इस प्रवृत्ति के पीछे उसका इस्लाम के प्रसार का ही हेतु था।[२९] जजियाकर का सबसे बुरा असर मुस्लिमेतर गरीब प्रजा पर हुआ क्योंकि उसने गरीबों की एक साल की रोटी छीन ली।[३०] जो हिन्दू या मुस्लिमेतर प्रजा यह कर न दे सकता, उसे बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता था। इस प्रकार उसकी प्रबल इच्छा सारे देश को इस्लाम बनाने की थी।[३१] उक्त कर का जयसिंह, शिवाजी आदि हिन्दू राजाओं ने कड़ा विरोध किया था। जयसिंह ने औरंगजेब को एक ऐसा पत्र भी लिखा था कि खुदा सिर्फ मुसलमानों का ही नहीं, बल्कि प्रत्येक इन्सान का है। उसके सामने *हिन्दू-मुसलमान समान हैं। हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों का अनादर करना यह* सर्वशक्तिमान परमात्मा का मजाक उड़ाना है।[३२] शिवाजी ने भी ऐसी नीति का विरोध व्यक्त करता हुआ एक पत्र औरंगजेब को लिखा था।[३३] इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में हमने देखा है कि प्राणनाथ ने इसी नीति के विरोध में १२ व्यक्तियों की सेना औरंगजेब को समझाने के लिए भेजी थी। निम्नलिखित पद में भी वही बात निर्देशित की गई है—[३४]

> असुर लगाये रे हिन्दुओं पर जेजिया, ताको मिलें नहीं खानपान ।
> जो गरीब न दे सकें जेजिया, ताए मार करे मुसलमान ।।

---

२९ Richard Burn, The Cambridge History of India, V. IV., p 242. On 12 April, 1679, an edict was issued reimposing the Jizya tax on the unbelievers with the object of spreading Islam & overthrowing infidel practices.

३० Sir Jadunath Sarkar, History of Aurangzeb, III, pp. 270-74 The Jizya hit the poorest portion of the population hardest ...... The State, therefore, at the lowest incidence of the tax, annually took away from the poorman the full value of one year's food as the price of the religious indulgence .... The Jizya meant for the Hindus an addition of fully one-third *to every subjects direct contribution to the State.*

३१. Shrivastava, History of India (1000 to 1707), p. 643

३२. Ranade, Rise of Maratha Power, p. 81

३३. वामन सीताराम मुकादम, छत्रपति शिवाजी चरित्र (१९३४), पृ० १३६।

३४. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरंतन, प्र० ५७, चौ० १६

औरंगजेब के मनमाने धार्मिक अत्याचार और अनाचार से मुस्लिमेतर प्रजा, विशेषतः हिन्दूप्रजा, हा हाकार करने लगी। जजियाकर के साथ उसने १६७६ ई० मे यात्राकर भी लगा दिया। हिन्दू और मुसलमान व्यापारियों के साथ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की कर-व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अनुसार, मुसलमान को चुंगी से मुक्ति मिलती थी।[३५] हिन्दुओं को अपने धर्मपालन करने का अधिकार न था। अपने मंदिरों का जीर्णोद्धार भी वे नही कर सकते थे। इसलिए हिन्दू अपने भगवान की पूजा भी छिप करके ही करने लग गये थे।[३६] हिन्दुओं के धार्मिक मेलों पर उसने १६६८ मे प्रतिबन्ध लगा लिया।[३७] मार्च १६७५ ई० मे एक दूसरे अध्यादेश के द्वारा "राजपूतों को छोड़कर अन्य सभी हिन्दुओ के लिये हथियार लेकर चलने तथा हाथियों, पालकियों अथवा अरबी और फारसी घोडो पर सवारी करने की मनाई कर दी गई।" "कलम के एक वार से उसने सभी हिन्दू क्लर्कों को उनके पदो से बरखास्त कर दिया।[३८] सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, इस प्रकार के नियमों से उत्पन्न असंतोष उनके अन्तिम राजनीतिक दुष्परिणामों की सूचना देने वाला एक अपशकुन था, परन्तु औरंगजेब इतना विवेकशील और जिद्दी हो गया था कि वह भविष्य का विचार भी न कर पाता था।[३९] औरंगजेब हिन्दुओ या शिया का ही नही, सूफियों का भी दुश्मन था। सरमद जैसे सूफीसंत को उसने सूली पर चढ़वा दिया था।[४०] इस्लाम के प्रचार के लिये उसने क्या-क्या नही किया? उसके लिए

---

३५. Shrivastava, History of India (1000 to 1707), p. 645. He also reimposed the pilgrim's tax on the Hindus, each of whom had to pay rupees six and annas four for bathing in the Ganga at Prayag, and a similar sum at other holy places. The emperor abolished customs duties in the case of Muslim merchants, but continues it at the old rate of 5% in case of Hindus.

३६. Shri Ram Sharma, Mughal Government & Administration, p. 191

३७. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 243

३८. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनूदित), पृ० १०

३९. वही, पृ० १०

४०. रामधारीसिंह "दिनकर", सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३९४

न सिर्फ अत्याचार और अनाचार ही किये, लेकिन हिन्दू अगर मुस्लिम बन जाए तो उसका बड़ा गुनाह भी मुग्राफ कर दिया जाता था। इस्लाम को स्वीकार करने वालों को वक्षिसें और नौकरी में अच्छे पद दिये जाते थे।[४१] सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, मुस्लिमेतर प्रजा गुलाम जैसी हालत में ही जी रही थी। उनका विकास या प्रगति मुस्लिम शासन के खिलाफ था। कुरान के नियमों को मनमाने ढंग से कड़क पालन ने शासक और शासित के बीच वैमनस्य खड़ा कर दिया।[४२] वैसे देखा जाय तो औरंगजेब में कई अच्छे गुण भी थे। वह अथक परिश्रमी था। उसका जीवन बिल्कुल सादगीपूर्ण था वह नमाज और रोजा का बड़ा पाबन्द था। लेकिन उसकी धर्मसंकीर्णता और असहिष्णुता की भावना ने उसके अच्छे गुणों को भी मिट्टी में मिला दिया था। सर जदुनाथ सरकार के अनुसार,[४३] वह अपने गुणों के कारण महान था। उसके ये गुण ऐसे थे, जो मनुष्यों के ऊपर शासन करने के सर्वोच्च क्षेत्र को छोड़कर जीवन के किसी क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान दिलाने में समर्थ होते। वह एक सफल सेनापति, मंत्री, आत्मवादी या अध्यापक और आदर्श विभागाध्यक्ष बन सकता था। परन्तु भगवान की लीला ने उसे सिंहासन की जिस संकटपूर्ण ऊंचाई पर बिठा दिया, वह उसके जीवन को असफल बनाने और उसकी कीर्ति को नष्ट कर देने का कारण बनी। वर्त्तव्य सम्बन्धी अनुशासन तथा दरबारी शिष्टाचार के विषय में वह बहुत कठोर था। वह नियमों तथा प्रचलित परम्पराओं का कठोरतम पालन कराता था।

औरंगजेब के समय में गुजरात की, विशेषत नवानगर राज्य की, और बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति के विषय में भी यहाँ चर्चा करना आवश्यक होगा

४१. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV, p 243

४२ Sir Jadunath Sarkar, History of Aurangzib, III, pp 251, 264. A non-Muslim .. is a member of a depressed class, his status is a modified form of slavery The growth and progress of non-Muslims, even their continued existence, is incompitable with the basic principles of a Muslim state ....The literal interpretation of the Quranic Law sets up a chronic, autogonism between the ruled, which has, in the rulers and the end, broken up every Islamic state with a composite population

४३ सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अनूदित), पृ० २१-२२

क्योंकि हमारे आलोच्य स्वामी प्राणनाथ का प्रारम्भिक जीवन जामनगर (नवानगर) मे और उत्तर कालीन जीवन पन्ना (बुन्देलखंड) मे व्यतीत हुआ था।

जामनगर राज्य की स्थिति

सुलतान महमूदशाह तीसरे (ई० सन् १५३६–१५५४) के शासनकाल में नवानगर राज्य की स्थापना १५४० ई० (स० १५९६) मे राजा जाम रावल ने की थी। जाम राजा कभी-कभी मुस्लिमशासको का विरोध भी करते थे। गुजरात मे बगावत हुई और यागी मुजफर का साथ देनेवालो मे से नवानगर का जाम राजा भी था। अत १५८३ के अन्त मे गुजरात के पाँचवे सूबेदार के रूप मे खानखानान की नियुक्ति हुई और उसने १५८४ ई० मे मुजफर को हरा दिया [४४] लेकिन खान-खानान को मालूम था कि मुजफर के परिवार को नवानगर को जाम राजा ने शरण दी थी। अतः नवानगर पर आक्रमण करने के हेतु वह नावनगर पहुँचा। लेकिन जामराजा ने मुआफी माग ली। फिर से सातवें सूबेदार कोकलताश के समय में (ई० १५८८ में) तीन साल बाद मुजफर काठियावाड मे आया और इस वक्त भी नवानगर के जाम ने उसकी सहायता की। इस बार कोकलताश ने नावनगर पर आक्रमण किया। मुचर गोरी गाँव के पास जाम राजा और कोकलताश के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध मे जाम राजा को बहुत नुकसान हुआ। यह भयकर युद्ध "मुचर मोरी" युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। शाहीसेना ने नवानगर शहर को जी भर के लूटा। इस भयकर युद्ध मे मुगल सम्राट की विजय हुई और सौराष्ट्र के हतभागी हिंदू राजाओ ने सिर ऊँचा उठाने की या स्वतन्त्रता प्राप्त करने की आशा छोड़ दी। लेकिन अकबर की नीति के फलस्वरूप जाम राजा सताजी को नवानगर राज्य पुनः प्राप्त हुआ और उन्होने मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार ली। अकबर की मृत्यु (१६०५ ई०) के बाद जामसताजी ने पुन स्वतन्त्र होने की प्रवृत्ति शुरू की। जहाँगीर का शासन काल अकबर के समान जागरूक नही था इसलिए उसको

---

४४. गो० हा० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ८६

४५. Gazetteer of the Bombay Presidency, Vol., Part I, p. 271. The Viceroy now marched on Navanagar to punish the Jam. The Jam sent in his submission, and the Viceroy taking from him, by way of fine, an elephant and some valuable horses, returned to Ahmedabad.

४६. Ibid, p. 271

४७. शभुप्रसाद देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३०३

खुलवाये थे।[५५] जाम लाखोजी ने अपने काका की रीति-नीति को ही अपना आदर्श बनाया था। उसने अपना सैन्य मजबूत बनाया और स्वतन्त्रता जाहिर की। उसने १६४० ई० मे बादशाह के सूबेदार आजमखान को खडनी देना बन्द कर दिया।[५६] इससे आगे बढकर जाम ने छोटे छोटे राज्यो से खडनी लेना शुरू किया और अपने सिक्के सौराष्ट्र में शुरू किये। सौराष्ट्र मे दिल्ली की सत्ता का खुलकर के अनादर सबसे प्रथम जाम राजा ने किया और उसने एक स्वतन्त्र राजा के रूप मे राज्य शासन किया। इसीलिए आजमखान ने नवानगर पर १६४० ई० में आक्रमण किया। लेकिन जाम ने दादा सताजी जैसी भूल नही की। वह स्वयं ही सामने चलकर के आजमखान से जा मिला और उसने मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली।[५७] जाम लाखोजी की मृत्यु १६४५ ई० (स० १७०१) मे हुई।[५८] अब राज्यशासन रणमल प्रथम के हाथ मे आया। उसी समय मुगल बादशाह की ओर से गुजरात के सूबेदार के रूप मे औरंगजेब की नियुक्ति ई० सन् १६४४ मे हो चुकी थी। वह इस स्थान पर १६४६ ई० (स० १७०२) तक रहा लेकिन इसी समय मे गुजरात में हिन्दु-मुस्लमान के बीच वैमनस्य पैदा हुआ और कई झगडे हुए। औरंगजेब ने अपनी कौमी राजनीति का गुजरात को अनुभव कराया और इस प्रकार से गुजरात ने उसकी धर्मान्धता के दर्शन किये। उसने सौराष्ट्र के सोमनाथ और द्वारिका के मन्दिर तुड़वाए और तीर्थस्थानो मे मूर्तिपूजा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सोमनाथ मन्दिर को मसजिद मे परिवर्तित कर दिया और कोवतुलर स्लाम (इस्लाम की शक्ति) नाम दिया।[५९] उसने अहमदाबाद के चिन्तामणि मन्दिर को गौवध करके अपवित्र करवा दिया और उसको तुडवाकर के मसजिद मे परिवर्तित किया गया। लेकिन बादशाह शाहजहाँ ने हिन्दुओं को उस मन्दिर का जीर्णोद्धार करने की इजाजत दी।[६०] जाम रणमलजी का शासनकाल १६४५ ई० (स० १७०१) से १६६१ ई० (सं० १७१७) तक रहा। अर्थात् उनकी मृत्यु से चार वर्ष पूर्व ही नवानगर राज्य की गद्दी को लेकर राज्य परिवार में विवाद उपस्थित हुआ था। इन अन्तिम

---

५५ (अ) शमुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३११
(ब) गो० ह० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ६६

५६ Bombay Gazetteer, pp 569-570

५७ शमुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३११

५८ कवि मावदनजी, श्रीयदुवशप्रकाश, द्वितीय खड, पृ० २३४

५९ शंभुप्रसाद देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३१२

६० Gazettteer of Bombay presidency, V. I, P. I, p. 280

वर्षों में रणमलजी की रानी और उसके भाई ने योजना करके सताजी नामक लड़के को राज्य की गद्दी पर बिठा दिया।[६१] वस्तुतः जामरणमल की मृत्यु १६६४ ई० में हुई और तुरन्त ही उसके भाई रायसिंह ने कुमार सताजी को गद्दी पर से हटा दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया।[६२] जाम रायसिंह ने १६६१ ई० (स० १७१७) से १६६४ (स० १७२०) तक शासन किया। उस समय राज्य-परिवार का मालिक ईसा नामक नौकर रणमलजी के पुत्र सताजी को लेकर अहमदाबाद गया और सूबेदार की सहायता मांगी। गजेटियर में नरनी सताजी का कोई उल्लेख नहीं हुआ।[६३] कवि भावदानजी के अनुसार, नरनी सताजी ने कुतुबुद्दीन से सहायता मांगी और कुतुबुद्दीन ने १६६६ ई० (स० १७२०) में नवानगर पर आक्रमण किया।[६४] शंभुप्रसाद देसाई ने उस आक्रमण का समय १६७० ई० (स० १७२६) बताया है।[६५] गजेटियर के अनुसार, कुतुबुद्दीन ने १६६४ ई० में नवानगर पर आक्रमण किया और रायसिंह की हत्या करके नवानगर पर अपना शासन स्थापित किया। नवानगर का नाम इस्लामपुर रख दिया गया।[६६] लेकिन जामनगर (नवानगर) का नाम इस समय इस्लामपुर रखा गया था या मुचरमोगीयुद्ध के बाद रखा गया था इसके सम्बन्ध में मत भेद है। "यदुवंशप्रकाश" कार ने इसी समय नामपरिवर्तन हुआ बताया है और यही उचित लगता है।[६७] नवानगर शहर के लिए काजी की नियुक्ति की गई और सताजी को गद्दी दी गई लेकिन सताजी कैदी जैसी हालत में ही था। इस प्रकार सम्पूर्ण सत्ता आठ मास तक मुसलमानों के हाथ में ही रही। नवानगर राज्य फिर से एक बार जाम राजाओं के हाथों से निकलकर मुस्लिमों के हाथों में गया।

शिवाजी ने १६६४ ई०, १६६६ ई० और १६७० ई० में सूरत शहर को लूटा।[६८] नवनागर के जाम रायसिंह का लड़का तमाची, जो अपने पिता की मृत्यु

६१　शंभुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३१८
६२　वही, पृ० ३१८
६३　Gazetteer of Bombay Presidency, V I, P I, p 283
६४　कवि मावदानसिंह- श्री यदुवंश प्रकाश, द्वितीय खंड, पृ० २४२
६५　शंभुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३१८
६६　Gazetteer of Bombay, V I Part I, p 283
६७　शंभुप्रसाद सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३१५
६८　(अ) Gazetteer of Bombay Presidency, V, I pt. I, p 284
　　(ब) शो० ह० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० १११

के बाद कच्छ की ओर भाग गया था, उसे मुआफी मांगने पर और सूबेदार को सहायता देने की शर्त पर नवानगर राज्य की गद्दी वापस दे दी गई। फिर भी बादशाह औरंगजेब के जीवनकाल पर्यन्त नवानगर मुसलमानों के हाथों में रहा।[६९]

अहमदाबाद ने १६८१ ई० में भारी अकाल और जनता के विद्रोह की आग को देखा। सूबेदार मोहम्मद ने इसी समय अबूबकर नामक व्यक्ति को जहर पिला कर मार डाला। गुजरात के मुस्लिमों-मतिया और मोमना में दंगा हुआ। दंगे में कई मोमना मारे गये।[७०] इन्हीं दिनों में बादशाह ने वडनगर में नागरब्राह्मण जाति के हाटकेश्वर महादेव के मन्दिर को तोड़ डालने का आदेश दिया।[७१] गुजरात के वहोराजाति के प्रति भी बादशाह को तिरस्कार था। १७०५ ई० में उसको यह मालूम हुआ कि वहोरा के मुख्य धर्मगुरु मुल्ला खानजी ने अपने धर्मप्रसार के लिए १२ उपदेशक भेजे हैं और अपने कैदी अनुयायियों को मुक्ति दिलाने के लिये १, १४,००० रुपये इकट्ठे किये हैं। औरंगजेब ने उन १२ उपदेशकों को कैद करवाया और उन लोगों के स्थान पर मुल्लाओं को धर्मप्रचार के लिये भेज दिया।[७२] १६९८ ई० में वर्षा की कमी के कारण मारवाड़ और गुजरात में अकाल की परिस्थिति पैदा हुई थी।[७३] १७०५ ई० में जब औरंगजेब ने सुना कि द्वारिका में मुसलमान थानेदार पर हमला हुआ, उसने तुरन्त ही द्वारिका मन्दिर तुड़वाने का आदेश दिया।[७४] जब पीलाजी गायकवाड ने १७१६ ई० में[७५] गुजरात पर आक्रमण करना शुरू किया, तब से गुजरात में मुगलसाम्राज्य के अन्त के डंके बजने लग गये थे।

बुंदेलखंड की स्थिति

बुंदेलखंड के बुंदेला मुगलों के कायमी दुश्मन निकले। मुगल शासन के समय बुंदेलखंड का अधिकांश भाग इलाहबाद के सूबे में था। कुछ दूसरे भाग जैसे कालपी,

---

६९ (अ) गो० हृ० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ११२
(ब) Gazetteer of Bombay Presidency, V, I, Pt. I p. 285
७० गो० हृ० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ११४, ११६
७१ Gazetteer of Bombay Presidency, V.I, Pt. I p. 289
७२ वही, पृ० २९३
७३ वही, पृ० २९० .
७४ वही, पृ० २९५
७५ (अ) वही, पृ० ३०१
(ब) अनु० यदुनाथ सरकार, आईन-इ-अकबरी, २, पृ० १७७, १९५, १९८-९९

एरछ, और चंदेरी आदि आगरा और मालवा सूबों में थे। बुंदेलों के उत्कर्ष से पहिले देश के इस भाग पर चंदेलों का प्रभुत्व रहा था। किन्तु १२ वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में चन्देलों की शक्ति क्षीण हो गई थी। वीरभद्र के पुत्र एवम् वंशज वीरसिंहदेव ने अपने राज्य की सीमा को विस्तृत की। उसने महौनी को अपनी राजधानी बनाया और कालिंजर, कालपी को अपने राज्य में मिला लिया।[76] अकबर के शासनकाल में १६०२ ई० में वीरसिंह बुंदेला ने दंगा मचाया था। उसको दबाने में अकबर को असफलता मिली।[77] वीरसिंह देव के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र जुझारसिंह गद्दी पर बैठा।[78] शाहजहाँ अपने शासनकाल के प्रारम्भ में ही किसी कारणवश जुझारसिंह से अप्रसन्न हो गया। अतः जुझारसिंह आगरे से भागकर ओरछा चला आया। महाबतखाँ, खानजहाँ लोदी और अब्दुल्लाखाँ के आक्रमणों से जुझारसिंह शक्तिहीन हो गया और मार्च १६२९ ई० में शाहजहाँ से क्षमा माँग ली। तदनन्तर वह मुगलसेना में ही रहा और अन्ततः अपने पुत्र विक्रमाजीत को वहीं छोड़कर ओरछा वापिस लौट आया।[79] लेकिन मुगल अधीनता से छुटकारा पाने का प्रयत्न उसने जारी रखा। मुगल सेना के वेगपूर्ण आक्रमणों को जुझारसिंह रोक न सका। फिर भी जुझारसिंह और विक्रमाजीत जंगलों में भाग गये और गोंडों ने उन्हें मार डाला। ऐसे अन्य विद्रोहियों के सामने शाही प्रतिशोध का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए सम्राट् के आदेशानुसार उनके कटे हुए सिर सीहोर नगर के दरवाजों पर टांग दिये गये।[80] जुझारसिंह की मृत्यु के बाद ओरछा का राज्य लगभग दो वर्ष तक चंदेरी के देवीसिंह के अधिकार में रहा। परन्तु स्थानीय जनता तथा जुझारसिंह के अन्य बुंदेला अनुयायियों के सक्रिय विरोध के कारण विवश होकर अन्ततः देवीसिंह ओरछा छोड़कर वापिस चंदेरी लौट गया। तब जुझारसिंह के राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और वहाँ के शासन के लिए शाही कर्मचारी नियुक्त कर दिये गये।[81] लेकिन अब बुंदेलों का नेतृत्व छत्रसाल के पिता चम्पतराय ने किया। मुगल सेना से कई बार पराजित होने पर भी उन्होंने अपने विद्रोही कार्यों को यथावत् जारी रखा। इस प्रकार के कार्यों से वे इतने जनप्रिय हो गये थे कि शक्ति के

---

७६. लाल कवि कृत, छत्रप्रकाश, पृ० ६–१०

७७. V. D. Mahajan, India since 1526, p 156

७८. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० २०

७९. Sir Jadunath Sarkar, History of Aurangzeb, I. p. 17

८०. वही, पृ० २२–२६

८१. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० २३

प्रयोग से उनका दमन करना कठिन था। लेकिन औरंगजेब ने १६६१ में उसको मालवा आदि के राजाओं की सहायता से दबा दिया।[८२] उनकी मृत्यु के बाद उनके पाँच पुत्रों में से[८३] छत्रसाल और अंगद ने पिता जैसी ही विद्रोही प्रवृत्ति करनी चाही। लेकिन उन्होंने स्पष्टतया देख लिया कि मुगल साम्राज्य के विरुद्ध बुंदेलखण्ड में कहीं से भी कोई सहायता न मिलेगी। अत में निराश होकर छत्रसाल ने मुगलसेना में ही नौकरी करने का निश्चय किया।[८४] फिर भी मुगलों के प्रति जो असन्तोष उनके मन में था वह बना रहा। उसी समय शिवाजी की अभूतपूर्व सफलताओं के समाचार उनके कानों तक आते रहे और अन्ततः वे शिवाजी से प्रेरणा प्राप्त करने के हेतु उनसे जा मिले। वे कुछ समय तक शिवाजी के साथ पूना में ही रहे।[८५] यहीं पर उनको राजनीतिक संबंधी कूटनीति, युद्धकौशल, आदि की जानकारी मिली और उसका उपयोग इन्होंने बाद में बुंदेलखंड में किया। शिवाजी ने छत्रसाल को बुंदेलखंड में मुगलों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम शुरू करने की सलाह दी। इस प्रकार दक्षिण में स्वतंत्रता की प्रज्वलित मशाल से एक चिनगारी बुंदेलखंड लायी गई और उससे नर्मदा के उत्तर में विद्रोह की वह अग्नि धधक उठी जो औरंगजेब के साथ ही उसके सारे उत्तराधिकारियों के लिए एक दुरूह समस्या बनी।[८६] प्रारम्भ में उनके पास न साधन थे और न सहयोगी थे। लेकिन उसी समय औरंगजेब के हिन्दू विरोधी कई आदेश निकल चुके थे। इसी के अनुसार ग्वालियर में फिदाईखाँ ने ओरछा के प्रसिद्ध मंदिरों को गिराने के उद्देश्य से १८०० घुड़सवारों की एक सेना एकत्र की। बुंदेलों ने इस सेना को पराजित किया।[८७] अब छत्रसाल के लिए बुंदेलखंड में आकर उन्होंने ५ घुड़सवार और २५ पैदल सैनिकों की टुकड़ी बनायी। क्रमशः उनके साथी बढ़ते गये, क्योंकि फिदाईखाँ के ओरछे पर आक्रमण और औरंगजेब की मंदिरों को नष्ट करने की नीति ने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर चोट की थी, जिसमें बुंदेलखंड का जनसाधारण अब छत्रसाल को हिंदू-धर्म का रक्षक और स्वतंत्रता का पोषक समझने लगा था। उनके पिता के पुराने साथी भी अब उनसे

---

८२ Richard Burn, The Cambridge History of India V IV, p 313

८३. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ३२

८४. वही, पृ० ३४

८५. पन्ना पत्र संग्रह, पृ० ५७

८६. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ३७

८७. लाल कवि कृत छत्रप्रकाश पृ० ८२, ८३

था मिले।[88] छत्रसाल के निरन्तर आक्रमणों से धामोनी के निकटवर्ती प्रदेश में मुगलसत्ता लगभग उठ सी गई और वहाँ अराजकता और अव्यवस्था फैल गई। अपनी प्रारम्भिक सफलताओं से उत्साहित होकर उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत कर दिया। १६७४ ई० से १६७६ ई० तक छत्रसाल के प्रभावक्षेत्र का विस्तार हुआ। १६७५ ई० में लगभग छत्रसाल ने पन्ना पर आक्रमण किया और वहाँ के गोंड राजा को हराकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।[89] छत्रसाल की इन सफलताओं से दूर दूर तक ख्याति फैल गई। बुंदेलखंड में तथा अन्य भारतवर्ष में उनकी वीरता प्रसिद्ध हो गई।[90] सम्भवतः इस ख्याति ने ही स्वामी प्राणनाथ को बुंदेलखंड की ओर आने को प्रेरित किया हो यह सम्भावित है। दूरदर्शी छत्रसाल ने अपनी शक्ति को पुनः संगठित करने के उद्देश्य से १६७६ ई० में [illegible] शर्तों के लिये औरंगजेब से क्षमा याचना की।[91] लेकिन यह स्थिति अल्पसमय तक ही रही। पुनः छत्रसाल ने विद्रोही प्रवृत्ति शुरू कर दी और वह कई युद्धों में विजय पाते रहे। अपनी लगातार असफलताओं से औरंगजेब क्षुब्ध और क्रोधित हो उठा। छत्रसाल को दबाने के लिए मुगल सेनापतियों की सम्मिलित शक्ति का आयोजन किया गया। इस समय भी छत्रसाल ने सम्राट से क्षमा मांगने में ही अपनी कुशल समझी। लेकिन बाद में तुरंत ही उन्होंने मालवा के पास लूटपाट शुरू कर दी। शाहीपुर के युद्ध में उसकी पराजय हुई और वह अगस्त १६८६ में मुगलसेना में सम्मिलित हो गया।[92] किन्तु कुछ ही समय बाद उन्होंने फिर बुंदेलखंड में लौटते ही मुगलों से शत्रुता ठान ली। जनवरी १६८४ से लेकर अप्रैल १६९९ तक औरंगजेब का सारा ध्यान दक्षिण में गोलकुंडा तथा बीजापुर के राज्यों तथा मराठों की सत्ता का अन्त करने में लगा रहा और इस समय का फायदा उठाकर छत्रसाल ने राठ पनवाड़ी आदि छोटे-छोटे कस्बों और जागीरों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[93] औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के शासन-काल में छत्रसाल की यही प्रवृत्ति जारी रही। मराठों की भांति छत्रसाल भी अपने राज्य की शासन की समस्याओं पर विशेष ध्यान नहीं दे सके, क्योंकि उनको

८८. वही, पृ० ६४

८९. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ४३

९०. गोरेलाल तिवारी, बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८३

९१. पन्ना पत्र संग्रह, पत्र १०१

९२. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ५४

निरतर युद्धों मे ही लगे रहना पडता था।[९४] लोग इन युद्धो मे त्रस्त थे। छत्रमाल की रणनीति मुगलो मे खुले मैदान मे युद्ध करने की न थी। इतना स्पष्ट है कि उनकी प्रतिभा शिवाजी की तुलना नही कर सकती। अपनी प्रजा की भलाई के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे।[९५] उनका धार्मिक दृष्टिकोण बहुत ही उदार था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल हिन्दू प्रजा के दमन की करुण कहानी है। इस्लाम धर्म के नाम पर हिन्दू प्रजा और हिन्दू-धर्म का विनाश देशव्यापी था। विशेषत औरगजेब की मुस्लिमेतर प्रजा के प्रति जो क्रूर और धर्मांध नीति थी उनसे प्रजा त्रस्त थी।[९६] औरगजेब की महत्वाकाक्षाम्रो और धर्मांधता ने कई निर्दोषों का खून बहाया।[९७] वस्तुत वह अपने जमाने को भी अच्छी तरह समझ न पाया, वह उल्टी चाल चलने वाला आदर्श था और अपनी सारी योग्यता और उत्साह के बावजूद, उसने अपने पूर्वजों के काम को मिटाने की कोशिश की।[९८] सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, [९९] उसके हृदय की उस भावुक उदारता, परास्त शत्रुओं के प्रति उस शूरोचित विशालहृदयता और निजी जीवन मे उस सहज आत्मीयता की कमी थी, जिसने महान अकबर को अपने समकालीनों और आगामी पीढियो के प्रेम, और प्रशंसा का पात्र बना दिया। अंग्रेज प्यूरिटनों की भांति औरंगजेब निर्दय दण्ड और प्रतिहिंसा के पुराने सिद्धान्तो से प्रेरणा ग्रहण करता था और वह भूल गया था कि दया भी ब्रह्माड के सर्व शक्तिमान न्यायाधीश का एक विशिष्ट गुण है। ऐसे अशांत और अत्याचारपूर्ण वातावरण मे मुस्लिमेतर

---

९४ वही, पृ० १३०

९५ सं० वियोगी हरि, छत्रमाल ग्रन्थावली, पृ० ८१। अपने इन्ही विचारो को छत्रसाल ने इस प्रकार व्यक्त किया है—
छत्रसाल जन पालिवो, अरहि घालिवो दोय।
नहि बिसारियौ, धारियौ, धराधरन कोउ होय ॥
बालक लौ पालहि प्रजा, प्रजापाल छतसाल।
ज्यौं सिसु हित अनहित सुहित, करत पिता प्रतिपाल ॥

९६. Richard Burn. The Combridge History of India, V. IV, p. 334

९७. Baijnath Puri, Indian History—A Review. p 84 .. ... and lastly Aurangzeb, the most shrewd, ambitious and bigoted ruler who shed more innocent blood than any one else.

९८. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त), पृ० २२९

९९. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनुदित), पृ० २३

भारतीय प्रजा को जीवित रहने की शक्ति सन्तों और सन्तों की समभाव, प्रेम और समन्वयवाद युक्त वाणियों ने दी है।

(ख) *सांस्कृतिक पृष्ठभूमि*

डा० राधाकृष्णन् ने ठीक ही कहा है कि किसी भी जीवित समाज में निरन्तर बने रहने की शक्ति और परिवर्तन की शक्ति, दोनों ही होनी चाहिए। किसी असभ्य समाज में एक पीढ़ी से लेकर दूसरी पीढ़ी तक शायद ही कोई प्रगति होती हो। परिवर्तन को बहुत सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है और सारी मानवीय ऊर्जा, स्थिति को यथापूर्व बनाए रखने पर केन्द्रित रहती है। पर किसी सभ्य समाज में प्रगति और परिवर्तन ही उसकी गतिविधि को ज्ञात होते हैं। समाज के लिये अन्य कोई वस्तु इतनी हानिकारक नहीं है जितनी कि घिसीपिटी विधियों से और पुरानी पड़ गई आदतों से चिपटे रहना, जो कि केवल जड़ता के कारण बची चली आती है।[१००] भारतीय सांस्कृतिक धारा भी कई परिवर्तनों और प्रतिक्रियाओं को साथ में लेकर बह रही है। अनेक विदेशी जातियों ने इस देश पर आक्रमण किये, पर इनके आक्रमणों और शासन ने यहाँ की मूल सांस्कृतिक धारा को नष्ट नहीं किया। इसीलिये डा० राधाकृष्णन् ने कहा है कि, किस विचित्र सामाजिक कीमियागिरी से भारत ने अपने विजेताओं को वश में किया और उनको रूपान्तरित करके अपना ही बना लिया? इतने सामाजिक देशान्तरों गमनों (प्रवसनों) में, उथलपुथलों और राजनीतिक परिवर्तनों में, जिन्होंने अन्यत्र समाज का रूप ही बदल डाला है, वह कैसे लगभग ज्यों की त्यों बनी रही? इसका क्या कारण है कि उसके विजेता अपनी भाषा, अपने विचार और प्रथाएं उस पर लाद पाने में सफल नहीं हुये; यदि थोड़ी बहुत सफलता मिली भी, तो बिल्कुल छिछली और ऊपरी ढंग की?[१०१] फिर भी, इतना स्पष्ट है कि, ईसा की १२वीं शताब्दी तक भारतीय संस्कृति की पाचन-क्रिया बहुत ही अच्छी थी।[१०२] मुस्लिम आक्रमणों ने इस शक्ति को मन्द कर दिया। मुस्लिम संस्कृति के साथ चिरकाल तक सम्पर्क में रहने के कारण इस देश के निवासियों के सामाजिक जीवन—कला, शिक्षा, रहन-सहन, आदि—तथा धार्मिक जीवन व विचारों पर उसका प्रभाव पड़ा, जो स्वाभाविक ही था।

सामाजिक जीवन

चीनी यात्री फाह्यान चन्द्रगुप्त के शासनकाल में भारत में आया था और उसने तत्कालीन *समाज का चित्र देते हुये भारतीय जनता के सुखमय जीवन का*

---

१००. डा० राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, पृ० १३१

१०१ वही, पृ० ११६

१०२ *शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० ३६७*

वर्णन किया है।[१०३] वैसा सुखानुभव भारत ने पुन हर्ष के शासनकाल में किया। अकबर के शासनकाल से पहले इस समाज ने अत्याचार और धर्मांधता को सहन किया। अकबर ने ही इनको फिर से मानो कि शान्ति और एकता के दर्शन करवाये।[१०४] लेकिन उससे पहले हिन्दू लोग ऐसे संसार में जी रहे थे जिसमें विषाद सर्वव्यापी था। सारा वातावरण सन्देह, अनिश्चितता और भविष्य के अत्यधिक भय से भरा है।[१०५] मुस्लिमों के आगमन के साथ ही भारतीय संस्कृति ने नया मोड़ लिया।[१०६] प्राचीन सभ्यता के कई अन्यतम नमूने मुसलमानों के प्राथमिक आक्रमणों के युग में ही समाप्त हो गये थे। ई० सन् की सातवीं शताब्दी से अरब सौदागरों के साथ प्रवेश करने वाले इस्लाम का तत्कालीन भारत के हिन्दू राजाओं ने स्वागत किया था।[१०७] इसीलिये टाउन्सेन्ड ने कहा है कि यहाँ पर इस्लाम जबरदस्ती के कारण नहीं फैला।[१०८] उनके इस विधान को अंशतः सत्य मान लें। लेकिन, समस्त मानव-समुदाय को मुस्लिम बनाना और किसी भी अन्य धर्म-मत का नाश करना मुस्लिमशासन का आदर्श रहा। राजकीय व सामाजिक आपत्तियाँ काफिर पर थोपी जाती थी और उसको मुसलमान बनाने के लिये रिश्वत का उपयोग किया जाता था। इस्लाम न मानने वालों की संख्या का बढ़ना शासन के लिये भय रूप था, इसीलिये शासन नीति रही कि बिन मुस्लिम प्रजा अन्दर ही अन्दर अपनी गरदन काटे। चाहे किसी भी पक्ष की कतल होती हो, पर इस्लाम को फायदा ही था। काफिरों की संख्या कम हो इसलिये अकबर ने ऐसे लोगों को लड़ने दिया था। इस तरह बिनमुस्लिम नागरिक जीवन जी नहीं सकता था, उसका जीवन दलित-वर्ग का-सा जीवन था। मुसलमान शासक ने उसके जीवन व माल्मिलिकयत का नाश नहीं किया, इसलिये उसे कई राजनीतिक व सामाजिक मुसीबतें सहनी पड़ी और जजिया कर देना पड़ा। हिन्दुओं को जीने भर का अधिकार था क्योंकि उनके मर जाने से राज्यकोश में कर की कमी हो जाने का भय था।[१०९]

---

१०३. V. A. Smith, Oxford History of India, p 154

१०४. Will Durant, Our oriental Heritage, p. 454

१०५. Dr. S. Radhakrishan, Religion and Society, p. 2,

१०६. P. Thomas, The Story of the Cultural Empire of India, p. 201

१०७ (अ) Logan Malbar, Vol 1, p. 245

(ब) प० सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, पृ० ५७

१०८. M. Townsend, Asia and Europe (1911), p. 44

१०९. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दीकाव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ६८

राजनैनिक दशा के समान हिन्दुओ की सामाजिक दशा भी शोचनीय थी। ये भिन्न-भिन्न जातियो और उपजातियो मे विभक्त थे। वे मिलकर काम नही कर सकते थे।[११०] सामान्य प्रजा को इस्लाम के स्पष्ट और सरल सिद्धांत हितकर लगे और उन्होने इस्लाम को स्वीकार किया। विशेषतया भारतीय वर्ण व्यवस्था के कारण, नीची समझी जाने वाली जाति के अन्याय का अनुभव करने वाले वे लोग थे। संभव है, ऐसे लोगो के इस्लाम-स्वागत पर से ही अर्नोल्ड ने कहा है कि यहाँ के लोगो ने इस्लाम को स्वेच्छा से अपनाया।[१११] श्री सत्यकेतु विद्यालकार ने बताया है कि[११२] इस्लाम का उद्देश्य यह था कि वह सम्पूर्ण विश्व को आत्मसात कर ले। उसकी दृष्टि मे सब मनुष्य एक बराबर थे, बशर्ते कि वे इस्लाम को स्वीकार करलें। मुसलमान बन जाने के बाद ऊँच-नीच, छूत-अछूत और स्वामी दास का भेदभाव नही रह जाता था। भारत के जाति भेद-प्रधान हिन्दू धर्म के मुकाबले मे इस्लाम की यह बात बडे महत्व की थी। इस देश के शूद्रो व अन्य नीच समझे जाने वाले लोगो के लिए अपनी स्थिति को ऊँचा बनाने का यह सुवर्ण अवसर था। हिन्दू धर्म का परित्याग कर इस्लाम को स्वीकार कर लेने मात्र से वे शुद्र या अछूत की हीन स्थिति से ऊँचा उठकर शासन श्रेणी मे सम्मिलित हो सकते थे। शुद्रो की दशा बडी दयनीय थी।[११३] यदि उच्च जातियो का शुद्र और अछूतों के प्रति भेदभाव का व्यवहार था तो दूसरी ओर छोटी जातियो मे कई उपजातियाँ थीं जिनका आपस मे भी भेदभाव का सम्बन्ध था। विविध हिन्दू जातियो मे अपने कुलीन होने का विचार भी मुगलकालीन समाज मे भली-भाँति विकसित हो गया था, और कुलीन समझी जाने वाली जातियाँ अन्य लोगों को अपने से हीन समझने लगी थी।[११४] अकबर के काल तक जातियाँ-उपजातियों की संख्या अत्यधिक बढ गई थी। अकबर के शासनकाल दर्म्यान कायस्थ, चौहान, चन्देल, गहडवाल, सौमती, गहलोत, अहिर, लोध, कुर्मी, धाघरी, मेहतर, भील, कोल, खासिया, रबारी आदि ब्राह्मणेत्तर जातियाँ पैदा हो गई थी।[११५] हिन्दुओ मे व्यवसाय और स्थान के आधार पर जो जातियाँ रूढिगत

---

११०. ईश्वरी प्रसाद, भारत वर्ष का इतिहास, पृ० १६३

१११. T. W Arnold, The Preaching of Islam (1913), p. 255 'By far the majority of them, entered the pale of Islam of their own free will'

११२ सत्यकेतु विद्यालकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ४६०

११३ R. V. Russel, Tribes and Castes of the Central Provinces, Vol. I. P 72

११४ सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५२

११५. G. S. Ghurye, Castes and class in India, p 110

बन गई थी, उन्होंने अपना-अपना एक ऐसा संगठित रूप धारण कर लिया था कि उसमें किसी व्यक्ति का बहिष्कृत कर दिया जाना कठिनतम दंड था। हिन्दुओं की तरह मुसलमानों में भी आपस-आपस में भेदभाव था ही। सुन्नी और शिया में पारस्परिक भेद थे। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही में विकृतियों ने घर कर लिया था। कबीर ने इसके बारे में कहा है—"इन दोउन राह न पाई।"

मुगलकालीन सामाजिक जीवन सामन्त पद्धति पर आश्रित था, जिसमें बादशाह का स्थान मूर्धन्य था। उसके बाद अमीर-उमराओं का स्थान था, जो बड़े आराम के साथ जीवन व्यतीत करते थे। न केवल बादशाह के, अपितु अमीर उमराओं के भी बड़े-बड़े हरम (अन्तःपुर) होते थे, जिन में सैकड़ों हजारों स्त्रियाँ निवास करती थी। अबुलफजल ने आईने अकबरी में लिखा है कि अकबर के समय में राजधानी में इतनी वेश्याएँ (५००० स्त्रियां)[११६] थी कि उनकी गणना नहीं की जा सकती थी।[११७] औरंगजेब ही एक ऐसा शासक था जिसने मद्यपान और वेश्यावृति को दूर हटाने का प्रयत्न किया था, अलबत्ता उसे सफलता न मिली। औरंगजेब की धर्मचुस्तनीति के आन्दोलन में मद्यनिषेध और वेश्यावृति पर प्रतिबन्ध का समावेश हुआ। इन दोनों के लिए उसकी ओर से किये गये अथक प्रयत्न नितान्त असफल रहे। न सपूर्ण मद्यनिषेध वह लागू कर सका और न वेश्यावृति को बहिष्कृत कर सका या उनको विवाहित करा के समाज में स्थान दिला सका। औरंगजेब की चुस्त रीति-नीति भी ससार के सबसे पुराने व्यवसाय वेश्यावृति को काबू में न ला सकी। क्योंकि इनकी कानूनी पाबन्दी होने पर भी सूरत में कई वेश्याओं का होना बताया गया है।

अमीरउमरा और सर्वसाधारण जनता के बीच की एक मध्य श्रेणी का विकास भी इस युग में हो गया था। सर्व साधारण जनता की दशा अत्यन्त हीन थी। ये लोग अपनी प्राथमिक आवश्यकताए भी कठिनता से प्राप्त कर पाते थे।[११८] शाहजहाँकालीन स्थिति का वर्णन करते हुए मोरलैण्ड ने बड़ा ही करुण चित्र दिया है। दूसरों को वस्त्र पहनाने के लिए सख्त परिश्रम करने वाले जुलाहे स्वय वस्त्रहीन रहते थे। ग्रामों और शहरों की क्षुधा मिटाने के लिए कड़ी मेहनत करने वाले किसान स्वय क्षुधार्त रहते थे। अपने आपको गुलामों के व्यापारियों को सुपुर्द करने के

११६. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५०
११७ अबुल फजल, आईने अकबरी (ब्लॉकमेन द्वारा अनूदित), पृ० १६२
११८ सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५१

अतिरिक्त मनुष्यभक्षण, आत्महत्या या क्षुधा से पीड़ित होकर मर जाने का उपाय ही उनके लिए बचा था।[११६]

ही साथ साथ प्रो० सरकार ने बताया है कि[१२०] किसानों और साधारण जनता को खेती में प्रोत्साहन मिले वैसा प्रयत्न मुगल काल में किया जाता था और बलवान निर्बलों के प्रति अत्याचार न करें इसलिये सावधानी रक्खी जाती थी। किसान भूखा न मरता था और कई सालों का महसूल लेना बाकी हो तो सरल हप्तों में लिया जाता था।[१२१] जब कभी सम्राट की सेना गांवों में से होकर गुजरती और किसानों को उसमें नुकसान होता तो उन किसानों से कर कम लिया जाता था अथवा नुकसान की मात्रा के मुताबिक पैसे दिये जाते थे।[१२२] सूबेदार की जबरदस्ती पर बादशाह से फरियाद की जा सकती थी और उस फरियाद के आधार पर अधिकारी को सत्ता पर से हटा दिया गया हो ऐसे कई उदाहरण शाहजहां और औरंगजेब के समय में मिलते हैं।[१२३]

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने ठीक ही बताया है[१२४] कि सर्व साधारण जनता को राजकर्मचारी से डरकर के जीना पड़ता था। मजदूर और नौकर लोग उन से स्वेच्छापूर्वक वेतन व मजदूरी तय नहीं कर सकते थे। छोटे दूकानदारों को भी अमीर उमराओं और मनसबदारों का भय सदा बना रहता था। शक्ति सम्पन्न राजकर्मचारी बाजार भाव से कम कीमत पर उनसे माल खरीदते थे, और कीमत की प्राप्ति के लिये वे उनकी कृपा पर ही निर्भर रहते थे। वे जानबूझ कर गरीबी का जीवन बिताते थे, क्योंकि वे सदा राज कर्मचारियों की लूट व शोषण से डरते थे। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि[१२५] कीमतों की कमी के कारण साधारण जनता भी बहुत कम खर्च में अपना निर्वाह कर सकती थी। एक आदमी का प्रतिदिन का खर्च दो आने से अधिक नहीं था। मुगल युग में भी दासता की प्रथा प्रचलित थी, फिर भी कहना उचित होगा कि गुलामों की संख्या इस युग में बहुत

---

११९. W. H. Moreland, From Akbar to Aurangzib, pp. 304-5
१२०. Sir Jadunath Sarkar, Mughal Administration, pp 85-86
१२१. Ibid, p. 88
१२२. Frederick Augustus, The Emperor Akabar etc., (Trans. by A. S Beveridge), pp. 273–77
१२३. Sir Jadunath Sarkar, Mughal Administration, p 108
१२४. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५१-५२
१२५. V. A. Smith, O-ford History of India, p. 391

कम थी। गुलामो का क्रय विक्रय कोई असाधारण बात नही थी, और बड़े नगरों में कोई भी मनुष्य कीमत देकर दास-दासी को खरीद सकता था। गुलामो के प्रति बड़ा निर्दय व्यवहार होता था। वे स्त्रियों और बच्चों को भी गुलाम बना लेते थे। इसलिये समाज में निराशा और भय का वातावरण रहता था। परिणाम स्वरूप, शासक वर्ग और मध्य श्रेणी का जीवन विलासिता की ओर अग्रसर हो रहा था। मुसलमान समाज का नैतिक स्तर बहुत ही नीचा हो गया था। बाल विवाह की प्रथा दूर करने का प्रयत्न अकबर ने किया था। उसने दहेज प्रथा, बहु विवाह और निकट सम्बंधियों के विवाह को रोकने के लिए भी आदेश दिये थे। मुगल युग मे बालविवाह और दहेज प्रथा का विकास हो चुका था। विधवा विवाह को नही अपनाया गया। फिर भी विधवाओं के सती हो जाने की प्रथा निकाल देने का प्रयत्न किया गया था। समाज मे नियन्त्रण-शक्ति का इतना अभाव था कि नैतिक बन्धन ढीले पड़ गये थे। विलासिता और कामान्धता का साम्राज्य बढ़ गया था। फिर हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान समाज अधिक पतित था। १६वी शती के हिन्दू धार्मिक मिलनसार, उदार, प्रसन्नमुख, न्यायप्रिय, आरामप्रिय, कुशल व्यापारी, सत्यनिष्ठ, कृतज्ञ और रूढ़िवादी थे।[१२६]

भले ही मुगलों का साम्राज्य स्थापित होने पर कुछ समय के लिए हिन्दुओं को धर्मांधता के दर्शन कम करने पड़े हों। लेकिन औरंगजेब के समय मे हिन्दुओं को सिर उठाने का साहस नही होता था। वे शानदार घोड़े की सवारी नही कर सकते थे। अच्छे वस्त्र नहीं पहन सकते थे। हिन्दूराजा राज्यारोहण के वक्त टीका न लगा सकता था। हथियार बाधकर घूमना बन्द कर दिया गया। १६६८ में औरंगजेब ने देशभर के तीर्थों पर स्नान के मेले बन्द कर दिए। धीरे-धीरे होली और दीवाली की भी मुमानियत हो गई। यदि कोई इन त्यौहारो को मनाना ही चाहे, तो वह बाजार से बाहर मना सकता था।[१२७]

गुजरात को दृष्टि मे रखते हुए कहा जा सकता है कि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का समय शान्तिपूर्ण था। औरंगजेब के शासन दर्म्यान जैसा देशभर मे हुआ, वैसा गुजरात ने, भी अराजकता, गैर व्यवस्था, लूट, अकाल जैसी यातनाओं का सामना किया। औरंगजेब की-धर्मांधता से गुजरात की जनता भी परेशान थी। इसीलिए श्री कन्हैयालाल मुंशी ने बताया है कि औरंगजेब की नीति एवं मराठाओं की लूटने *अराजकता और कमनसीबी के एक नये काल के प्रारम्भ को* अपनी मुहर

१२६. Max Muller, India—what can it teach us? (1919), p. 57
१२७. Snri Ram Sharma, Mughal Government and Administration pp 185-220

लगा दी।[१२८] गुजरात मे हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध भी अच्छे थे, क्योंकि गुजरात की जनसंख्या के आठ-दस प्रतिशत मुस्लिम थे वे पहले हिन्दू ही थे। अपनी भूमि के सांस्कृतिक व सामाजिक प्रभाव को दूर हटाकर वे अलग न हो सके।[१२६] गुजरात के सामाजिक जीवन में संकुचितता के और सुख के दर्शन होते हैं, इसका कारण देते हुए श्री कन्हैयालाल मुंशी ने कहा है कि, १६वीं-१७वीं शताब्दी में गुजरात ने अपना खोया हुआ वैभव पुनः प्राप्त किया। मुगलशासन प्रदेश के कारण उसने एक निश्चित अस्तित्व बना लिया और वह पुनः समृद्ध हुआ। राजनीतिक प्रभाव को सीमितक्षेत्रों तक मर्यादित रखने में प्रजा सफल हुई। संकुचित परम्परा के अन्तर्गत सुख और संतोष प्राप्ति के लिये उन्होंने सामाजिक अवरोधों को और भी चुस्त बना दिया। ....इस समय दर्म्यान ज्ञातियों के संकुचित विकास की ओर मनुष्य आकर्षित होते जा रहे थे। सामाजिक बन्धन अधिक जड़ हुए, समुदाय के लिये व्यक्ति को मिटाना पड़ा, अस्पृश्यता ने प्रवेश किया।.... समाज विभक्त होने पर भी आत्मनिर्भर बना, पारस्परिक आधार और सेवा के भाव का अपने स्तर पर व्यापक और गहराई तक प्रसार हुआ। सामाजिकतत्व ने अपनी स्वतन्त्रता गंवा दी थी लेकिन उस ने प्रतिकारात्मक शक्ति प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार अपनी जाहिर पराजय के समय में भी संस्कृति विजयी हुई।[१३०] फलस्वरूप, गुजरात ने भी अत्याचारों को सहन किया था। जजियाकर-लागत-महसूल आदि के देशभर में सब से अधिक धन गुजरात ने दिया था। जो करीब ६०,३८,४६,१३५ दाम था।[१३१] १७वीं शताब्दी में बारबार कोली और राजपूतों के कारण अशान्ति और भय का वातावरण फैल जाता था। फिर भी, तत्कालीन भारत मे गुजरात अधिक समृद्ध प्रदेश था। जब औरंगजेब ने तीर्थयात्राकर लेना शुरु किया तब गुजरात के धनिकों ने मन्दिर खुले रखवाने के लिए धन देने की तैयारी बतायी थी।[१३२]

राजपूतों के साथ जो दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार बाबर ने शुरू किया था बाद में विशेषत औरंगजेब के सिवा सभी बादशाह ने जारी रखा था, अतः राजस्थान

---

१२८. Dr K. M .Munshi, Gujarat and its Literature, p 258
१२६. Ibid, p 261
१३०. Ibid, pp 224–225–228
१३१. गो० हा० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० २४६
१३२. Shri Ram Shrma, Mughal Government & Administration, p 65
'European travellers speak of rich Hindus of Gujarat agreeing to pay one lakh of rupees a year for permission to keep their temples open under Aurangzeb'

मे सामाजिक जीवन इतना अशान्तिपूर्ण न रहा। अकबर ने अपने पितामह की नीति को राजपूतो के साथ विवाह आदि रीति से सुदृढ किया। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में भी राजस्थान मे जीवन अशान्तिपूर्ण नही था। इस शान्त वातावरण का मौका मिलने पर हिन्दु-राजाओ ने श्रेष्ठ राजनीति से धीमे-धीमे अपने राज्य को पुष्ट कर दिया।[133] जहाँगीर और शाहजहाँ दोनो ही मारवाड राज्य की पुत्रियो की सतान थे, इसलिये राजपूत राजा और प्रजा मे उनके प्रति आदर था और भय का वातावरण विलीन हो गया था। जिस दिन शाहजहाँ मसनारूढ हुआ उस दिन को उदयपुर मे आनन्द-उत्सव के साथ मनाया गया। किसी भी मुस्लिम बादशाह के राज्याभिषेक के प्रसंग पर हिन्दुओ ने वैसा आनन्दोत्सव नही मनाया था।[134] लेकिन औरगजेब ने सत्ता पर आते ही राजपूतो को दुश्मन बना लिया। उसके अत्याचारो से तग आकर मेवाड के राजा राजसिंह ने औरगजेब को जो पत्र लिखा था उस पर से समाज-जीवन का चित्र उपस्थित होता है। पत्र मे लिखा था, "आपकी प्रजा अत्याचार से अत्यन्त पीडित है, लोग दुर्बल हो गये है। चारो ओर से प्रदेश निर्जन हो जाने के तथा कई सकटो के समाचार मिलते है। राजमहलो मे मूर्तिमन्त दारिद्रय दिखाई पडता है। बादशाहो और राजाओ की जब ऐसी हालत है तो सामान्य लोगो की दुर्दशा की बात ही क्या ?... थारो और व्यापारी रो रहे है, मुसलमान अव्यवस्थित हो रहे है, हिन्दुओ पर आपत्ति है। प्रजा का दुःख इतना बढ गया है कि शाम को भोजन भी नही मिलता और दिन भर परेशानी मे अपना सर पिटते है।[135] राणा राजसिंह के समय मे मेवाडभूमि भयकर अकाल और महँगाई से पीडित थी।[136] भारत को अन्य भागो की तुलना मे मेवाड मे दुर्भिक्ष और महँगाई का प्रमाण सविशेष था। टॉड ने बताया है कि न खाने योग्य चीजे लोग दुर्भिक्ष के कारण खाने लगे पति अपनी पत्नी को तथा पत्नी अपने पति-सतानो को छोड-छोडकर भागने लगे थे, माँ बाप अपनी सतानो को बेच देते थे। लोग क्षुधा-तृषा से पीडित थे। जातिभेद टूट गये, बल पराक्रम-ज्ञान का लय हुआ। लोग कन्दमूल वृक्ष के पत्ते खाने लगे। कई कुटुम्बो का नाश हुआ।[137] प्रजा मे चारित्र्य उच्च कक्षा का था। लोग परम्परावादी और अधश्रद्धालु थे। स्त्रियो का स्थान सम्माननीय था। सम्पूर्ण

१३३. कर्नल टॉडकृत राजस्थान का इतिहास, ग्रन्थ पहला (गु० सं०), पृ० १९८
१३४. वही, पृ० १९५
१३५. वही, पृ० २१८
१३६ वही, पृ० २३०
१३७. वही, पृ० २३०-२३१

मुस्लिमशासन दरम्यान राजपूत नारियों का सच्चरित्र पूर्ववत् अटल रहा था।[१३८] बहुपत्नी वाद और परदा प्रथा थी। सतीप्रथा जैसी दूसरी प्रथा शिशुकन्यावध की थी। जैसे स्त्रियाँ अपने स्वामी की गौरव के लिए प्रज्वलित चिताग्नि में अपना शरीर समर्पित कर देती थी, वैसे अपने गर्भ से उत्पन्न कन्या का भी, अपने पति के गौरव की रक्षार्थ इस दुनिया में उसके जन्म के बाद तुरन्त ही उसका वध किया जाता था।[१३९]

बुन्देलखण्ड का प्रजाजीवन भी युद्ध और लूट से परेशान था। मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु बुन्देलखण्ड में इसका अधिक जोर न रहा। ब्राह्मणों ने हिन्दू समाज को मुसलमानों के संसर्ग से बचाने के लिए बड़े-बड़े नियम बनाये।[१४०] जहाँगीर ने गद्दी पर बैठने के बाद वीरसिंहदेव को जब बुन्देलखण्ड का सारा राज्य दे दिया तब लोगों ने शान्ति का अनुभव किया था।[१४१] शाहजहाँ के समय में बुन्देलखण्ड में एक बड़ा अकाल पड़ा और लोगों को अन्न का कष्ट होने लगा।[१४२] औरंगजेब के समय में अशान्ति और अत्याचार के सिवा कुछ नहीं था। औरंगजेब के स्वभाव से कई मुसलमान सरदार नाराज थे। और औरंगजेब हिन्दुओं को कष्ट देता था, इससे हिन्दू लोग भी नाराज हो गये थे।[१४३] बहुपत्नीवाद का उदाहरण राजा छत्रसाल ही को लें। उनके कई विवाह हुए थे और उनकी १७ रानियाँ थीं।[१४४]

मुस्लिम संसर्ग से बुन्देलखण्ड में भी परदा की प्रथा बढ़ रही थी, परन्तु महाराज छत्रसाल ने इसे रोकने का प्रयत्न किया और स्त्रियों को बिना परदे निकलने का हुक्म दिया और स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार करने वालों के प्रति कठिन दण्ड की व्यवस्था की गई।[१४५]

भारत की वेशभूषा, रहनसहन और खानपान पर भी मुगलयुग का बहुत स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस्लाम और हिन्दूधर्म के सम्पर्क के कारण मुगलयुग में एक ऐसी संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ, जो विशुद्ध रूप से न हिन्दू थी, और न मुसलमान।

---

१३८ वही, पृ० ३७६
१३९. वही, पृ० ५००
१४० गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ८७
१४१. वही, पृ० १३७
१४२ वही, पृ० १४३–१४४
१४३. वही, पृ० २०५
१४४ वही, पृ० २१६
१४५. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२३

भारत की यह नयी संस्कृति हिन्दू और मुसलमान दोनों संस्कृतियों के तत्वों के सान्निध्य व सामंजस्य का परिणाम थी। वास्तुकला, धर्म, भाषा, चिकित्सा, संगीत, वेशभूषा, खानपान आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दुओं और मुसलमानों का यह सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।[१४६] मुगलों के कलाप्रेम का एक कारण यह भी था कि तैमूर के वंशजों ने ईरान और तुर्किस्तान में कला की अच्छी उन्नति की थी। तैमूर वंश का नाम कला के जागरण से सम्बद्ध माना जाता है। बाबर इसी वंश की सन्तान था। अतएव, उसके वंशजों में कला का प्रेम जागा, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।[१४७] मुगलकालीन चित्रकला की समीक्षा करते हुये पर्सी ब्राउन ने लिखा है, भारत में मुगलयुग की चित्रकला मुगलशासन के समय के साथ चली। १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अन्त में अकबर का आश्रय पाकर शाही कलाप्रेमी जहांगीर के शासन-काल में वह सम्पूर्ण रूप से विकसित हुई। उसके अनुगामी शाहजहां के समय में उसके पतन के प्रारम्भिक चिन्ह दीखने लगे और औरंगजेब के असहिष्णुतापूर्ण शासन में उसके मृत्युपट की ध्वनि चारों ओर फैली गयी। चित्रशैली की दृष्टि से इसकी आयु अल्प होने पर भी, ढाई शताब्दी तक फैली हुई थी और भारतीय कला के इतिहास में एक चित्रशैली के रूप में ही नहीं लेकिन एक प्रभावपूर्ण घटना के रूप में उसका उचित उल्लेख हुआ है।[१४८] अकबर कालीन १७ प्रसिद्ध कलाकारों में से १३ हिन्दू थे जिनके बारे में अबुलफजल ने कहा है कि संसार में मुश्किल से ही कोई इनकी समकक्षता कर सकता है।[१४९] जहांगीर के उदार प्रोत्साहन से जहांगीर-कालीन भारतीय चित्रकला विश्व की सबसे विशेष उन्नत चित्रकला थी। शाहजहां के समय में चित्रकला की मुगलशैली का ह्रास शुरू हो गया था क्योंकि उन्हें वास्तु-कला, भवन निर्माण और मणिमाणिक्य से अधिक प्रेम था। ताजमहल मुगलयुग की वास्तुकला की सर्वोत्कृष्ट कृति है, जिसकी बाहरी सजधज हिन्दू कारीगरों द्वारा की गई थी।[१५०] मुस्लिम मूर्तिपूजा के विरोधी थे अतः मूर्तिकला का विकास असम्भव था। फिर सहिष्णु बादशाहों के काल में तथा जिस प्रदेश में मुस्लिमशासन नहीं था, हिन्दुओं के अनेक मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण मुगलयुग में हो सका। महाराणा कुम्भा का कुम्भस्वामी विष्णु का मन्दिर, महाराज मानसिंह का गोविन्द देव का मन्दिर, महाराज वीरसिंहदेव का ओरछा में चतुर्भुज मन्दिर आदि इसके ज्वलंत

---

१४६. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५८०

१४७ रामधारीसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४१३

१४८. Percy Brown, Mughal Painting, p. 86

१४९ सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५७६

१५०. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 56.

उदाहरण हैं।[१४१] शाहजहाँ की मृत्यु के बाद जैसे वास्तुकला और चित्रकला का ह्रास हो गया वैसे संगीत का भी हुआ। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में संगीत कला ने उन्नति की थी। लेकिन औरंगजेब ललित कलाओं का कट्टर दुश्मन था। डॉ० डी० महाजन बताते हैं कि, मुगलशासक संगीत के आश्रयदाता थे।........ अपने शासनकाल के प्रारम्भिक दस वर्ष तक औरंगजेब को भी संगीत का शौक था। अपने दरबार में कई गायकों को उसने आश्रय दिया था। किन्तु औरंगजेब ज्यों-ज्यों वृद्ध होता गया, वह संगीत का विरोधी होता गया और दरबारी संगीतकारों को उसने निकाल दिया।[१४२]

हिन्दी भाषा ने अपने सम्पूर्ण इतिहास में जो सर्वश्रेष्ठ कवि उत्पन्न किये, वे, सब के सब, मुस्लिम शासन काल में ही जन्मे थे। हिन्दी भाषा संसार के समग्र साहित्य के समक्ष अपनी जिस समृद्धि का दावा करती है, वह सारी की सारी समृद्धि उसने पठानों और मोगलों के समय में ही अर्जित की थी।[१४३] महाराज छत्रसाल के समय में बुन्देलखण्ड में कई प्रसिद्ध कवि हो गये हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को उत्तम कविताओं से विभूषित कर दिया है।[१४४] इसी तरह, मुगल शासन के अन्तर्गत गुजरात में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना हुई तथा उसका असर साहित्य पर भी दिखाई पड़ा।[१४५] श्री कन्हैयालाल मुंशी ने कहा है, १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगलशासित प्रदेश होने की वजह से गुजरात में शान्तिपूर्ण वातावरण स्थापित हुआ। नयी साहित्यिक परम्परा का उद्‌भव हुआ। स्वरूप, अभिव्यक्ति और शिल्प को लेकर रास और आख्यान बने, जिसमें पुराण की कथाओं या सुप्रसिद्ध प्रसंगों को जीवन की यथार्थ पद्धति को माध्यम बनाया गया।[१४६] इसीलिये यह कहना उचित है[१४७] कि मुगलकाल ने महान साहित्य और शिक्षाप्रवृत्तियों के दर्शन किये हैं।

---

१४१ सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५७५

१४२. V D Mahajan, India since 1526, pp 240-41

१४३ रामधारीसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४३०-४३१

१४४ गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२३

१४५. प्रो० कुंजविहारी मेहता,—प्रो० रमण शुक्ल, गुजरातनु संस्कृति-दर्शन, पृ० २५०

१४६. Dr. K M Munshi, Gujarat and its Literature, p. 237

१४७. Shri Ram Sharma, Mughal Government & Administration, p 9 "The Mughal period saw great literary & educational activity"

(ग) भारतीय धर्म-दर्शन

प्राणनाथ के उदय से पहले ही भारत वर्ष में हिन्दू धर्म पर संकट के बादल छा गये थे। इन के युग तक आते आते भारतीय चिन्तन तथा साधना के प्रवाह की अनेक धाराओं का उद्गम हो चुका था और कई धाराएं विकसित हो चुकी थी। यह भी स्पष्ट है कि, मुसलमानों के आगमन के पूर्व ही भारत के कई धार्मिक सम्प्रदाय कई पारस्परिक विरोधों के कारण प्रकट हो चुके थे। इसीलिए सम्भवत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी[१५८] और श्री रामधारी सिंह "दिनकर"[१५९] ने भक्ति आन्दोलन संतमत और संतसाहित्य के संदर्भ मे बताया है कि अगर इस्लाम नही आया होता तो भी इन सभी का रूप वैसा ही होता जैसा आज है। भारतीय पांडित्य ईसा की एक सहस्त्राब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावत. ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों मे भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना–अर्थात इस्लाम का प्रमुख विस्तार–न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले लिए जा रही थी, उसका वक्तव्य विषय कथमपि विदेशी न था। फिर भी इस बात का स्वीकार करना ही होगा कि इस्लाम के कारण हिन्दू धर्म नयी शक्ति, नव-जीवन और मजबूती प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील और जागरूक रहा। अत वेस्ट-कोट का कहना अंशत. ठीक लगता है कि इस्लाम के अनुयायियों की उपस्थिति से जातिभेद, आत्मा का पुनर्जन्म और ईश्वर का अस्तित्व जैसे विषयों पर लोगों को विचार करने की, सोचने-समझने की प्रेरणा मिली।[१६०] प्रतिक्रिया और परिवर्तन दोनों साथ ही चलते है। जो धर्म के संदर्भ मे प्रेट ने कहा है वही सम्प्रदायों को भी लागू होता है कि यदि वे समय के प्रवाह को न समझे तो उसका विकास एवम् स्थिरता–अस्तित्व अधिक दिन तक नही रह सकता।[१६१] जैसे ही भारतीय धर्म ने कई स्वरूप लिये और उन स्वरूपों मे कई परिवर्तन आये। मनुष्य ने परम आत्मा

---

१५८. आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २, १५

१५९. रामधारी सिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३९०

१६०. H. G. Westcott Kabir and Kabir Panth, p. 45
"The Presence of the followers of Islam stimulated thought on such subjects as caste, spiritual birth and the personality of God.'

१६१. Pratt Why Religions Die, ? p. 122

का आविर्भाव नही तो और क्या है।[१६४] बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शक्ति नवी शताब्दी के बाद प्रायः नष्ट हो गयी थी। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के कारण वज्रयान तथा सहजयान के प्रति लोगो के हृदय मे आदर की भावना न रही। बारहवी शताब्दी स्मार्त सम्प्रदाय उत्तर भारत मे पूर्णरूपेण फैल चुका था। लेकिन इतना स्पष्ट है कि तत्कालीन मुख्य-मुख्य धार्मिक सम्प्रदाय–वैष्णव, बौद्ध, जैन, शैव, आदि–एक दूसरे के नजदीक आ गये थे। ऐसा लगता है कि सम्प्रदाय एक ही बात को अपने–अपने ढग से कह रहे है, यहाँ तक कि कट्टर मुसलमान साधक भी कोई नई बात नही कह पा रहे हैं।[१६५] वेद सबसे अधिक महत्व यज्ञ को देते थे। यज्ञो की प्रधानता के कारण समाज मे ब्राह्मणो का स्थान बहुत प्रमुख हो गया था। इन सारी बातो की समाज मे आलोचना चलने लगी और लोगो को यह सदेह होने लगा कि मनुष्य और उसकी मुक्ति के बीच मे ब्राह्मण का आना, सचमुच ही, ठीक नही है। आलोचना की इसी प्रवृत्ति ने बढते–बढते, आखिर को, ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व तक आकर वैदिक धर्म के खिलाफ खुले विद्रोह को जन्म दिया, जिसका सुसगठित रूप जैन और बौद्ध धर्मों मे प्रकट हुआ।[१६६]

जैन धर्म ऋषभदेव (आदिनाथ) को प्रथम तीर्थंकर मानता हैं। जैन धर्म की ईश्वर के सन्दर्भ मे जो मान्यता है उस पर से अनुमान किया जाता है कि अष्टादश दूषण रहित जो हो उनको तीर्थंकर माना जाता है। जिसमे बल, भोग, उपभोग दान और प्रतिग्रह ये पाच अन्तराय; तथा निद्रा, भय, अज्ञान, जुगुप्सा, हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, अविरति, स्मर (काम), शोक और मिथ्यात्व ये अष्टादश दोष न हो उसे जिन देव अथवा गुरु कहा जाता है और वे ही ज्ञान-तत्वज्ञान के उपदेशक व तीर्थंकर।[१६७] श्री शिवदत्त ज्ञानी लिखते है कि वर्धमान महावीर जैन मत का सस्थापक तथा सुधारक था। उसकी कठिन तपस्या के परिणामस्वरूप उसे 'जिन' की पदवी मिली, जिससे उसके अनुयायी जैन कहलाये। किन्तु जैन मत के मानने वालो का मौलिक नाम 'निग्रथ' मालूम होता है, जिसका उल्लेख बौद्ध साहित्य मे आता है।[१६८] वर्धमान महावीर जैनमत का चौबीसवां तीर्थंकर था। जैन लोगों के अनुसार उसके धर्म

---

१६४. प्रो० आनन्द शंकर बापूभाई ध्रुव, हिन्द् वेद धर्म (गुजराती संस्करण), १९१९, पृ० २००

१६५. श्याम सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा मे भक्ति, पृ० १६३

१६६. रामधारी सिंह "दिनकर" सस्कृति के चार अध्याय, पृ० १२०

१६७. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० ५६

१६८. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय, सस्कृति पृ० २१८

का प्रारम्भ बौद्ध काल में महावीर स्वामी द्वारा नहीं हुआ था। वे अपने धर्म को सृष्टि के समान ही अनादि मानते हैं। उनके मतानुसार वर्धमान महावीर जैन धर्म का अन्तिम तीर्थंकर था।[१६९] लेकिन, तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक लोग जैनधर्म का संस्थापक मानते हैं और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर को संशोधक। पार्श्वनाथ, महावीर से दो सौ वर्ष पूर्व हुए थे। महावीर गौतम बुद्ध के समसामयिक थे; परन्तु बुद्ध के निर्वाण के पहले ही उनका अवसान हो गया था।[१७०] वास्तववादी दर्शन और आचारवादी साधनायुक्त जैन धर्म अन्य धर्मों की तरह विकासशील न रहा तथा कई अव्यावहारिक तत्वों के कारण भारत से बाहर न जा सका, लेकिन अपने देश में भी अप्रभाव सा बैठा।[१७१]

जैनधर्म में जो नैतिक तत्त्व और अध्यात्मवाद के सिद्धान्त पर पुरोगामियों का प्रभाव लक्षित होता हो लेकिन उनका ज्ञान का सिद्धान्त मौलिक है। उसमें मति, श्रुति अवधि, मनः पर्याय और पूर्णज्ञान (केवल) जैसे ज्ञान के पाँच प्रकार माने गये हैं। वर्धमान महावीर ने १२ वर्ष की तपस्या के बाद जो अनुभवपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया वही पूर्णज्ञान—केवलज्ञान। अनुभव मूलक उनका अपना प्रत्यक्ष और शिष्यों का सुना-सुनाया होने के कारण "परोक्ष" कहलाया।[१७२] जब सब कुछ परिवर्तनशील है, तब कहा ही नहीं जा सकता कि कोई भी वस्तु कभी भी तादात्म्य प्राप्त कर सकती है। यही जैनमत का अनेकान्तवाद है।[१७३] जीव (भोक्ता), अजीव (भुक्त), पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष जैसे नौ तत्वों को प्राधान्य दिया गया है। इसलिए कहा जाता है कि जैनदर्शन ने कर्म को महत्त्व दिया था। अच्छे-बुरे कर्मों का फल मनुष्य पाता है। समाज्वलन से मुक्ति के लिए मुमुक्षुको सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र्य को महत्त्व देना चाहिये। सम्यक् ज्ञान वास्तविक रूप और अवस्था को प्रस्तुत करता है।

समय का प्रभाव जैन धर्म पर भी पड़ा और जब मूर्तिपूजा ने तन्त्र में प्रवेश पाया तब जैनियों में दो मुख्य सम्प्रदाय निकल पड़े—दिगम्बरी और श्वेताम्बरी। दोनों के ग्रन्थ और मन्दिर अलग-अलग रहते थे। दिगम्बरी साधु नग्न रहा करते हैं और श्वेताम्बरी श्वेत वस्त्र पहनते हैं। आगे चलकर के इस धर्म में देवसेन (सं० ६६०

१६९. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० १४२
१७०. श्री सांवलिया बिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्मदर्शन (१९५३), पृ० १२४
१७१. *Will Durant, Our oriental Heritage (1954)*, pp 419-422
१७२. श्री सांवलियाबिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्मदर्शन, पृ० १२५
१७३ शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० २१६

लगभग) और जैनसाधु-मुनिरामसिंह (लगभग विक्रम की ११ वी शताब्दी) ने सुधार की प्रवृत्ति की थी और तत्कालीन प्रचलित पाखंडादि का घोर खंडन किया था।[१७४] बाद में सं० १५३४ मे अहमदाबाद के लुंपक नामक व्यक्ति ने स्थानकवासी पन्थ चलाया और ढूंढ़िया आदि अनेक पथ पैदा हुए थे।[१७५]

जैन साधना और सिद्धातो ने तत्कालीन समाज को आकर्षित किया था, लेकिन वैष्णव और शैवमत ने जैनमत के अच्छे सिद्धान्तो को ग्रहण करके धक्का पहुँचाया। प्रगतिशील अन्य मतों को राज्याश्रय मिलने पर दक्षिण भारत में तो इस मत का विकास ही रुक गया।[१७६]

फिर भी, जैनधर्म का हिन्दूधर्म पर व्यापक प्रभाव पड़ा। २४ तीर्थंकरो की तरह विष्णुके २४ अवतार मानकर मूर्तिपूजा आदि को नाना पड़ा, सात तीर्थों की तरह सात पुरी की स्थापना करनी पड़ी; अहिंसा परमोधर्म को स्वीकार करना पड़ा और जातिभेद निकालना पड़ा। अत. माना गया है कि हिन्दी के संतकवि जैनकवियो की कृतियों से प्रभावित थे।[१७७]

बौद्ध धर्म अनात्मवादी है और तत्कालीन ब्राह्मणधर्म की कुरीतियो के विरोध मे खड़ा हुआ था। यह धर्म दार्शनिक जंजाल से दूर रहा और उसने यही समझाना चाहा कि, तृष्णा ही दु.ख का कारण है और तृष्णानाश का नाम ही निर्वाण है। भोग और तप इन दो चरम सीमाओ को न मानते हुए इस धर्म ने मध्यम मार्ग अपनाया। मुख्यतः यह आचारप्रधान धर्म है। श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कहते हैं कि, बुद्ध के अनुसार पूर्व जन्मों के कृत कर्मों के कारण इस जीवन का प्रवाह चल रहा है उसे हम अपने प्रयत्नो द्वारा विच्छिन्न कर सकते है जैसे दीपक मे से बत्ती या तेल को हटा लेने से ज्योति की उत्पति रुक जाती है, उसी प्रकार इस जन्म के सस्कारो का नाश भी बुद्ध के बताये हुए प्रयत्नो से ही हो सकता है और निर्वाण की प्राप्ति सभव है और जीवन का ध्येय भी यही है कि दुःखपूर्ण संसार से छुटकारा मिले। सिद्धार्थ को इसी सिद्धात का ज्ञान होने से बुद्धत्व प्राप्त हुआ था कि दु खो का कारण खोजकर उसका नाश कर देने से दु.खो का प्रवाह विच्छिन्न हो सकता है। चूंकि कोई "कार्य" बिना निश्चित कारणो के उत्पन्न नही हो सकता (प्रतीत्य समुत्पाद) अत. "कारणो" की

---

१७४. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परपरा (भूमिका), पृ० ४८
१७५. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास (गु० स०), पृ० ६१
१७६. Dr. Bhaskar Anand, Medieval Jainism (with special reference to the Vijainagar empire), pp. 270–272
१७७. आ० परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय साहित्य की सास्कृतिक रेखाएँ, पृ० ५६

खोज करना ज्ञानी का काम है।[१७८] इसीलिये उन्होंने चार आर्यसत्य प्रस्तुत किये। जैनधर्म की तरह बौद्धों के भी तीन रत्न थे—बुद्ध, संघ और धर्म। संघ के सदस्य हुए *बिना निर्वाणप्राप्ति असम्भव थी। उसमें उपासक* और भिक्षु वैसे दो प्रकार के सदस्य थे और दोनों के लिए भिन्न-भिन्न नियम थे। बौद्ध धर्म में जातिपाति का कोई भेद न होने से समाज में जो वर्ग ब्राह्मण से जितना ही दूर था, वह बौद्ध धर्म की ओर उतने ही वेग से खिंचा।[१७९] प्राचीन वैदिक साहित्य की तीन संहिताओं जैसे त्रिपिटक ग्रन्थ बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्तों के कोष हैं।

सम्प्रदायवादी प्रवृत्तियों ने इस धर्म में भी प्रवेश किया। बुद्ध के उपदेशों का तात्पर्य ग्रहण करते हुए हीनयान और महायान जैसे दो सम्प्रदायों का उदय हुआ। अशोक के पूर्वतक बौद्धमत ही सर्वस्वीकार्य रहा, अशोक के समय और उसके बाद हीनयान और महायान का स्थान बना रहा। हीनयान (स्थविरवादी निकाय) बुद्ध की मानवता पर विश्वास रखता था और महायान बुद्ध को अलौकिक व अमानव रूप देने में तत्पर थे। हीनयान बुद्ध के प्राचीन सिद्धांतों को लेकर स्थिर रहा। इस सम्प्रदाय ने नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों पर जोर दिया और निर्वाणप्राप्ति के लिए आत्मनिग्रह आदि को आवश्यक माना।

भागवत धर्म के प्रभाव से कई नये तत्वों ने महायान सम्प्रदाय में प्रवेश किया। देववाद और बहुदेववाद फैलने लगा तथा बुद्ध भगवान बोधिसत्व के रूप में अवतारी देवता बन चुके थे। विष्णु के अवतारों की कल्पना के साथ हिन्दू मन्दिरों का और मूर्तियों का निर्माण होता था, वैसे बौद्ध देवी देवताओं के लिए स्तूपों का निर्माण किया गया। हिन्दू देवियों में जो स्थान लक्ष्मी-पार्वती का था, वैसा ही स्थान प्रज्ञापारमिताओं में मंजुश्री को दिया गया। इन परिवर्तनों का प्रवेश करना आवश्यक था।[१८०] बोधिसत्व की कल्पना महायान सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता है। बोधिसत्व संसार के समस्त प्राणियों के समग्र दुःखों का नाश कर, उन्हें निर्वाण प्राप्ति करा देना अपने जीवन का उद्देश्य मानता है। संसार का एक-एक प्राणी जब तक मुक्त नहीं हो जाता तब तक वह स्वयं निर्वाणसुख को भोगने के लिए उद्यत नहीं होता। उसके जीवन का ध्येय स्वार्थ-सिद्धि न होकर परोपकार रहता है। वह जगत् के प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही स्वरूप समझता है।[१८१]

---

१७८. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, एम० ए०, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० ५७

१७९. रामधारीसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १४६

१८० Edward J Thomas, History of Buddhist Thought, pp, 178-79

१८१. डा० बलदेव उपाध्याय, धर्म और दर्शन, पृ० ११३-११४

इस प्रकार महायान सम्प्रदाय या यों कहिये कि भारतीय बौद्ध सम्प्रदाय सन ईसवीं के आरंभ में ही लोकमत की प्रधानता स्वीकार करता गया। यहाँ तक की अन्त में जाकर लोकमत में घुल मिल कर लुप्त हो गया।[१८२]

शाक्त प्रभाव में इस धर्म मत में तंत्रसाधना का प्रवेश हुआ और मन्त्रयान वज्रयान और सहजयान प्रकट हुए। मध्यकाल में उत्तरी भारत में बौद्ध तान्त्रिकों का बड़ा प्रभुत्व था। प्राचीन बौद्ध साहित्य में भी तन्त्रमन्त्र का थोड़ा-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है।[१८३] इस साधना में वामपंथी बौद्ध साधना वज्रयान नाम से और दक्षिण पंथी साधना सहजयान नाम से अभिहित हुई। बुद्ध के उपदेश सातवीं शताब्दी के आसपास मंत्रतंत्र के रूप में परिवर्तित हुए और इस क्रिया का प्रतिबिंब ही मंत्रयान, वज्रयान और सहजयान साधना है। वज्रयानी सिद्धान्तों को ग्रहण करने वाले ८४ सिद्धों में से सरहपा, पदमवज्र, लुईपा, मवरपा, अनगवज्र आदि प्रसिद्ध हैं। वज्रयान में सब कुछ पूर्ण शून्य रूप माना जाता है। इनके प्रमुख देवता वज्रसत्व है। सहजयान में शून्यता को प्रज्ञा तथा करुणा को उपाय कहा गया है। प्रज्ञा को स्त्री तथा उपाय को पुरुष माना गया है। दोनों के मिलने से ही ज्ञान प्राप्त होगा यह स्वीकृत हुआ।[१८४] प्रज्ञा और उपाय का मिलन कैवल्यानन्द है। प्रज्ञा और उपाय का योगपरक अर्थ लिया गया। वज्रयोग अर्थात् शुक्र के ऊर्ध्वीकरण को ध्यान और योगसाधना से सिद्धों ने कठिन कार्य को सरलता से अपनाया।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' कहते हैं, चारित्रिक संयम में त्रुटियां तो बुद्ध के समय में ही प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु वे खुलकर कही नहीं जाती थी। प्रज्ञाज्ञान की अवहेलना महायान में आरम्भ हुई और चारित्रिक त्रुटियों को सार्थक सिद्ध करने की चेष्टा वज्रयान ने शुरु की। जब सभी बन्धन टूट गये और रास्ता काफी आसान हो गया, तब लगभग दसवीं सदी में आकर, वज्रयान का एक सम्प्रदाय अपने को सहजयान कहलाने लगा। असल में, सहजयान और वज्रयान के बीच आरम्भ में विशेष भेद नहीं था।[१८५] डा० भारती इसे वज्रयान से अलग शाखा के रूप में नहीं

---

१८२. आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ८

१८३. डा० बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन, पृ० ४२५

१८४. (अ) विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २४७

(ब) Winternitz, A History of India Literature, p. 388

१८५. रामधारी सिंह, 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २३२

स्वीकार करते।[186] सहजयान के अनुसार समस्त सहजानन्द और सहज ही सब का स्वरूप है। किन्तु इस मत ने पिण्ड को ब्रह्माण्ड माना और शरीर को सत्यप्राप्ति का माध्यम माना गया। इसलिये, सरहपाने गाया है—

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थ से गंगासाअरु।
एत्थु पआग बणारसि, एत्थु से चंद दिवाअरु।।
खेत्तु-पीठ उपपीठ, एत्थु मइ भमइ परिट्ठओ।
देहा-सरिसम तित्थ, मइं सुह अण्णु ण दिट्ठओ।।[187]

काया साधना का महत्त्व नाथ व सिद्धों में अधिक है। इस सम्प्रदाय ने सहजावस्था को महासुख की अवस्था माना है। जब सहजावस्था में शून्य और चित्त का सुहाग स्थापित होता है, तभी महासुख की अवस्था उत्पन्न होती है। फिर भी वे द्वैतवादी नहीं थे, पूर्ण अद्वैतवादी थे। वे मिथ्या विधि क्रियाओं के कट्टर विरोधी थे। गुरु महिमा सात्विक मतों की विशेषता है, जो इसमें भी दिखाई देती है। मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान की तरह काल चक्रयान की धारा भी प्रसिद्ध है।

डा० त्रिगुणायत[188] इस बात को स्वीकार करते हैं कि, बौद्ध तांत्रिकों से संतों का सीधा सम्बन्ध था। यही कारण है कि वे लोग उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। उनकी तत्त्व की अनुभवगम्यता, धर्मग्रन्थों की अमान्यता तत्त्व का वाच्यावाच्य पर होना, सहज तत्त्व की स्वतन्त्र धारणा, सहजावस्था की धारणा, शून्यवाद, अनिर्व्यक्ति, चित्तशुद्धता, नादबिन्दुसाधना, कमल व द, खण्डनमण्डन की प्रवृत्ति, साधना में ज्ञान या राग का महत्त्व, कायाशोधन, गुरुवाद एवम् योगसाधना आदि बातों ने संतों को पूरी पूरी प्रदान की थी।

बौद्धधर्म प्रारंभ में अनात्मवादी और आचार प्रधान अवश्य था, लेकिन तांत्रिक उपासना के प्रभाव में आकर वह भी बहुत कुछ वाममार्गी हो गया। वज्रयान, सहजयान और मंत्रयान आदि बौद्ध सम्प्रदायों की मान्यताएं सहज में भक्ति से प्रभावित हैं। भक्तिसाधना के प्रायः सभी तत्त्व उनमें अन्तर्मुक्त दिखाई देते हैं।[189]

---

१८६. डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृ० १४६
१८७. राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा, सरहपा-पद संख्या ४७-४८
१८८. डा० गोविंद त्रिगुणायत, हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २६० २६२
१८९. श्यामसुन्दर शुक्ल, हिंदी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति, पृ० १३२

नाथ–योगी सम्प्रदाय को कोई बौद्धमत का योग क्रिया प्रधान रूप मानते हैं, जो कालान्तर मे शैव सम्प्रदाय से प्रभावित हुआ। कई विद्वान इसे विशुद्ध शैव सम्प्रदाय की कोटि में रखते है, जिस पर बौद्धतान्त्रिको का प्रभाव पड़ा। वास्तव मे नाथयोगी सम्प्रदाय पर शैव और बौद्ध मतों का मिश्रित रूप पाया जाता है। 'विक्रम की सातवीं से नवी शताब्दी के भीतर, बौद्ध और हिन्दू तान्त्रिक, वाममार्ग की उपासना मे एक हो रहे थे। तत्रों की साकेतिक भाषा को न जानने से जनता मे अनर्थ का प्रचार हो रहा था। वाममार्ग की उपासना ऐसे गूढ शब्दों मे बनाई जाती थी कि अधिकारी साधक ही उसके वास्तविक अर्थ को समझ सकता था। फलतः तान्त्रिक सिद्धियों का दुरुपयोग होने लगा। यौगिक क्रियाओ के उद्धार के लिए ही नाथसम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ।"[१६०] इसे सिद्धमत कहने का कारण यही दिया जाता है कि सिद्धो द्वारा निर्णित तत्त्व को सिद्धान्त कहा जाता है और नाथयोगी अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थो को "सिद्धान्त ग्रन्थ" ही कहते है।[१६१] राहुलजी ने इस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य गोरखनाथ को वज्रयान का ही आचार्य कहा है।[१६२] डा० रामकुमार वर्मा ने इसको दार्शनिक दृष्टि से शैवमत के अन्तर्गत माना है, परन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से उसका सम्बन्ध पतजलि के योग से माना है।[१६३] इतना स्पष्ट है कि मध्यकाल मे कार्य–साधना मे विश्वास रखने वाले सभी सम्प्रदायों मे मौलिक अन्तर था। जैसे सहजयानी अपनी साधना का अन्तिम हेतु महासुख की प्राप्ति मानते थे और नाथयोगी की साधना का हेतु था अमरत्व और महेश्वर प्राप्ति का; तथा सहजयान की तरह वाममार्ग के पक्ष को तत्वत. नही माना। सहजयान सहजवृत्ति की तृप्ति के द्वारा अनासक्ति की उत्पत्ति मानता था, जबकि उन वृत्तियो के दमन मे ही नाथ-सम्प्रदाय विश्वास रखता था। अत. एक का रास्ता था शोधन (सब्लीमेशन) तो दूसरे का दमन।[१६४] फिर भी इतना कहना उचित होगा, नाथ-योगी सम्प्रदाय ने मध्यकाल में अर्वातत सभी धर्म साधना मे सारग्रहण किया था और अभिनव समन्वित स्वरूप इसने प्रस्तुत किया। इस मत के अनुयायी योगी, कनफटा, दर्शनी, आदि के नाम से पुकारे जाते हैं।[१६५] श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के मतानुसार, यह पथ प्राचीन रसायन सम्प्रदाय का ही एक विकसित रूप था,

---

१६०. श्री सांवलिया विहारीलाल, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २७०–२७१
१६१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० १
१६२. राहुल सांकृत्यायन, गंगापुरातत्त्वांक (पत्रिका), २२१
१६३. डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १५२
१६४. डा० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य; सास्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ५१
१६५. Briggs, Gorkhnath & Kanphata Yogies (1938), p 1

शैवमत व पतजलि के योगदर्शन की भूमि पर यह खडा हुआ, थोडा बहुत बौद्ध प्रभाव भी इस पर अवश्य पडा था, पर इससे यह सिद्ध नही होता कि यह मूलत: बौद्ध-योगी सम्प्रदाय था और कालान्तर मे इसने शैवमत का रूप ग्रहण कर लिया था ।"...... अत नाथ सम्प्रदाय मूलत शैवमत ही था जो बौद्ध तान्त्रिको मे प्रभावित हुआ था, यही नही उसने भक्ति, अद्वैतवाद तथा प्राचीन योग को भी अपनाया था।[१९६]

वास्तव मे इस सम्प्रदाय के विकास क्रम के सदर्भ म निश्चित रूप से निष्कर्ष निकालना आसान नही है। नाथयोगी सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक आदिनाथ माने जाते हैं। किसी ने इसके प्रवर्तक गोरखनाथ को माना है और किसी ने मत्स्येन्द्रनाथ को। इतना कहा जा सकता है, कि ८४ सिद्धो की तरह ९ नाथ माने जाते हैं। लेकिन इनके नाम-क्रम कई रूपो मे मिलते हैं। डा० हजारीप्रसाद ने महानिर्वाणतन्त्र के आधार पर ९ नाथो के नाम दिये हैं—[१९७] जिनमे से नाथयोगी सम्प्रदाय की दो भिन्न-भिन्न धारा बहाने वाले मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ ही अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। माना जाता है कि नाथयोगी सम्प्रदाय परिष्कृत रूप मे नवी शताब्दी के मध्य मे प्रवर्तित हुआ और स्पष्ट ही गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित कहे जाने वाले पथो मे से धर्मनाथ पथ का क्षेत्र कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात रहने पर, मान लिया गया है कि धर्मनाथ नामक परमहस ने ई० स० की पाचवी शताब्दी मे नाथयोगी सम्प्रदाय की स्थापना की थी।[१९८] इतना निश्चत है कि कच्छ-सौराष्ट्र मे इस सम्प्रदाय का प्रभाव था।[१९९]

मत्स्येन्द्रनाथ ने सहजयोग साधना को ही महत्व दिया था। शिव की शक्ति को बिन्दु की सज्ञा दी गई है और बिन्दु से नाद का प्रादुर्भाव होता है। नादमय, वाणी तथा पद रूप होता है। ध्यानयोग को महत्व देते हुए अनहदनाद की अनुभूति का सकेत किया गया है। उसमे उन्मनावस्था-प्राप्ति होती है और वही सहजावस्था है। प्रारंभिक सिद्धियाँ सहजावस्था मे प्राप्त होती हैं और द्वैतभाव नष्ट होते हैं। नियम मोक्षप्राप्ति के लिए बाधारूप है इसलिये नियमो का तथा पूजन, नैवेद्य, होम, दान, आचार आदि का पालन नहीं करना चाहिए। "यादृशी भावना यस्य सिद्धि

---

१९६. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिंदी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०३

१९७. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय,

१९८ शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास (गु० स०), पृ० ६८

१९९ (अ) Bombay Gazetteer–Kathiawar Vol. 8, pp 155–56; 446–47

(ब) Bombay Gazetteer–Cutch Vol. 5, pp. 85–88

धर्मवति तादृशी" अर्थात् भावना और मानसिक साधना को ही मत्स्येन्द्रनाथ ने महत्वपूर्ण स्थान दिया था।

गोरखनाथ का हठयोग विशेषत शास्त्रीय योग मार्ग पर स्थित होने पर भी बहुत से स्वतः अनुभूत सत्यों का भी उन्होंने उसमें समावेश किया था। वज्रयानी साधना के पारिभाषिक शब्दों के सांस्कृतिक अर्थ को पारमार्थिक रूप भी उन्होंने दिया और ब्राह्मणविरोधी साधनामार्ग को परिष्कृत किया था।[२००] उनके दार्शनिक सिद्धान्त वेदान्त और अद्वैत सिद्धान्त पर आधारित होने पर भी, निर्मल आत्मतत्व के लिए इन्द्रिय-नियमन और प्राणों के नियमन का महत्व स्थापित किया। उनके मुताबिक अज्ञानजनित वासना को हटाने के लिए पूर्ण समाधि की आवश्यकता है। कायाकल्प से प्राप्त सिद्धि के सदर्भ में गोरखनाथ का कहना है—

"अवधू नव घाटी रोकिलै बाट, बाई बणिजै चौसठि हाट।
काया पलटे अविचल बिध, छाया बिवरजित निपजै सिध।।"[२०१]

शरीर में शक्तिशालिनी वस्तुएँ तीन हैं—विन्दु (शुक्र), वायु और मन। विन्दु को ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा ऊर्ध्वमुख किया जा सके तो वायु और मन को वश में किया जा सकता है। इन्द्रियनिग्रह से आसन, प्राणसाधना से प्राणायाम और मन-साधना से प्रत्याहार सिद्ध होते हैं।[२०२] गोरखनाथ ज्ञानवाद, जातिवाद, पूजन, पँच मकार के विरोधी थे। गोरखनाथ का सम्प्रदाय समन्वयवादी और उदार था। उनकी साधना में भक्ति का कोई स्थान न होने पर भी,[२०३] सम्भव है उन्हें भक्ति प्रति तिरस्कार न हो—

'तहा सत्य बीवी संतोष साहिजादा, विमा, भगति हूँ दाइ।
आदिनाथ नानी मछींद्र नाथ पूता, काया नगरी गोरष बसाई।।[२०४]

हिन्दी सत साहित्य नाथयोगी सम्प्रदाय से ही प्रभावित लगता है और कबीर, दादू आदि इस सम्प्रदाय की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं।[२०५] डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के मतानुसार, निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है।

---

२००. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ-सम्प्रदाय, पृ० ९३-९८
२०१. डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, स० ५०, पृ० १९
२०२ डा० गोविंद त्रिगुणायत, हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २८०
२०३. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० १८८
२०४. डा० पीताम्बरदास बड़थ्वाल, गोरखनाथ, पृ० १२१
२०५. सिद्धिनाथ तिवारी, निर्गुण काव्य दर्शन, पृ० ६४

भक्तिधारा का जन्म पहले योग की ही धारा में बहा था। इस सम्प्रदाय की कापालिक धारा तान्त्रिक वाममार्गियों से ही अधिक प्रभावित थी। नाथयोगी सम्प्रदाय ने कथनी और करनी में एक पता का होना अति-आवश्यक माना है, जिसका प्रभाव निर्गुणमतों पर भी पड़ा है।

शैवमत बहुत प्राचीन धर्ममत है। इस मत का प्रचार प्राणनाथ के प्रादुर्भाव से पहले उत्तरी भारत में था। शैव और वैष्णव मतों में पारस्परिक आदान-प्रदान भी हो चुका था। शाक्तमत भी प्रचलित था, लेकिन पंच मकारों को मानने वाले शाक्त मतवादियों के प्रति शैवों और वैष्णवों के मन में तिरस्कार की भावना भरी पड़ी थी। शैव, शाक्त, और वैष्णव मतों में एक ओर तो अपरिलक्षित रूप में आदान-प्रदान हो रहा था और दूसरी ओर साम्प्रदायिक कट्टरता और कठोरता के कारण भावनाशीलता और कटुता का विकास हो रहा था। यों तो सारे भारत वर्ष में विष्णु, कृष्ण, राम और दुर्गा की उपासना होती है फिर भी कहा जा सकता है कि भारतवर्ष के अधिकांश हिन्दुओं के उपास्यदेव शंकर हैं।[२०६]

महाभारत के शान्तिपर्व में सांख्य, योग, पंचरात्र, वेदीय और पाशुपत इन पांच दार्शनिक मतों का निर्देश है। पाशुपत में श्रुतपाशुपत और पाशुपत शैवों की उपशाखाएँ हैं। शैवों में जो पांच भेद हैं उनमें से भस्मधारण करने वाले सामान्य शैव भूप्रतिष्ठित शिवलिंग की अर्चना करते हैं और शिवाष्टमादि अष्टविधा भक्ति करते हैं। मिश्रशैव विष्णु, उमा, गणपति और सूर्य की पूजा करते हैं और पीठस्थ लिंग की पूजा करते हैं। ये शंकराचार्य के अनुयायी स्मार्त शैव हैं।[२०७] वीर शैव मानते हैं कि अखिल जगत्, कर्ता, भर्ता, हर्ता ब्रह्मस्वरूप शिव है। वे सारे विश्व को शिवमय मानते हैं। वे लिंगायत के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें शिवाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, आदि प्रकार हैं।[२०८] इस मत के अनुसार कर्म से ही ज्ञान होता है, जिससे मुक्ति होती है। ये पशुहिंसावाले यज्ञों में नहीं मानते और वर्णाश्रम धर्म को पुनीत मानते हैं। वासवपन्थ सुधारवादी शाखा है, जिसमें लिंग धारण किया जाता। रखी गयी थी। लेकिन वर्णाश्रम धर्म का खंडन किया, ब्राह्मणों के महत्व का स्वीकार न किया, वेदों को अप्रमाण्य रखा, शिव के अन्य देव-देवी को मानना अस्वीकार किया, विधवाविवाह की तरफदारी की, अन्त्येष्टिक्रिया की अनावश्यकता आदि मौलिक मत प्रचलित किये। इनके अनुयायी अपने को वीर

---

२०६. श्री साँवलिया बिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २०६

२०७. वही, पृ० २६४

२०८. वही, पृ० २६५

शैव और लिंगायत कहते हैं। परन्तु आचार-विचार में अन्तर होने से प्राचीन वीर शैव, पाशुपत शैव और वामपन्थी लिंगायत स्पष्ट रूप से भिन्न थे।[२०६] कापालिक शैवमत मानने वाले तांत्रिक साधु होते हैं। ये पंचमकार का सेवन करते थे और भैरव या शक्ति को बलि चढ़ाते हैं। शिवाद्वैतवाद भक्तिप्रधान मार्ग है। वे शिव को परब्रह्म मानते हुए उसकी उपासना करते है। उनके अनुसार कामनात्याग से पाप नाश और पाप नाश से चित्त शुद्धि होती है। वे ब्रह्म को सगुण और सविशेष मानते हैं। वासनारहित बंधन मुक्त होता है और अन्ततः असीम आनन्द प्राप्ति होती है। यही मुक्ति है। इनमें से वीर शैवमत भक्ति तत्त्व के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।[२१०] उसने दक्षिण में तत्कालीन वैष्णवमत के निर्माण में सहयोग दिया था और उस भक्तिप्रवाह ने उत्तर में आकर सन्तों पर असर डाला।[२११]

हरकार्य सिर्फ शक्ति से ही होता है। हर कोई अल्प-अधिक मात्रा में शक्ति रखता है और उसके मुताबिक कार्य सिद्ध होता है। अतः ब्रह्मचर्य, प्राणायाम आदि द्वारा ज्ञान स्वरूप शक्ति को प्राप्त करने का जो प्रयत्न किया वही शाक्तमत। बाद में पुराणों के प्रभाव से उस मत में कई परिवर्तन आये और माना जाने लगा कि शक्ति अनेक असुर का विनाश करने वाली देवी है। इस परम्परा में अम्बिका, तुलजा, भवानी आदि की मूर्ति पूजा की जाने लगी। इस परम्परा को दक्षिण मार्गी कहा जा सकता है। लेकिन इस देश में आयी हुई सेमिटिक जैसी जातियों ने शाक्तमत को अपनाने के साथ कई नये तत्त्व जोड़ दिये और वाममार्ग का अस्तित्व स्थापित किया।[२१२] इस तरह, शास्त्रोक्त साधना पद्धति दक्षिणामार्गी, जिसके प्रधान आचार्य शंकराचार्य थे,[२१३] और तांत्रिक रूप से शक्ति की साधना पद्धति वाममार्गी जैसे शाक्त सम्प्रदाय की दो धारा है।

शाक्तधर्म का लक्ष्य परमात्मा के साथ जीव की अभेद सिद्धि है। साधक अपने उपास्य देव के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। वह यही रहेगा—

"अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥"[२१४]

---

२०९. प्रो० रामदास गौड, हिन्दुत्व, पृ० ६६७–६६८
२१०. श्याम सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ६८
२११. A. P. Karmarkar, The Religions of India, p. 296
२१२. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० ७२
२१३. Payne, The Shaktas, p. 24
२१४. डा० बलदेव उपाध्याय, आर्यसंस्कृति के मूलाधार, पृ० ३०७–३०८

हैं। इसमे सत्य-प्राप्ति के संदर्भ मे विस्तार से चर्चा की गई है। कौनसा अनुमान सच निकल सकता है और अगर गलत निकले तो क्या संभव है इन तत्त्वो की चर्चा मुख्य रूप से है। आत्मा शारीरिक बन्धन से और जन्ममरण के दुःखों से मुक्ति पाना चाहती है। ईश्वरोपासना से ही कैवल्यप्राप्ति होती है। सांख्यदर्शन ने यही कहना चाहा है कि यह संसार आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ऐसे त्रिविध दुःख से पूर्ण है। सत्य ज्ञान और विवेक से त्रिविध दुःख से मुक्ति मिलती है। ध्यान, योग, वैराग्य आदि आवश्यक है। प्रकृति सत्व, रजस् और तमस् गुणों मे बनी हुई है और क्रमशः सुख, दुःख और मोह को उत्पन्न करते है। इस दर्शन मे ईश्वर का अस्तित्व नही माना गया, क्योकि प्रकृति ही अपने आप विकसित होकर इस सृष्टि रूप हो जाती है, ऐसा मानने पर ईश्वर के अस्तित्व को मानना अनावश्यक है। बाद मे आचार्यों ने सोचा कि अगर पुरुष द्रष्टा ही है और अंधी प्रकृति स्वतः कुछ नही कर सकती, तब प्राकृतिक विकास का प्रारंभ कैसे होता है? इसीलिये नागेश आदि आचार्यों ने ईश्वर के अस्तित्व को माना। लेकिन यह दर्शन प्रारंभ से ही निरीश्वरवादी नही था, ऐसा माना जाता है।[२१९] योग-दर्शन ने ईश्वर के अस्तित्व को माना है। इसके मतानुसार सांसारिक जीवन की उत्पत्ति इच्छाओं के कारण होती है। अतः चित्तवृत्तिनिरोध आवश्यक है। यही सच्चा योग है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि इन अष्टांग योग के साधन से शरीर और मन को पुष्ट किया जा सकता है और उन दोनों पर कुवासना का असर नही होता। इस तरह कैवल्यप्राप्ति हो सकती है। परन्तु क्रियायोग भी आवश्यक है। इसमे तप, स्वाध्याय आदि का महत्त्व रखा गया है। पूर्वमीमांसा ने कर्म को ही धर्म माना है, इसीलिए इसे धर्ममीमांसा भी कहते है। पहले कर्म और बाद मे ज्ञान का निरूपण किया गया है अतः इसे पूर्वमीमांसा भी कहा जाता है। नित्य, नैमित्तिक यज्ञादि करने से ही सच्ची मुक्ति प्राप्त हो सकती है। सब कर्मों का प्रारंभ वेदो से होता है। इस दर्शन मे यज्ञों का ही प्राबल्य है, दार्शनिक सिद्धान्त गौण। वेद के ब्राह्मण भाग मे यज्ञ सम्बन्धी वाक्यो से उत्पन्न शंका को दूर करने का इस दर्शन ने प्रयत्न किया है। इसके सिद्धान्तानुसार कर्म ही परम सत्य है और ईश्वर-धर्म है।[२२०] उत्तरमीमांसा के मतानुसार इस जगत् मे ब्रह्म ही सत्य है और पुरुष-प्रकृति उसके परिवर्तित स्वरूप है। जगत्, जीव, ब्रह्म या परमात्मा—इन तीन के स्वरूप तथा पारस्परिक सम्बन्ध का निर्णय इसमें किया गया है। इसने

---

२१९. आ० आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव, हिन्दू वेद धर्म, पृ० १८७
२२०. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० २३३

प्रकृति तथा प्राकृत पुरुषों को एक ही परमतत्व ब्रह्म में अविभक्त रूप से समाविष्ट करके जड़-चेतन-द्वैत के स्थान पर अद्वैत की स्थापना की। उत्तर-मीमांसा को लेकर शंकराचार्य ने अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्य ने द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद और वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद जैसे विभिन्न मत स्थापित किये।[२२१]

वेदान्त में प्रस्फुटित शाखा-प्रशाखाओं का उदय और विकास मध्ययुग में ही हुआ। शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्रों पर भाष्य लिखकर, एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस नये धार्मिक आन्दोलन के दार्शनिक अंश को वेदान्त या अद्वैतवाद व साधना के अंश को स्मार्तधर्म कहते हैं। प्राचीनकालीन वेदान्तदर्शन को शंकराचार्य ने नूतन और परिष्कृत स्वरूप दिया और इतना प्रचार किया कि शांकर वेदान्त नाम विख्यात हुआ। वैदिक धर्म का जो ह्रास हो रहा था, उसे रोकने का तथा उसे पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को दिया जा सकता है। उन्होंने अपने इस अद्वैतवाद के प्रचार द्वारा, बौद्धों को, उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का खण्डन करके अपदस्थ कर दिया। तत्कालीन अवैदिक तान्त्रिक मतवादी, जो अनाचार फैला रहे थे उनको उन्होंने नष्ट की। सर्वोपरि, हिन्दूजाति को सगठित करके भावी धार्मिक आक्रमण से भारत की रक्षा की।[२२२] वास्तव में यह कहना अत्युक्ति में नहीं खपेगा कि बाद में अपूर्व रूप से बहनेवाली भक्तिधारा के लिए उन्होंने रास्ता साफ कर दिया था।

शंकर का अद्वैतवाद विशेषतः १० उपनिषद् के भाष्य, गीता भाष्य, ब्रह्मसूत्र के भाष्य और माण्डूक्य कारिका पर आधारित माना गया है।[२२३] वेदान्त के मुताबिक, ब्रह्म और जीव में एक्य है, माया से अनुभूति होती है। उन्होंने आत्मा को नित्य, निर्गुण, निर्विकल्प, निश्चल, अद्वैत और निर्विकार कहा है। "आत्मा आत्मान जानाति" यह अद्वैतवाद को मान्य है। अद्वैतवाद ने ब्रह्म को सृष्टि विकास-क्रम का मूल स्रोत माना है। शंकर के मायावाद का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जो दिखाई पड़ता है, वह सत्य नहीं है, वह आभासमात्र है। अविद्या अर्थात् अज्ञान के कारण ब्रह्म इस जगत् के रूप में दिखाई देता है। ऐसे दिखाई पड़ना ही ब्रह्म के मायान्वित होने के कारण है। वैसे अनेकत्व आभासमात्र है और एकत्व ही सत्य है। एक अखण्ड सच्चिदानन्द घन का अनुभव करना ही ज्ञान है। उन्होंने ज्ञान को प्राधान्य दिया है और कर्म तथा

---

२२१ श्री सांवलिया बिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० १७५

२२२. वही, पृ० २६७

२२३. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ८२

उपासना को गौण स्थान दिया है। इस तरह ज्ञान मार्ग का मंडन किया और जनसाधारण में अद्वैतवाद प्रसार के लिए सगुण रूपों की पूजा के अनेक स्रोत बनाये। "अहिंसा परमोधर्म.", "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या", "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" और "जीवो ब्रह्मैव नापर:" आदि उपनिषद् के वाक्यों से ज्ञानमार्ग मोक्ष के लिए श्रेष्ठ है, ऐसा सिद्ध किया। "अहं ब्रह्मास्मि" की अनुभूति ही मोक्ष है।

अद्वैतवाद ने जप, तप, व्रत, उपवास, दान, प्रायश्चित आदि को पुनर्जीवित किया। इसमें बौद्धों की अपेक्षा अधिक पवित्रता और चरित्र की दृढ़ता थी। अद्वैत वेदान्त के साथ साथ विष्णु, सूर्य गणेश और शक्ति इन पांच स्वरूपों की उपासना पर जोर दिया गया। अद्वैतवाद विचार के क्षेत्र में अधिक प्रतिक्रियावादी होने पर भी व्यावहारिक रूप में उदार था। मैक्डोनल ने यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि अद्वैत विचारधारा को शंकराचार्य ने नया जीवन दिया था।[२२४] लेकिन स्मार्त उपासना को प्रचलित करने वाले शंकराचार्य ही थे।[२२५] पं० जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा है कि,[२२६] शंकर ने वर्णव्यवस्था की बुनियाद पर ब्राह्मणों के द्वारा बने समाजी जीवन को स्वीकार किया। लेकिन उन्होंने बताया कि किसी भी जात का कोई आदमी सबसे ऊँचा ज्ञान हासिल कर सकता है। शंकर के दर्शन और उनके दृष्टिकोण में दुनिया से इन्कार करने का और आत्मा की मुक्ति के लिए, जो उनकी दृष्टि में आदमी का परम ध्येय है, साधारण प्रवृत्तियों से बचने का भाव है। त्याग और वैराग्य पर भी बराबर जोर दिया गया है।......" उनमें दार्शनिक और विद्वान् का, जड़वादी और रहस्यवादी का, कवि और सन्त का, और इन सब के अलावा एक व्यावहारिक सुधारक और योग्य संगठनकर्ता का एक अजीब मेल था। अद्वैतवाद ने सगुणोपासना को मान्य रखा इसलिये शंकराचार्य के देहपात बाद जितने पंथ प्रस्फुटित हुए, उनमें शुद्ध शांकर सिद्धांत कायम रहे।[२२७]

वैदिककाल के वरुण तथा इन्द्र का स्थान महाभारत काल में विष्णु को मिला और भगवान् विष्णु के रूप में उनकी पूजा होने लगी। वैष्णव मत की मूल विचार भागवत धर्म में निहित थे। भागवत मत ने पांचरात्र मत का जो स्वरूप धारण किया, उसी का विकसित स्वरूप है वैष्णव मत।[२२८] आ० परशुराम चतुर्वेदी ने कहा है उसके अनुसार, वैष्णव धर्म का नवीन संगठन, वेद के देवता विष्णु, दर्शन के

---

२२४. Macdonell, India's Past, pp. 147-48
२२५. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० २४
२२६. पं० जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त), पृ० १४२-४३
२२७. Bombay Gazetteer, Vol. IX, Pt. 1, p. 532
२२८. श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० १०६

देवता गोपाल के समन्वय से हुआ, जो ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व घटित हुआ होगा होगा।[२२९] तीसरी-चौथी शताब्दी तक अन्य धर्ममतों के अत्यधिक प्रभाव के कारण वैष्णवमत दबी हुई स्थिति में जीवित रहा। लेकिन जब शांकर वेदान्त ने अद्वैतवाद के मंडन के संदर्भ में भागवतधर्म पर प्रहार किये उसकी प्रतिक्रिया के कारण ही वैष्णवमत ने नया जीवन प्राप्त किया। प्रारम्भ में जो पूजा सिर्फ विष्णु की ही की जाती थी, बाद में उन्हीं के अवतार स्वरूप कृष्ण की और बाद में राम की पूजा प्रारम्भ हुई तथा भिन्न भिन्न आचार्य वा सन्तों ने विष्णु-कृष्ण-राम की पूजा घर घर फैला दी और वैष्णवमत भी।[२३०] इन आचार्यों-सन्तों में रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य और चैतन्य का योगदान उल्लेखनीय है।

रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया। इस सम्प्रदाय में लक्ष्मी तथा विष्णु और उनके अवतारों की उपासना होती है। अद्वैतवाद की कड़ी आलोचना की गई। रामानुजाचार्य ने चित्, अचित् और ईश्वर तत्वों की प्रतिष्ठा की। चित् तत्व, जीव, अचित् तत्त्व अर्थात् जड पदार्थ जगत् और ईश्वर अन्तर्यामी शक्ति है। उन्होंने ब्रह्म के दो रूप बताये-चित् और अचित्। जगत् ब्रह्म का ही स्वगत भेद है, अतः वह सत्य है। अचित् तत्त्व संसार का मूल है।

मूलतः केवल नहीं, परन्तु चित्-अचित् की सूक्ष्म वा स्थूल अवस्था में स्पष्टतः विशिष्ट रहता है, अतः यह सिद्धान्त "विशिष्टाद्वैत" के नाम से प्रसिद्ध है।[२३१] मोक्ष का अधिकारी वही है, जो भक्ति साधना पूर्ण करता है। मोक्ष यानी वैकुंठगमन और ईश्वर सामीप्य। 'भक्ति न छाड़ौं, मुक्ति न मागौं, तत जम सुनों सुनावौं (तुलसीदास) की तरह विशिष्टाद्वैतवादी न मुक्ति चाहता और हिन्दुत्व जिसे स्वर्ग कहता है तथा इस्लाम बहिश्त कहता है, उसकी कामना नहीं करता।[२३२] आत्मा का बन्धन कर्म के द्वारा होता है। कर्म और ज्ञान के द्वारा भक्ति का उदय होता है। शंकर के यहां कर्म व ज्ञान में वैर है, परन्तु रामानुज समुच्चयवादी हैं। कर्म अर्थात् नित्य नैमित्तिक कर्म निष्काम भाव से करना चाहिए।[२३३] ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों में से भक्ति ही श्रेष्ठ मार्ग है, लेकिन भक्ति में सरलमार्ग प्रपत्ति का है जिसमें न ज्ञान की, न योगाभ्यास की तथा न विद्याभ्यास की जरूरत रहती है। वैसे ज्ञान-

---

२२९ प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृ० ४६
२३० श्री सांवलिया बिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्मदर्शन, पृ० २८०
२३१. प्रो० आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव, हिन्दू वेद धर्म, पृ० २६५
२३२ रामधारीसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ७४
२३३. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० १५२

कर्मभक्ति मात्र ब्राह्मणों तक मर्यादित है, लेकिन प्रपत्तिमार्ग सब जातिपाँति के लोगों के लिए खुला था। प्रपत्ति के बारे मे कहा जाता है यह इस्लाम का प्रभाव था लेकिन रामानुज को यह विचार इस्लाम मे नही मिला और इस्लाम तब तक भारत में फैला कहाँ था ?………यह भी ध्यान देने की बात है कि ब्राह्मणों के साथ निम्न जाति-पाँति के लोगों को भी वैष्णवमत मानने का, प्रवेश करने का अधिकार सबसे पहले रामानुज ने ही प्रदान किया। विशेषकर के दक्षिण भारत मे जातिविचार से नियंत्रित समाज में निम्नजाति को समान कक्षा पर ला दिया। इस दृष्टि से स्पष्ट है कि रामानुज का यह भक्ति आन्दोलन मानव की मुक्ति का शकर की अपेक्षा अधिक सफल साधन बना।[२३३] लेकिन बाद मे उनके अनुयायियो को ही लौकिक स्वरूप पसन्द न आया और कालान्तर मे उसमे दो पंथ पड गए। गुजरात में रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत ने पूर्ण आदर प्राप्त किया था और ब्राह्मणो मे भी अधिक क्षत्रिय, लौहाणा, कायस्थ आदि जातियो मे विशेष सत्कार प्राप्त किया था। उसकी शाखा समान रामसनेही, रामनंदी आदि पंथो मे अन्य वैष्णवों से भी अधिक मजा थी।[२३४]

यहाँ पर दक्षिण से उत्तर मे रामभक्ति लानेवाले और बाद मे सारे देश मे उसे फैलाने वाले रामानद को याद कर लेना भी आवश्यक है। रामानुजाचार्य के खानपान आदि के कठोर नियम उन्हे मान्य नहीं थे। उन्हे जातिपाँति के भेद और मूर्ति पूजा जैसे तत्त्व पसन्द न थे। रामानन्द के मतानुसार, भक्ति से सासारिक कष्ट तथा आवागमन से भक्त बच सकता है। रामोपासना ही आवश्यक है। इस तरह रामोपासना का प्रवर्तन उन्होंने किया। वैसे वे विशिष्टाद्वैतवादी थे, लेकिन उपासना करते थे विष्णु के अवतार स्वरूप राम की। संभव है, उस समय ऐसे धर्म की आवश्यकता हो जो हिन्दुओं की वीरता को जाये तथा त्याग-सहिष्णुता की ओर प्रेरित करे। ऐसा धर्म भगवान राम को लेकर खड़ा किया जा सकता था और रामानद ने वही किया।[२३५] उन्ही की प्रेरणा ने हिन्दी साहित्य को कबीर दिया है।

निम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है।[२३६] विशिष्टाद्वैत मे जैसे विष्णु और लक्ष्मी को पूज्यस्थान दिया गया था, वैसे द्वैताद्वैत-

२३३. (अ) रामधारीसिंह "दिनकर" संस्कृत के चार अध्याय, पृ० ३७२
(ब) आ० क्षितिमोहन सेन, मध्ययुगनी साधाना धारा (गु० स०), पृ० २३
(स) D. A. Pai, Religious Sects in India among Hindus, p. 8

२३४. Bombay Gazetteer, Vol IX, Part 1

२३५ रामधारीसिंह "दिनकर" संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३७६

२३६. K M. Sen, Medeival Mysticism India p, 49

यार्द ने कृष्ण और राधिका को पूज्यस्थान दिया। भक्ति क्षेत्र में उन्होंने सख्यभाव को प्रतिष्ठित किया। इनके मत में भक्ति ही मुक्ति का साधन है और उपासना से ईश्वर प्राप्ति होती है। दार्शनिक दृष्टि से, निम्बार्काचार्य भी चित्, अचित् और ईश्वर के भेद को मानते हैं। ज्ञान और मोक्षप्राप्ति के लिए जीव भगवान् पर आश्रित है। जीव का नियामक ईश्वर है। जीव कर्ता है और मोक्ष दशा में भी उसमें कर्तृत्व रहता है। अलग अलग शरीर में अलग जीव है। जीव ईश्वर का अंश है। जीव भिन्न भी है और अभिन्न भी। ईश्वर की कल्पना विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत की एक-सी है। जीव और ईश्वर में द्वैत द्वैत का सम्बन्ध नित्य और सर्वत्र है। मोक्ष दशा में ब्रह्म से जीव अद्वैत होने पर अपने स्वरूप को खोता नहीं। जीव और जगत् को ईश्वर की शक्ति माना गया है। ध्यान देने योग्य बात यही है कि निम्बार्काचार्य ने अभेद पर नहीं, लेकिन भेद पर विशेष महत्त्व दिया है। इन दोनो आचार्यों की भक्ति में यही भेद है कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत ध्यान योग पर भक्ति को आधारित रखता है और निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत की साधना अपने मूलभाव का त्याग नहीं करती।[२३७] द्वैताद्वैत मायावाद का विशेष रूप से विरोधी नहीं दीखता। इसने सगुणभक्ति को ही माना, प्रेमलक्षणा भक्ति का सत्कार किया और वैदिक क्रिया का स्वीकार करते हुए रामानुजाचार्य के साधनाभक्ति के तत्त्व कम कर दिये। गुजरात में निम्बार्काचार्य का सीधा प्रभाव क्या पड़ा था यह कहना मुश्किल है, लेकिन इतना निश्चित है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य में प्रेमलक्षणा भक्ति को विशेष स्थान मिला है। संभव है राधातत्त्व ने नरसिंह मेहता के पूर्व गुजरात की वैष्णवसृष्टि में स्थान पाया था, उसका कुछ श्रेय निम्बार्काचार्य को भी जाता है।

द्वैतवाद के प्रवर्तक माधवाचार्य ने भक्तिक्षेत्र में माधुर्य भाव का महत्त्व स्थापित किया। उन्होंने ब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना की। शंकराचार्य को अद्वैतवाद सिद्ध करने के लिए माया की कल्पना करनी पड़ी और रामानुज द्वैत सिद्ध कर सके। निम्बार्काचार्य ने भी अद्वैत माना है, लेकिन ज्ञान और भक्ति की होड़ में द्वैतवाद पहला था जिसने शंकराचार्य के अद्वैत की कड़ी आलोचना की हो।[२३८] वास्तव में माध्वाचार्य की विष्णु और लक्ष्मी की उपासना से इतना स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने रामानुजाचार्य की तरह विष्णु की उपासना पर ही जोर दिया है। उन्होंने विष्णु के स्वरूप राम और कृष्ण को भी लिया है, परन्तु गोपाल की उपासना का उन्होंने

---

२३७ आ० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव मत, पृ० ८५

२३८ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि, पृ० १६८

उल्लेख नहीं किया। डा० भाण्डारकर ने कहा है कि,[२३९] मध्व के मत में व्यूह, वासुदेव तथा अन्यों के लिए कोई स्थान नहीं था। वे विष्णु को ही परब्रह्म के रूप में मानते थे, राम और कृष्ण की उपासना यहाँ नहीं है। राधा का नाम भी नहीं आया। प्राचीन भागवत सम्प्रदाय यहाँ तक आकर लुप्त हो गया और सामान्य वैष्णव धर्म को स्थान मिल गया। आ० परशुराम चतुर्वेदी जैसे विद्वान इसी बात को प्रस्तुत करने में भूल कर बैठे हैं कि माधवाचार्य के मत में व्यूह, वासुदेव आदि को स्थान नहीं है और न उनके उपास्यदेव विष्णु एवम् राम तथा कृष्ण नामक अवतार है।[२४०] द्वैतवाद ने उपासना के तीन अंग बताये हैं–अंकन, नामकरण और भजन। भक्ति ही मुक्ति का साधन माना गया है। ध्यान के बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। ज्ञान के लिए वैराग्य, शम-दम, शरणागति गुरु और भगवत सेवा, भगवत प्रेम, प्राणीमात्र से सहानुभूति आदि को महत्त्वपूर्ण माना है।

इस मत के पाँच भेद बताये है—परमात्मा-आत्मा के बीच, परमात्मा-प्रकृति के बीच, आत्मा-प्रकृति के बीच, आत्मा-आत्मा के बीच और जड-जड अर्थात् अणु-अणु के बीच भेद है। विष्णु के समीप सांसारिक दुःखों का नाश करके आनंद से रहना यही मोक्ष है और सामीप्य मुक्ति माध्वमत का लक्ष्य है।

शुद्ध द्वैत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य ने माया के कारण अशुद्ध ब्रह्म से माया को अलग कर, उसे शुद्ध किया और इस तरह अद्वैत शुद्ध हो गया। वही वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत। वास्तव में विष्णु स्वामी के रुद्र सम्प्रदाय का ही उन्होंने पुनरोद्धार किया। विष्णु स्वामी ने मूर्तिपूजा को शास्त्र सम्मत बताया था और विष्णु की पूजा-भक्ति से मोक्ष प्राप्ति होती है, यह सिद्ध किया था। उन्होंने कायाकष्ट को निरर्थक और विष्णु के नाम स्मरण को मोक्ष का साधन बताया था। उन्हीं के वंशज लक्ष्मण भट्ट उत्तर भारत में गये और वहाँ पर उनके पुत्र वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग अर्थात् शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की।[२४१] शुद्धाद्वैतवाद ने स्नेह, आसक्ति और प्रीति पर जोर दिया और घोषित किया कि भगवान की प्राप्ति प्रयत्न से नहीं, लेकिन प्रीति से होती है। साधना को सरल करने की प्रवृत्ति, जो रामानुज से प्रारंभ हुई थी, उसकी चरम पूर्णता वल्लभाचार्य में दिखाई पडती है। शुद्धाद्वैत ने भक्त के लिए मात्र

---

२३९. Dr. Bhandarkar, Vaishnavism, Shaivism and other minor cults,

२४०. आ० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म पृ० ८८

२४१. आ० क्षितिमोहन सेन, मध्ययुगनी साधना धारा (गु०सं०), पृ० २४

आत्मसमर्पण की शर्त रखी और शेष सब भगवान पर छोड़ने को कहा।[२४२] भगवान की प्राप्ति का माध्यम रागात्मक वृत्तियों को बनाया गया। प्रेम और वात्सल्य मुख्यतः जीवन की दो भावनाएं हैं। अतः भगवान के स्वामी और शिशु स्वरूपों को ही उन्होंने आराध्य माना। वैसे भी तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल ही शुद्धाद्वैत का प्रवर्तन हुआ था। मुस्लिम आक्रमणों से त्रस्त समाज की पीड़ा और निराशा दूर करने के लिए कोई मधुर आकर्षण तत्व की आवश्यकता थी ही। अतः उन्होंने लौकिक बादशाहों के भी बादशाह, अलौकिक गोलोक वासी कृष्ण की सौन्दर्य, संगीत और वैभव से ओतप्रोत लीलाओं को व्रजधाम पर उतार कर जनता के मन को तेजी से आकर्षित किया। वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग १६वीं शताब्दी में हिन्दू संस्कृति का संरक्षण शिविर था तथा हिन्दू-मुस्लिम के बीच फैले हुआ घृणा के तत्व को दूर किया था।[२४३] दार्शनिक दृष्टि से, शुद्धाद्वैत ने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दो रूप माने हैं। माया से ब्रह्म सगुण नहीं होता, परन्तु सगुण निर्गुण स्वरूप स्वाभाविक स्वरूप है। ब्रह्म एक होकर भी अनेक है, वह स्वतन्त्र होने पर भी भक्ताधीन है। रथ, रथी और सारथी एक ही सत्ता के तीन रूप हैं। लीला निमित्त कृष्ण परब्रह्म इस जगत के रूप में अपने अंश रूप से बदल जाता है तथा जीव बनकर जीव जगत के साथ क्रीड़ा करता है। अर्थात् जगत सत्य है क्योंकि लीला धाम भगवान स्वयं जगत के रूप में व्याप्त है। ब्रह्म कारण है, जगत कार्य है और जब कारण सत्य है, तो फिर कार्य भी सत्य होगा ही।[२४४] ब्रह्म के उन्होंने तीन रूप बताये हैं, पूर्ण पुरुषोत्तमस्वरूप श्रीकृष्ण जिसको उपनिषदों ने परब्रह्म कहा है, अक्षर ब्रह्म जिसका प्रादुर्भाव काल, कर्म, स्वभाव, प्रकृति, जीव देवादि के रूप में होता है तथा अन्तर्यामी रूप २४ अवतारी ब्रह्म। परब्रह्म सत्, चित्, आनन्दमय और अक्षर ब्रह्म भी। लेकिन अक्षर ब्रह्म का आनन्द "गणितानन्द" है, दोनों के बीच मात्रा का अन्तर रहता है। जीव ज्ञान मार्ग से अक्षर ब्रह्म में मिलकर एक हो सकता है, जो सायुज्य भक्ति से सम्भव है। उन्होंने जीव तीन प्रकार के बनाये हैं, शुद्ध, मुक्त और ससारी, ससारी के आसुरी और दैव दो प्रकार में से दैव के दो उपभेद मर्यादा मार्गीय और पुष्टि मार्गीय हैं। जीव में सत् और चित् तत्व हैं, लेकिन पुष्टिमार्ग के सहारे ही आनन्द उत्पन्न किया जा सकता है। वल्लभाचार्य जगत और संसार में अन्तर मानते हैं, यह एक सर्वथा नवीनदर्शन है। ईश्वर के सत् अंश का विस्तार ही जगत् है। संसार नश्वर है। शुद्ध जीव, जगत को कृष्णमय देखता है, स्वामी रूप में कृष्ण की सेवा करके परमा-

---

२४२. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० १३६
२४३. वही, पृ० १७८-१७६
२४४. वही, पृ० १८२

नन्द में तल्लीन रहता है। भगवान के अनुग्रह को भागवत में पुष्टि कहा है (पोषणं तदनुग्रहः)।[२४५] पुष्टिमार्गीय भक्ति के चार प्रकारों में मर्यादा पुष्टि भक्ति, प्रवाह पुष्टि भक्ति और शुद्ध पुष्टि भक्ति है।

अचिन्त्य भेदाभेदमत के प्रवर्तक हुए महाप्रभु चैतन्य। रामानुजाचार्य ने कर्मकाड को आवश्यक माना, मध्वाचार्य ने भी उसका स्वीकार किया और वल्लभाचार्य ने भी पूजनअर्चन को पद्धति दी। लेकिन चैतन्य के मतानुसार, भक्तिरस में डूबे रहने वालो के लिए उक्त कोई आचार की आवश्यकता नहीं। वैसे पुष्टि-साधना और चैतन्य का मधुर भाव प्रायः एक-सा है। इस मत ने श्रद्धा, विश्वास और प्रेम को महत्वपूर्ण माना। सब लोग समान भाव से ईश्वर भक्ति कर सकते हैं और भक्ति ही सभी जातियों को शुद्ध करने वाला तत्व है। अतः उन्होंने मुस्लिम आदि विधर्मी और निम्न जाति वालों को भी अपनाया था। शान्त, दास्य, वात्सल्य और मधुर इन पांच भावों को भक्ति के लिए आवश्यक माना, लेकिन मधुर भावपूर्ण भक्ति को वे श्रेष्ठ मानते थे। डा० रत्नकुमारी ने कहा है कि, भक्ति को स्वतन्त्र रस मानकर मधुर भक्ति को श्रेय देना बंगाल के वैष्णवमत की विशेषता है। उनकी यह भक्ति भावना ही उनके धर्म का मूल है।[२४६] दार्शनिक दृष्टि से, अचिंत्य भेदाभेद ने ब्रह्म को सगुण और सविशेष माना है। उनकी दृष्टि से भगवान के सभी रूप नित्य है। जगत सत्य है और अनित्य है। जीव अणु रूप है, ईश्वर जीव में व्याप्त है, जीव एक नहीं अनेक हैं और जीव नित्य है। ईश्वर, जीव, प्रकृति और काल ये चार तत्व हैं, जिनमें से जीव, प्रकृति और काल ईश्वराधीन है। अतः जीव, प्रकृति और काल शक्तियाँ है, जबकि ईश्वर शक्तिमान है। जिस भक्ति से ईश्वर प्राप्त होते हैं, उस भक्ति के विधि भक्ति और रुचिभक्ति वैसे दो प्रकार हैं। गोपियों ने रुचि भक्ति का ही सहारा लिया था और चैतन्य को यही इष्ट था।

अन्यत्र कहा जा चुका है कि शंकराचार्य के अद्वैतवाद ने ही वास्तव में भक्ति-मार्ग की धारा के लिए रास्ता खोल दिया था, क्योंकि उसके कारण रामानुजाचार्यादि आचार्यों में प्रतिक्रियाएं खड़ी हुई और भक्ति धारा समग्र भारत में बहने लगी। विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और अचिन्त्य भेदाभेदवाद के कारण भारत की चारो दिशाओ में कई उपसम्प्रदाय, पंथ या मार्ग खड़े हुए, जिनसे वैष्णवमत की परम्परा बनी रही। इनमे से प्राणनाथ पूर्व और उनके

२४५. भागवत, अध्याय २/१०
२४६ डा० रत्नकुमारी, १६वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० २३६

समकालीन पंथ–उपसम्प्रदायों को जानना आवश्यक है। महापुरुषिया, रामावत, रामदासी, राधावल्लभी, सतानी, हरिदासी, गोकुलेश, टट्टी मार्ग, वारकरी पंथ, नरसिंह सम्प्रदाय आदि सगुण भक्ति सम्प्रदाय और महानुभाव, कबीर पंथ, नानक पंथ, रैदासी, चोखमेला, दीन इलाही, सतनामी, नारायणी, परब्रह्म सम्प्रदाय, निरंजन मत आदि निर्गुण मतवादी और सुधारक पंथ प्रचलित थे। लेकिन सभी में से राधावल्लभी, सतानी, महापुरुषिया, रामावत, वारकरी, नरसिंह सम्प्रदाय, रामदासी पंथ, कबीर पंथ, रैदासी पंथ, परब्रह्म सम्प्रदाय, सतनामी, सत्यपंथ, महानुभाव पंथ, निरंजन मत और बाउल सम्प्रदाय प्रमुख थे। इन सम्प्रदायों और पन्थों में से कालान्तर में कई परिवर्तन हुए होंगे इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

राधावल्लभी सम्प्रदाय में राधावल्लभ की उपासना इसकी विशेषता है। इसमें राधा को अधिक महत्व दिया जाता है। राधा महाशक्ति और कृष्ण आज्ञानुवर्ती हैं। इस सम्प्रदाय में सखी या किंकरी भाव से भक्ति की जाती है। वारकरी सम्प्रदाय वैदिक धर्म पर आधारित है। कृष्ण ही मोक्ष दाता है और उनकी भक्ति से मोक्ष प्राप्ति होती है। अद्वैतवाद के सहारे ज्ञानभक्ति का अद्भुत सामंजस्य इस सम्प्रदाय में स्थापित हुआ। नरसिंह सम्प्रदाय के मुताबिक, भक्ति और प्राणीमात्र के साथ प्रेम करने से मुक्ति मिल सकती है। रामदासी सम्प्रदाय ने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के सहारे मुक्ति प्राप्ति होती, यह प्रचलित किया। अतः मनुष्य कर्मयोग के मार्ग पर चलकर, शुद्ध मन से चले तो उसका जन्म सफल बनता है बल्कि परलोक में भी वह सुख पाता है। इस सम्प्रदाय के गृहस्थी और विरक्त अनुयायी हैं। महापुरुषिया सम्प्रदाय रामानुजाचार्य के दार्शनिक विचारों पर आधारित था। वे मूर्तिपूजा नहीं करते लेकिन भागवतग्रन्थ की पूजा करते हैं। भक्ति ही विश्व के लिए कल्याणकर है और उसके लिये वर्णाश्रम धर्म की भिन्नता को कोई स्थान नहीं है।[२४७] रामानन्दी सम्प्रदाय ने विशिष्टाद्वैत को ही आदर्श मत माना, लेकिन लक्ष्मी और विष्णु के स्थान पर इस सम्प्रदाय ने सीताराम की उपासना प्रारंभ की। वे ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में मानते हैं। बिश्नोई संप्रदाय का आराध्य परमात्मा-तत्व विष्णु रूप है और विष्णु की नित्यसेवा आवश्यक है। अहिंसा-धर्म का महत्व है। लालपंथी रामनाम के जप और कीर्तन को महत्व देते हैं और श्रद्धा, पवित्रता, नम्रता और प्रेम आवश्यक मानते हैं। राम ही परमात्मा है। दादू का परब्रह्म सम्प्रदाय परम तत्व को सर्वत्र व्याप्त समझता है और परमतत्व को शून्य, परमपद, निर्वाण जैसे शब्दों से पुकारा है। ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण है अनुभूति। सहजमार्ग की साधना

---

२४७. डा० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृ० १०७

इस सम्प्रदाय को स्वीकार्य थी। सहजसमाधि की अवस्था ही मोक्ष है। बावरीपंथ ने आध्यात्मिक दीवानेपन को महत्व दिया। मनुष्य का जीवन लक्ष्य परमतत्व की पूर्ण अनुभूति करना ही होना चाहिए। बाबालाली पंथ की साधना के अंतर्गत शम-दम, चित्तशुद्धि, दया, परोपकार, सहजभाव तथा सत्य-दृष्टि जैसी व्रत आती हैं।[२४८] भक्ति और प्रेम से प्रभु की प्राप्ति होती है। राम इनके इष्टदेव हैं। सत्तनामी सम्प्रदाय के मतानुसार, ईश्वर निर्गुण निराकार है और वह एक है। मूर्तिपूजा का इसमें विरोध है। सूर्य की उपासना की जाती है। दीन इलाही पंथ समन्वयवादी पंथ है। उसके अनुसार ईश्वर एक है और उसकी मानसिक पूजा करनी चाहिए। हिंदू-मुस्लिम अनुयायियों के लिए अल्लाहोपनिषद् ग्रन्थ पूज्य है। किनारामी अघोरपंथ ने जाति-भाँति का भेद नहीं माना। वे रामावतार की उपासना करते हैं और मूर्तिपूजा अमान्य है। इमामशाही पंथ के अनुयायी भागवत, रामायण, गीता आदि धर्मग्रन्थों को पूज्य मानते हैं और इमामशाह के उपदेशों का श्रद्धाभक्ति से पाठ करते हैं। महानुभाव पंथ कृष्णोपासक पंथ है और उनकी भक्ति मधुर भाव की भक्ति जैसी प्रतीत होती है।[२४९] ये लोग मूर्तिपूजा के विरोधी हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था को भी नहीं मानते। ईश्वर निर्गुण-निराकार है लेकिन भक्तों पर कृपाकर सगुण रूप समय-समय पर धारण करते हैं। बाउल सम्प्रदाय समन्वयवादी सम्प्रदाय है और प्रतिमापूजन, वर्णाश्रम आदि का विरोधी है। जब तक तृष्णा का पूर्ण रूप से नाश नहीं होगा, निर्वाण सम्भव नहीं है। इसके मतानुसार, प्रेम परमात्मा का सहज रूप है और मनुष्य उसका अंश-रूप है, इसलिए मनुष्य और ईश्वर का सहज-धर्म प्रेम है। यह सहजभाव तत्व नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव इस सम्प्रदाय पर था यही कहना है लेकिन वैष्णवसाधना के तत्व अधिक है।[२५०]

कबीर मत ने जातिभेद, मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, माला, छापातिलक को नहीं माना। सत्य और धर्म के लिए सहज होना चाहिए। सत्य ही सहज है और वह सहज प्रेम, भक्ति तथा दया में ही है। प्रत्येक जीव परमात्मा है। कबीर की भक्ति एक विचित्र भक्ति थी। निर्गुण ब्रह्म की प्रतीति ज्ञान से ही सम्भव है। तर्क इसका आधार है, बुद्धि अस्त्र है जिससे सत्य का उद्घाटन हो सकता है।[२५१] राम के सहारे

---

२४८. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६२

२४९. डा० श्याम-सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० १२०

२५०. Dr. Sushilkumar De, Vaishnava faith and movement, p.p. 20-22

२५१. डा० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ७७

ही मुक्ति संभव है। कबीरमत दार्शनिक तत्वचिन्तन का नहीं था। सगुण भक्ति और अवतारवाद को न मानते हुए भी उसमें भक्ति और भगवान् की भक्तवत्सलता के प्रति आस्था के दर्शन होते हैं। निश्छल और एकान्तिक प्रेम को महत्व दिया जाता है।

नानक द्वारा प्रवर्तित सिक्ख धर्म मध्यकालीन भारत में एक प्रचलित धर्म रहा। इस सम्प्रदाय के मतानुसार, ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है और उसमें विश्वास रखना चाहिए। उसके सिवा अन्य कोई पूज्य नहीं है। निष्काम कर्म करना चाहिए और धर्म-सदाचार का पालन करना चाहिए। सत्यमात्र इन्य पूज्य है और वही गुरु है। मृत्यु के समय कर्म और कर्त्तव्य ही काम आयेंगे। राम और कृष्ण ने किया था वैसे कर्त्तव्यपालन ही आवश्यक धर्म है। इसी मार्ग पर चलने से आखिर आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।[२५२] इस्लाम की प्रतिक्रिया में सिक्ख धर्म का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, लेकिन नये आंदोलन से हिन्दू-धर्म को विशुद्ध धर्म बनाना ही मुख्य उद्देश्य रहा हो, बिल्कुल संभव है। सिक्खधर्म में इस्लाम के थोड़े-बहुत तत्वों को भी अपनाया था। वास्तव में सिक्खधर्म अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक सम्प्रदाय था।[२५३]

भक्ति की निर्गुणधारा को प्रभावित करने वाले मतों में से निरंजन मत है, जिसके कारण निर्गुण साधना सारे भारत में फैल गई थी।[२५४] निरंजन मत ने सगुण साधना और मूर्तिपूजा का विरोध नहीं किया। यह निर्गुणमतवादी सम्प्रदाय था।

उपर्युक्त वैष्णवमतवादी साम्प्रदायिक धारा न और निर्गुण साधना ने मध्यकालीन सामाजिक जीवन को आश्वस्त किया होगा और जीवन जीने का सहारा दिया होगा।

विदेशी धर्म-दर्शन

डा० ताराचन्द की तरह यह गलत मान लेना होगा कि इस्लाम के कारण ही धर्म ने नये स्वरूप धारण किये अथवा भारत में नये धार्मिक आन्दोलन के पीछे इस्लामी आदर्शों की प्रेरणा थी।[२५५] वास्तव में इस्लाम के कारण हिन्दू लोग अपने धर्म के प्रति विशेष जागरूक हो गए और उसे जीवन्त और प्राणवान बनाये रखने के लिए उसके स्वरूप में परिवर्तन और परिवर्द्धन करते रहे। भारत में विजेता के रूप में

---

२५२. श्री साँवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० ३१८-३१९

२५३. Dr. J. E. Carpainter, Theism in Medieval India, p. 488

२५४. (अ) K. M. Sen, Medieval Mysticism, p, 707
(ब) क्षितिमोहन सेन, मध्ययुगनी साधनाधारा (गु०स०), पृ० ३६

२५५. Dr Tarachand, Infiuence of Islam, pp. 111-115.

प्रवेश पाने वाले मुस्लिम आक्रमक अपने साथ अपना इस्लाम धर्म भी लाये, जिसका भारतीय जनता को अनुभव करना पड़ा और हो सके वहां तक उसे आत्मसात् करने का प्रयत्न भी करना पड़ा।

अरब राष्ट्र को एक धर्म सूत्र में आबद्ध करने वाले हजरत मुहम्मद ईसाई पादरियों की तरह ईश्वर आराधना और एकान्तवास के लिए गुफाओं में पड़े रहते थे। उनके दिव्योपदेश का अंशस्व स्वरूप है कुरान, जो इस्लाम का पूज्य ग्रन्थ है। कुरान के अतिरिक्त मुहम्मद साहब की अन्य सभी नसीहतें, कहावतें और सभी रिवायतें "हदीस" कहलाती हैं और वे इल्हाही अर्थात ईश्वरीय नहीं मानी जाती। हिन्दू धर्म में वेदों की तुलना में जो स्थान ब्राह्मण ग्रन्थों का है, वही स्थान इस्लाम में कुरान की तुलना में हदीस का है।[२५६] तत्कालीन परिस्थिति के कारण कुरैशियों के साथ हजरत मुहम्मद को जो कार्य करना पड़ा, वही कार्य उनके अनुयायी मुस्लिम आक्रमक हर जगह करते रहे—बलात् इस्लाम का स्वीकार कराना और दूसरे हाथ में तलवार। कुरान ने इस्लाम धर्म के लिये चार सिद्धान्त प्रतिष्ठित किये, सोम, सलात, हज्ज और जकात। सयम के हेतु सोम का (उपवास का) महत्व बताया गया है। सलात (नमाज) वस्तुतः संघ शक्ति बढ़ाने वाली होती है। एक स्वर से, एक ही मात्रा और भाव से, परवरदिगार के चरणारविंद में अपने आप को अर्पित करने के लिए, अमीरी-गरीबी का भेद छोड़कर नमाज पढ़ते हैं और व्यक्त करते हैं कि अल्लाह के आगे सब समान हैं। कुरान ने पाँच बार नमाज पढ़ने के लिए नहीं निर्दिष्ट किया, लेकिन बाद में यही मान्यता चलती रही है। इन धार्मिक कर्त्तव्यों के साथ कुरान ने कई बातों के लिए मना भी किया है। मद्यपान, जुआ खेलना, अन्याय करना, सूद लेना आदि कार्यों की पाप में गिनती की जाती है। मनुष्य का यह जन्म सर्व प्रथम और अंतिम है अर्थात् इस्लाम पुनर्जन्म को नहीं मानता। अल्लाह ही सब कुछ है और सर्व व्यापी है। कुरान का ईश्वर सम्बन्धी दर्शन हिन्दुओं के अद्वैत और द्वैतवादों का मिला जुला स्वरूप है।[२५७] प्रत्येक व्यक्ति के शुभा शुभ कर्मों के रक्षक व लेखक फरिश्ते (देवदूत) हैं। लेकिन आलमअमर में व्यक्ति को अशुभ (बुरे) राह पर प्रेरित करने वाले तत्व शैतान (पापात्मा) हैं। अर्थात हमारे मनजगत में असद् और सद् तत्वों का निवास है। अहंकार, तिरस्कार आदि का त्याग करना चाहिए और भगवान का प्रेम प्राप्त करने के लिए पहले भगवान के बन्दों को प्यार करो। हजरत मुहम्मद के उपदेशों में दया, औदार्य आदि के भाव होते हुए भी व्यवहार में इस्लाम अपने शैशवकाल में कट्टरपंथी और असहिष्णु था। संघर्ष में ही पड़े रहने से

---

२५६. श्री साँवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्व धर्म दर्शन, पृ० २५३

२५७. श्री साँवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २६०

इस्लाम में ज्ञान, भक्ति और मानवीय सौहार्द के तत्व कम विकसित हुए।[२५८] मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद वाले प्रथम चार खलीफा आदर्श और सदाचारी थे। लेकिन बाद में खलीफाओं की नीति शासन विस्तार की ओर संकुचित साम्प्रदायिकतावादी हो गई थी और इस्लाम धर्म आचार प्रधान बन गया था। नमाज, रोजा आदि न मानने वालों की कत्ल कर दी जाती थी और इस पवित्र कार्य को 'जिहाद' कहा गया। जिहाद के संदर्भ में ही मुस्लिम आक्रान्ता भारत में आये थे। इस्लाम कठोर और भावना रहित होता रहा। हिन्दू धर्म में सिर्फ यज्ञों आदि की प्रचुरता की प्रतिक्रिया स्वरूप कई धर्म मत और सम्प्रदाय खड़े हुए वैसे इस्लाम में भी प्रतिक्रिया स्वरूप सुन्नि, शिया, वहाबी, आगाखानी, सूफी आदि मत उपस्थित हुए। लेकिन इनमें हृदयपक्ष को ही प्राधान्य देने वाला सम्प्रदाय है सूफी साधकों का। उनके मतानुसार प्रभु की प्रेरणा शुद्ध हृदय से ही प्राप्त होती है। इस्लाम ने ईश्वर और जीव को पृथक माना है लेकिन सूफीमत ने भारतीय वेदांत के सहारे प्रेम को माध्यम बनाया और ईश्वर-जीव के बीच अद्वैत सम्बन्ध स्थापित किया। इस मत के अनुयायी मत ही इसको दबा देने के प्रयत्न शेखों और उलेमाओं ने किये, जो मन्सूर की हत्या से जाहिर है। लेकिन परम्परावादी और सूफी साधकों के वैमनस्य-भाव को दूर किया इमाम गजाली ने। उन्होंने सूफी मत को कुरान के अनुकूल सिद्ध कर दिया। अतः यह कहना अनुचित होगा कि निर्गुण-मतवाद में विरोध और खंडन की प्रवृत्ति अत्यन्त उग्र है, जो सूफी-साधना में नहीं है।[२५९] सूफीमत भी गजाली पूर्व वैसा ही उग्र रहा होगा। भारत में प्रवेश करते वक्त सूफीमत का यही सामंजस्यपूर्ण स्वरूप हो चुका था।[२६०] सूफीमत के प्रारम्भिक कालीन साधक वैराग्य भावना से युक्त थे। ध्यान और भक्ति को अपने प्राण को सपूर्ण अर्पित कर सकें इसलिये वे सांसारिक वेदना से दूर रहना चाहते थे। वे प्रबल धार्मिकवृत्ति-भक्ति से आकृष्ट थे और धार्मिक आचारों और विधानों का पालन करने के बजाय आत्म संयम और आत्मशुद्धि पर वे ज्यादा जोर देते थे।[२६१] परम्परावादी इस्लाम मत के अनुसार, अल्लाह प्रेम का विषय नहीं हो सकता। अल्लाह श्रद्धा का विषय है। अल्लाह स्वामी है और मनुष्य उसका बन्दा है। बन्दा कभी अपने मालिक (अल्लाह) से वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। लेकिन सूफीमत ने इन विधानों को

२५८. डा० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०

२५९. डा० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०

२६० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३५४

२६१. History of Philosophy, Eastern & Western, p. 497

अस्वीकार किया। गजाली के बाद सूफी मत में भी कई उपसम्प्रदाय उपस्थित हुए। मसूरी पथ के कवियो ने कबीर आदि निर्गुणवादियों की तरह परम्परावादी इस्लाम की कड़ी आलोचना की है। सूफीमत साधना की १४ अवस्थाएं बतायी है, जिसमे सत्यानुभूति के लिए तीव्र औत्सुक्य, गुरुप्राप्ति और उपदेश ग्रहण, आध्यात्मिक जागरण की अवस्था, वैराग्य की अवस्था, आत्मपरिष्कार की अवस्था, भावावेश अवस्था, आंशिक अनुभूति की अवस्था, बाधाएं और उनसे संघर्ष की अवस्था, विरह की अवस्था, आत्मसमर्पण की अवस्था, मिलन की पूर्वावस्था, मिलनावस्था, पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था और तादात्म्यावस्था का समावेश किया गया है।[२६२] सूफी मत में कर्म का महत्व नही है, न वह आराध्य के साथ मिलनावस्था को प्राप्त कर लेता है। इस मिलन स्थिति को केवल आराध्य ही समझ पाता है। आत्मानुशासन आवश्यक है। सूफीमत अपरिग्रहवाद है। इस साधना के लिए न कोई नियम है और न कोई इसका विधान। बधनों से मुक्ति का नाम सूफीमत है। जगत सीमित और अपूर्ण है, अत. अपूर्णताओं की ओर से आँखें बन्द करके, पूर्ण का चिन्तन करना ही सूफीमत सिखाता है। प्राणवायु और ऐन्द्रिक संगठन पर सूफी मत ने जोर दिया है।[२६३] इस तरह सूफीमत वेदान्त, बौद्धदर्शन, यूनानी "नियोप्लेटोइज्म" तथा कुरानमत से अनेक धारणा को लेकर अपना विकास करता गया।[२६४] सूफीमत के निजामिया, साबिरिया, सुहरावर्दी, कादरिया, नक्शबंदियाँ आदि सम्प्रदायों का विकास प्रायः १२वी शताब्दी के बाद भारत मे होता रहा। दार्शनिक दृष्टि से वहूदिहा (अद्वैतवादी) और शहूदिया (सर्वात्मवादी) दो मुख्य सप्रदाय है। जीवन एक तरीका (यात्रा) है और उपासक एक सालिक (यात्रिक) है। शरीअत मे पश्चाताप, तरीकत मे पवित्रता और ईश्वर स्तुति, मारफत में चिन्तन और मूर्च्छितावस्था (जो अभिन्नावस्था है) और हकीकत ब्रह्म से मिलन की अवस्था (वस्ल) है। अन्तिम अवस्था मे "मैं" तू का भेद मिट जाता है। तालिब (साधक) आरिफ (सच्चा ज्ञाता) बन जाता है। ईश्वर के प्रति सच्चे "इश्क" से ही वस्ल की स्थिति प्राप्त होती है। सूफी धर्म का मुख्य सिद्धान्त "फना" का सिद्धान्त है, जबकि साधक की आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है तो स्वरूप स्थिति हो जाती है। सूफीमत जगत को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानता है।- ब्रह्म और जीव मे तात्विक एकता है। ब्रह्म प्रेयसी है, जीव प्रेमी; ब्रह्म सौन्दर्ययुक्त है, जीव प्रेमयुक्त और प्रेम से सौन्दर्य की अनुभूति हो

---

२६२. बाबू गुलाबराय-डा० शम्भुनाथ पाडे, रहस्यवाद और हिंदी कविता, पृ० ७३–७४

२६३. Nicolson, The Mystics of Islam, p. 26

२६४. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३६०

मानी है। साधना का ध्येय ब्रह्म और जीव की एकता का है, जिसके लिए सांसारिकता का त्याग आवश्यक है।

प्राणनाथ के समय में इस्लाम धर्म इतना प्रबल नहीं था जितना सूफीमत। परम्परावादी मुस्लिम धर्म ने हिन्दुओं को आकर्षित नहीं किया था, लेकिन भारतीय साधना की थोड़ी उज्ज्वल देनेवाला सूफीमत भारतीय जनमानस को सरलता से अपनी ओर आकर्षित कर सका था। भौगोलिक दृष्टि से, सिन्ध के बाद गुजरात मुस्लिमों के सम्पर्क में विशेष आता रहा था। अतः मुस्लिमों का प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव गुजरात की जनता पर और व्यौपारी वर्ग पर विशेषरूप से पड़ा होगा। उन दिनों भारत का विदेशों से व्यौपार बढ़ाने में गुजरात के बन्दरगाहों का खास उपयोग होता था। विशेषतया अरबस्तान, इरान, बगदाद, बसरा के व्यौपारी गुजरात में आ बसे थे, सिन्ध-मुल्तान मार्ग उनके लिए अनुकूल था। कई मुस्लिम सन्त, औलिया और धर्मप्रचारकों ने गुजरात में मुस्लिमशासन से पूर्व ही प्रवेश कर लिया था। वास्तव में इन फकीरों, सन्तों-औलियाओं के कारण और भारतीय विचारों के आवरण से उनके मत के प्रति भारतीय मानस में विरोध नहीं जगा और इस्लाम का प्रसार एवम् प्रचार आसानी से हुआ। फिर भी यह धारणा बिल्कुल गलत है कि आर्य संस्कारों पर मुसलमानी प्रभाव के कारण ही सूफी सम्प्रदाय का उदय हुआ।[२६५] सच तो यही है कि सूफीमत का उद्भव स्वतन्त्र रीति से हुआ।

कहा जाता है कि ईसाई धर्मप्रचारकों ने ई० स० की पहली शताब्दी से ही [२६६] भारत में प्रवेश कर लिया था और उनका प्रारम्भिक स्थान रहा मलबार तट। बाद में छठी और सातवीं शताब्दी में भी इन प्रचारकों के भारतनिवास के प्रमाण दिये जाते हैं। संभव है व्यापारिक सबंधों के कारण ईसाइयों ने प्रवेश पाया हो और भारत में धर्मप्रचार का कार्य भी उन्होंने शुरू किया हो। दक्षिण के हिन्दूराजा ईसाई गिरजों का हिन्दूमंदिरों-सा सम्मान करते थे और ईसाई धर्मप्रचारकों को उदारतापूर्वक सुविधाएँ देते थे। १५वीं शताब्दी के अन्त में पोर्तुगीज लोगों ने भारत आना प्रारम्भ किया और भारत में शासन करने के साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार करने के प्रयत्न किये थे। पश्चिमी समुद्रतट के जिन प्रदेशों पर शासन स्थापित किया था, वहाँ उन्होंने जबर्दस्ती से लोगों को ईसाई बनाने का भी प्रयत्न किया था। लेकिन वे असफल रहे।[२६७]

---

२६५. Edward G Brown, Religious Systems of the world, pp. 315-316

२६६ सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ६०६

२६७ वही, पृ० ६१०

ई० स० १५८० में अकबर के दरबार में कुछ ईसाई धर्मप्रचारकों का आगमन हुआ और उन्होंने आगरा, दिल्ली, लाहोर आदि शहरों में गिर्जाघर भी खड़े किये थे।[२६९] श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा लिखते हैं, सर्वप्रथम सेण्ट टौमस ने दक्षिण भारत में आकर बहुत लोगों को ईसाई बनाया। बाद में १५ वीं शताब्दी में ईसाई लोग भारत में आये। यहां उनकी संख्या प्रायः २६ लाख है। भारत में ईसाई धर्म के उपदेशकों ने दूर-दूर जाकर जंगली जातियों को ईसाई धर्म में दीक्षित किया। उनकी भाषाओं में बाइबल का प्रकाशन कर उसका प्रचार किया। ईसाई मिशनरियों ने अनेक स्कूल, कालेज, अस्पताल तथा अनाथालय खोले, जिनके द्वारा गौण रूप से अपने मत का प्रचार किया। पोर्तुगीजों के सिवा अन्य किसी ईसाई प्रचारक ने जोर-जुल्म नहीं किया।[२६९]

ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव पॅलेस्टाइन में हुआ था। रोमन सम्राटों ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था, अन्य पाश्चात्य देशों में इसका प्रसार तीव्र गति से हुआ। राज्याश्रय के साथ धर्मप्रचारकों का सहयोग भी इस प्रसार एवं प्रचारकार्य में था ही। ईसाईधर्म का प्रादुर्भाव यहूदी धर्म में से हुआ था। विचित्रता की बात यही है कि प्राचीन हिन्दुत्व (वैदिक धर्म) से बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हुई उसी प्रकार, ईसाई धर्म भी यहूदी धर्म की कुक्षि में उत्पन्न हुआ है। दूसरी विचित्रता यह हुई कि भारत में पिता (हिन्दुत्व) ने पुत्र (बौद्धमत) को निर्वासित किया, किन्तु, फिलस्तीन में पुत्र (ईसाईयत) ने ही पिता (यहूदी धर्म) को अपदस्त कर दिया था।[२७०] ईसाई धर्म का धर्मग्रन्थ बाइबल है। बाइबल के उपदेशानुसार, परमेश्वर एक है और निरंजन, निराकार, ज्योतिस्वरूप है। बाइबल को पूज्य और सत्य मानना, ईसा को परमेश्वर का पुत्र मानना, ईश्वर आराधना और सत्य का पालन करना चाहिये। ईसा अमर है और उनका महिमामय पवित्र शरीर विद्यमान है। God the Father, God the Son and God the Holy Ghost ये तीनों एक ही हैं। अन्य जीवों को भी ईश्वर ने मनुष्यों के उपकारार्थ ही बनाया है। ईसाईधर्म पुनर्जन्म को नहीं मानता और ज्ञान की सर्वथा उपेक्षा करता है। संपूर्ण शरणागति ही मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक है। ईसा ने अपने को निरा भगवान का पुत्र समझा और इसीलिए उनकी भक्ति ही सबको तारनेवाली है। आत्मबलिदान और भ्रातृभाव पर जोर दिया। ईसाईधर्म ने हिन्दुओं की ब्रह्मा, विष्णु, महेश –त्रिमूर्ति– की कल्पना को ग्रहण किया है। ईसाईधर्म ने

२६८. शाह रैवजी लल्लूभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० १३४
२६९. श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २४२-२४३
२७०. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृ० ५२२

मूर्तिपूजा का निषेध किया है, लेकिन ईसा और मेरी की प्रतिमाओं का पूजन किया जाता है। मूर्तिपूजा के विरोध में ई० सन् ७५४ में असफल आंदोलन भी हुआ था। पोप के विरोध में मार्टिन लूथर ने ई० १५१७ में आवाज उठायी थी और आगे चल कर के ईसाई धर्म में तीन सम्प्रदाय पैदा हो गये थे। ईसा के शिष्यों ने ईसा के जीवन और उपदेशों का संग्रह किया गया, जो "न्यू टेस्टामेंट" कहलाया तथा यहूदियों की बाइबल भी इस बाइबल में मिला देने पर उसे "ओल्ड टेस्टामेंट" के नाम से अभिहीत किया गया। ईसा का मनुष्यहृदय को परिवर्तित कर उसमें आदर्श मनुष्यता को प्रतिष्ठित करना ही लक्ष्य था। इस पृथ्वी पर Kingdom of Heaven उतारना था। माना जाता है कि ईसा पर अद्वैत-वेदान्त का प्रभाव पड़ा था। क्योंकि उन्होंने कहा कि प्रत्येक जीव उसी एक ईश्वर का अंश है और वह (ईश्वर) अंशी है। जितने शरीरधारी जीवात्मा है वे मेरे ही है।

पोर्तुगल लोगों से पहले ईसाई धर्म का भारत में यथेष्ट आदर था। फिर भी हिन्दू लोगों ने ईसाई धर्म का मुकाबिला किया और बहुत अंश तक वे सफल रहे।

यहूदी धर्म

इस्लाम और ईसाइयत ने जिसमें में जन्म लिया था वह यहूदी धर्म संसार के प्राचीन धर्मों में से एक है। इस तरह यहूदी धर्म से इस्लाम और ईसाइयत दोनों का सम्बन्ध है। सेमेटिक मूर्ति पूजक थे और यहूदियों के आदि पैगम्बर हजरत इब्राहीम ने मूर्ति पूजा का विरोध किया तथा एक-वाद की प्रथा चलायी। यहूदी धर्म के दो पैगम्बर हजरत दाऊद (David) और हजरत मूसा (Moses) के सहयोग का परिणाम ही पुरानी बाइबल (old Testament) है।[२७१] हजरत मूसा ने भगवान के आदेश अनुसार धर्म की स्थापना की। उन्हें ही यहूदी धर्म का प्रवर्तक बताया जाता है।[२७२] यूनानी बाइबल (old Testament) यहूदी धर्म का मूलग्रन्थ है। इनके सिद्धान्तानुसार जिहोवा (हिब्रू भाषा के इलोहा का हजरत मूसा ने यह नामकरण किया) के पास तीन कुंजियाँ है जो वर्षा, जीवन और मृत्यु से सबंध रखती है। जिहोवा सारे संसार का पिता है, वह दयावान है और सृष्टि का रचियता है। वह एक, पवित्र और निराकार है। मनुष्य के अन्तिम काल के प्रायश्चित पर उसके भाग्य का आधार रहता है। यहूदी संतों ने पश्चाताप के आँसू का महत्व रखा है। प्राचीन यहूदी धर्म के मुनाविक यज्ञ का भी स्थान ऊँचा है। इस धर्म ने सन्यास आस्था को नहीं माना। यहूदी मत की दश मुख्य आज्ञाओं में माता-पिता का आदर करने का, अभि-

---

२७१. रामधारिसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५२२

२७२. श्री सांवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० १०६

चारनिषेध, अहिंसा, लालचरहितता और चोरी न करने के उपदेश मुख्य है। अन्य किसी देवता को वे नही मानते और ईश्वर का व्यर्थ नाम लेने को मना फरमायी गयी है। हजरत मूसा के प्रति यहूदी धर्म वाले अपार श्रद्धा रखते हैं। माना जाता है कि [२७३] इस धर्म मे गुप्तयोग-विद्या गुरुशिष्य परम्परा से चली आ रही है और धर्म शास्त्रो मे सिर्फ इस धम की बाह्य बातें दी गई हैं। यहूदी धर्म ने ई० स० ६१४ के समय मे भारत मे प्रवेश किया था। वे अरबस्तान से भारत आये थे। बाद मे १५वी व १६वीं शताब्दी मे जब ब्रिटिश व्यापारी यहाँ आते रहे, तो उनके साथ ये लोग भी यहां पर आने लग गये थे। फिर भी इस धर्म का भारत के धर्मों और सम्प्रदायो पर कोई गहरा प्रभाव नही पडा होगा इतना स्पष्ट है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल से पूर्व धर्म क्षेत्र मे गुह्य साधना के लिए जिन भावनाओ का प्रचार हो रहा था उस ढग को साधना के क्षेत्र मे शैव-शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायो ने भी अपनाया। परिणाम स्वरूप इस युग की धार्मिक चेतना मे ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति प्रवेश करने लगी। लोगो का धार्मिक विचारो के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। पाश्चात्य विद्वान वेबर, कीथ, ग्रियर्सन, विल्सन आदि ने भारतीय भक्ति प्रवाह को ईसाई धर्म की देन ही माना है। जबकि डा० हुमायूँ कबीर, डा० ताराचन्द, डा० आबिद हुसैन आदि इसे मुस्लिम संस्कृति का परिणाम मानते हैं। श्री बलगगाधर तिलक, श्री कृष्ण स्वामी आयगर आदि भारतीय विद्वानो ने इन मतों का खडन किया। आ० हजारीप्रसाद जी, तो भक्ति आन्दोलन को भारतीय जनमानस की पराजित मनोवृत्ति का परिणाम भी नही मानते और वे इस्लाम की प्रतिक्रिया वाले मन्तव्य को उपहासास्पद ही मानते है। सच तो यह है कि भारतीय भक्ति प्रवाह प्राचीन दर्शन प्रवाह की एक अविच्छिन्न धारा है। धर्म के क्षेत्र मे विविध आदर्श प्रस्तुत हुए। इसमे खडन-मंडन की प्रवृत्ति भी अधिक हुई। सर्वधर्म समन्वय की भावना भी आकार ले रहा था और प्रणामी सम्प्रदाय उसी भावना का एक परिणाम है।

प्रणामी सम्प्रदाय के अक्षरातीत ब्रह्म श्रीराज राजेश्वर श्री कृष्ण है। परम धाम की ब्रह्मांगनाओ एवं अक्षर ब्रह्म को दु.ख रूपी बाललीला देखने की इच्छा हुई। अतः पूर्ण ब्रह्म को नये ब्रह्मांड की रचना करनी पडी। क्षरब्रह्मांड की रचना हुई और उसमें व्रज मण्डल की स्थापना की गई। गौलोक धाम मे परब्रह्म ने श्री कृष्ण के रूप मे जन्म लिया। काल माया के ब्रह्मांड मे अखंड रास का खेल हुआ। ब्रह्मांगनाएँ अपने मूल धाम को भूल गयी। श्री कृष्ण ने अपनी योग शक्ति से तीसरे ब्रह्मांड की

---

२७३. श्री सांवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० १०६

रचना की। व्रजलीला के बाद व्यावहारिक रासलीला हुई। अक्षर ब्रह्म के हृदय में जो लीला हुई वह वास्तविक, नित्य वृन्दावन की प्रतिभासिक और काल माया के प्रजा मण्डल में जो रासलीला हुई वह व्यावहारिकी मानी जाती है। काल माया के तीसरे ब्रह्माण्ड में ब्रह्मात्मायों ने मनुष्य जन्म विविध जातियों में धारण किया और मोह माया में परब्रह्म को भूल गयीं। उन्हें जागृत करने के लिए ही प्रणामी सम्प्रदाय के आदि गुरु देवचन्द जी का अवतरण हुआ ऐसी साम्प्रदायिक मान्यता है। सम्प्रदाय 'माहेश्वरतन्त्र' (अ० ४०) के आधार पर मानता है कि ब्रह्म धाम में प्रभु ने ब्रह्म शक्तियों को आदेश रूप में सूचित किया था कि हे ब्रह्मात्मा, कदाचित् मोहरूपी समुद्र में आप कभी निमग्न हो जाएँगी तो उस समय सुन्दरी नामक शक्ति (देवचन्द्र) साक्षात-स्वरूप में आप सबका उद्धार कर जागृत करेगी। यह परम तेज स्वरूपा सुन्दरी शक्ति मारवाड़ देश के उमर कोट नामक ग्राम में किसी पवित्र कुल में नर रूप धारण करेगी। चन्द्र नाम से अर्थात् देवचन्द्र इस नाम से लोक में प्रसिद्ध हो सबकी अशुभ गति-जन्म मरण रूप आवागमन को मिटा देगी। 'साथ ही, अथर्ववेद (काण्ड ५ सूक्त १ म० ३) के आधार पर यह भी माना गया है कि श्री देवचन्द जी अपने आत्म बल को उन सबों के लिये श्री प्राणनाथ जी के शरीर में जोड़ देंगे। इसलिए कि उनकी शुद्ध दीप्ति सुवर्ण के समान फैले।' इस प्रकार स्पष्ट होता है कि, राजस्थान के उमर कोट ग्राम में गुरु देवचन्द जी ने कायस्थ परिवार में जन्म लिया और सात वर्ष की अवस्था से ही धर्म भावना में लीन रहने लगे। राजस्थान छोड़कर कच्छ होते हुए जाम नगर में वे आ गये और १४ वर्ष पर्यन्त एक निष्ठा से श्रीमद् भागवत् का श्रवण-मनन किया। श्री कृष्ण के साक्षात् दर्शन से तारतम्य मंत्र ग्रहण किया और श्री कृष्ण के आदेशानुसार प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना की। सारांशतः विभिन्न परिस्थितियों ने इस सम्प्रदाय के उद्भव में प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य किया।

(ग) प्रणामी सम्प्रदाय और उसका विकास

मनुष्य जीवन और समाज जीवन में मोड़ आते रहते हैं और उन दोनों से संलग्न धर्म का प्रवाह भी मोड़ लेता ही रहता है। हिन्दू-धर्म ने जहाँ पर ऐसे मोड़ लिये हैं वहीं पर वह मूचकस्तम्भ छोड़ता रहा है। ऐसे ही सूचक-स्तम्भ को निशाना बनाकर के कई सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय और पंथ प्रस्फुटित होते हैं। प्रणामी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव भी उक्त परिस्थितियों की आवश्यकता पूर्ति के लिए हुआ।

प्रणामी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक श्री देवचन्द जी थे। लेकिन इसके प्रसार और प्रचार का श्रेय स्वामी प्राणनाथ को ही मिलता है। साहित्य और समाज में यह सम्प्रदाय कई नामों से अभिहित होता है। अर्थात् इस सम्प्रदाय को निजानंदी

सम्प्रदाय और प्रणामी सम्प्रदाय के अतिरिक्त धामी पंथ अथवा धामी सम्प्रदाय,[२७४] मेहराज पथ,[२७५] चाकला पथ,[२७६] खिजडा पथ,[२७७] प्राणनाथी सम्प्रदाय,[२७८] परनामी सम्प्रदाय,[२७९] परिणामी सम्प्रदाय,[२८०] नाम से भी प्रसिद्धि मिली है। गुरु देवचन्द्र जी से तारतम्यज्ञान की प्राप्ति के बाद स्वामी प्राणनाथ ने देश विदेश का भ्रमण किया और फलत उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का एवम् भक्ति पद्धति का प्रचार किया। सम्भव है इस सम्प्रदाय का प्रारंभिक नाम प्रणामी नहीं रहा हो। इसकी प्रारंभिक अवस्था मे कोई नाम नही दिया गया होगा। बीतक साहित्य-पद्धति 'के अनुसार, प्रारंभ से ही इसका' निजानन्द सम्प्रदाय नाम रहा। लेकिन देवचन्द्र जी और प्राणनाथ के अनुयायियों की संख्या बढ़ने पर नामकरण हुआ होगा। समकालीन अवस्था में ही सौराष्ट्र-कच्छ और गुजरात में धामी, खिजडा और चाकला नाम प्रचार मे रहे होंगे। मध्यभारत और बुन्देलखण्ड मे इस सम्प्रदाय के प्रवेश करने के बाद ही प्रणामी सम्प्रदाय, निजानन्दी सम्प्रदाय,[२८१] प्राणनाथी सम्प्रदाय नाम विशेष रूप से प्रचार में रहे होंगे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र जामनगर (नौतनपुरी), सूरत (मंगलपुरी) और पन्ना (पद्मावतीपुरी) है। इस सम्प्रदाय के विकास स्वरूप को स्पष्ट रूप मे समझने के लिए अगर प्राणनाथ को ही एक सीमा चिह्न रूप माने तो उचित होगा। प्राणनाथ के पूर्व इस सम्प्रदाय की स्थिति क्या रही और प्राणनाथ के बाद उसका विकास किस सीमा तक हुआ यह जानना आवश्यक हो जाता है। सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष को चतुर्थ अध्याय मे स्पष्ट किया गया है अतः यहा पर सिर्फ साम्प्रदायिक विकास पर विचार किया गया है।

(क) प्राणनाथ पूर्व स्थिति

गुरु देवचन्द्र जी ने इस सृष्टि मे कैसे जन्म धारण किया इसके संदर्भ में साम्प्रदायिक मान्यता है कि ब्रह्मधाम मे ब्रह्मशक्तियो मे परस्पर प्रेम संवाद हुआ

---

२७४. डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३४
२७५. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० १३७
२७६ वही
२७७. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६०४
२७८ (अ) वही, पृ० ५९३
(ब) बर्न, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया, वा० ४, पृ० २२१
२७९. राजबखश, कीर्तन की वाणी, पृ० १-
२८०. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २
२८१. शास्त्री पोपटभाई येलाराम, श्री प्रणामी धर्मप्रकाश, पृ० ८

था। स्वयं ब्रह्म शक्तियों ने इस विश्व में साक्षात् स्वरूप लेकर जन्म नहीं लिया, लेकिन उस संवाद के परिणाम स्वरूप उनकी आंतरिक वृत्तियों ने शरीर धारण किये और ब्रह्म शक्तियों के नाम से पहचानी जाने लगीं। माया के कारण उन लोगों का ज्ञान भी परिमित हो गया और ब्रह्म धाम को भूल गईं। अब उन ब्रह्म शक्तियों को जाग्रत करना आवश्यक था। इस सन्दर्भ में पार्वती जी ने शिव जी से पूछा तो उन्होंने बताया था कि दिव्य ब्रह्मपुर की वासना रूपी ब्रह्म शक्ति इस जगत में आयेगी और उनमें से एक परम तेज स्वरूप सुन्दरी नामक परमात्मा की अत्यन्त प्रियशक्ति मारवाड़ देश के उमर कोट नामक गांव में कोई पवित्र कुल में-परिवार में पुरुष रूप धारण करेगी, चन्द्र (देवचन्द) नाम से अभिहित होगी। वही सबकी अशुभगति-जन्म मरण के आवागमन को मिटा देगी।[२८२] इस सन्दर्भ में प्राणनाथ जी ने कहा है—

"राम मिलते उमेदा रहिया नित, सो ब्रह्म सृष्टि मत्र आईया ईत।
यामें सुरत श्रीश्यामाजीकी सार, मत्तू महेता घर अवतार॥[२८३]

अर्थात् बारह हजार अंगनाओं को परम धाम में वापस लेने के हेतु श्री श्यामाजी महारानीजी की सुरता ने सुन्दरबाई की वासना के साथ उमरकोट गाँव में गुरु देवचन्द जी ने जन्म लिया। उनके पिता का नाम मत्तू महेता था। उनकी माता का नाम कुँवरबाई था वे जाति के कायस्थ थे—

"कुँवरबाई माताको नाम, उत्तम कायस्थ उमरकोट ग्राम।
आय श्री देवचन्द्रजी नौतनपुरी, सुख सबों को देने देह धरी।"[२८४]

वे सात वर्ष की अवस्था से ही ब्रह्मज्ञान की खोज में विचरने लगे थे। नवरंग स्वामी ने लिखा है—

'केतक दिन दिन लीला करी, तेनी अचरज रूप।
सूरत सब पाषाणकी, खेलें साथ सरूप॥
साथ पिये बोलें चलें, सूरत सब ही सग।
करें आज्ञा श्रीदेवचन्द्रजी, खेलें देव तेही रग॥[२८५]

---

२८२ दिव्य ब्रह्मपुरस्येह ब्रह्मार्द्धतस्य वासना।
तामामेका च परमा सुभगा सुन्दरी प्रियाः॥
मरुद्देशे कुले शुद्धे नरूप सा धरिष्यति।
चन्द्र नामा पुमाल्लोके हरिष्यत्यशुभां गतिम्॥—माहेश्वर तन्त्र

२८३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश, प्र० ३७, चौ० ६१

२८४. वही, प्र० ३७, चौ० ६२

२८५. नवरंगजी, सुन्दरसागर सा प्र० ६, चौ० २५, २६

अति सुन्दर शीतल मदा, खेले कुंवर की गोद।
देखे चरित्र बालके, मन पै पावें मोद ॥[२८६]

माता कुंवर बाई भी धर्म परायण स्त्री थी। मत्तू मेहता व्यापारी थे और व्यापारार्थ भूजनगर (कच्छ) गये थे। गुरु देवचन्द्र जी भी साथ मे गये थे। वहा पर उनकी मुलाकात हरिदास गोसाई से हो गई थी। [२८७] प्रभुरत रहने वाले पुत्र को देखकर माता पिता चिन्तित रहते ही थे, अतः माता-पिता की चिन्ता दूर करने के लिए उन्होने लीलबाई के साथ विवाह कर लिया था—

"माता पिता को देखके, कीनी सगाई ताहि।
आप विवाहे जायके, भोज नगर के माहि ॥
अवस्था धनी देवचन्द्रकी, वरस सत्रह की आय।
अवस्था निज लीलबाई की, वरस पद्रह सोहाय ॥[२८८]

भुज में अनेक सम्प्रदाय के साधुसंतो के साथ उन्होने समागम किया था। लेकिन आत्मा असंतुष्ट रहती थी। अन्त मे हरिदास जी, जो विष्णु सम्प्रदाय के थे, उनको गुरुपद दिया और कृष्ण की उपासना प्रेम पूर्ण रूप से करने लगे थे। आखिर घर का भी त्याग कर दिया। यहां पर उन्होंने कई शास्त्रो का अध्ययन भी कर लिया था। वे सं० १६६३ मे जामनगर आये। यहां पर १४ वर्ष तक उन्होने श्रीमद्भागवत का निष्ठापूर्ण श्रवणमनन किया और जप भी किया। प्राणनाथ जी ने कहा है—

"चौदे वर्षलो निष्ठाश्रध, वचन ग्रहे सारी सनध।
कई जप तप किये वृत नेम, सेवा स्वरूप स्नेह प्रति प्रेम ॥[२८९]

वे जामनगर मे कानजी भट्ट से भागवत् श्रवण करते थे। अखण्ड व्रजरास का वर्णन चलता था तब उनको तीव्र विरह वेदना उत्पन्न होने से कृष्ण ने साक्षात् दर्शन दिये और उन्हे तारतम्य-मंत्र देकर अपनी और देवचन्द्रजी की पहचान सबको करा दी ऐसी साम्प्रदायिक मान्यता है। यह प्रसंग स० १६७८ के आश्विन, १४वी रविवार के दिन हुआ था।[२९०] ४० वर्ष की आयु मे उनको अन्तिम बोध हो गया।[२९१] उनके प्रथम शिष्य गांगजी भाई हुए और उन्हे दर्शन दिये—

---

२८६. वही, प्रकरण १०, चौ० २६

२८७. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६४

२८८. नवरंगजी, सुन्दर सागर, प्र० १०, चौ० १०४, १०५

२८९. प्राणनाथ, कुलजम स्वरूप, प्रकाश, प्र० ३७, चौ० ६४

२९०. वही, पृ० ४८–४९

२९१. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६४

"प्रथम दर्शन पीवुने दीनो, गागजी भाईकी शरणो लीनो ।[२६२]
"गागजी भाई मिले इन अवसर, तिन ये वानी लई चित धर ।"[२६३]

गागजी के कारण ही प्राणनाथ उनके सम्पर्क में आये और वे उनकी सेवा करने लगे थे। आखिर उनको तारतम्य-मंत्र दिया और भाद्रपद शुक्ल १४ बुधवार सं० १७१२ को उनका धामगमन हुआ। इस संदर्भ में नवरंग स्वामी ने अपनी "बीतक" में लिखा है—

"नौतनपुरी बिहारीजी थाने, मध्य देन जी साहेब जाने।
संवत सतर बारोतरा में, विधि कही पधारे धामें ॥
घर जाय वे दर्से सही, पवर लेऊंन सायकी कही।
भामो मास सुकल पख लेखी, चतुरदसी बुधवारी पेखी ।[२६४]

प्रणामी सम्प्रदाय ने गुरुदेवचन्दजी को धामगमन से पहले स्थिर सिद्धान्त भले ही स्थापित न कर दिया हो लेकिन अपने अनुयायी पैदा कर लिए थे। संभव है, उस समय यह मत विशेष रूप से जामनगर में ही प्रचलित रहा होगा। इसका थोड़ा बहुत प्रचार नवानगर, धोल और जामनगर के आसपास वाले गावों में तथा भुजनगर (कच्छ) में रहा होगा। उस वक्त नौतनपुरी ही एक केन्द्ररूप स्थान था।

(२) प्राणनाथ-सम्प्रदाय संवर्धक

गुरु देवचन्दजी की इहलीला संवरण के बाद सम्प्रदाय का बोझ बिहारीजी और प्राणनाथजी पर ही आया। प्राणनाथ ने समझ रखा था कि ब्रह्म-वासनाओं को जागृत करने के लिए और सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने के लिए देशभ्रमण आवश्यक है। बिहारीजी को जामनगर का केन्द्र सौंप कर देशभ्रमण शुरू कर दिया और सम्प्रदाय का प्रसार करते रहे। उनके इस परिश्रम स्वरूप प्रारम्भ में कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात में इस सम्प्रदाय को जन समाज में प्रतिष्ठा मिली तथा कई अनुयायी हुए। प्राणनाथ ने दिल्लीगमन करने के हेतु जब सूरत शहर छोड़ा तब गुजरात भर में इस सम्प्रदाय ने अपना स्थान निश्चित कर लिया था यह निःशंक है। इस समय सम्प्रदाय ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त भी दृढ़ कर लिये थे। पहले से ही इस मत ने सर्वांगी रूप नहीं रखा था, लेकिन दिल्लीगमन के वक्त प्राणनाथ के अनुभवों ने इस सम्प्रदाय को अधिक उदारमतवादी और मानवतावादी बना दिया होगा।

---

२६२ नवरंगजी, सुन्दर सागर, प्रकरण, ३०, चौ० २
२६३. प्राणनाथ कुलजमस्वरूप, प्र० ३३, चौ० ७४
२६४ नवरंगजीकृत बीतक, प्रकरण १२, चौ० २८–२९

प्राणनाथ ने छत्रसाल का गुरुपद प्राप्त करने से पहले सर्वधर्म सम्मेलन के सहारे प्रणामी सम्प्रदाय को भारतीय धर्म सम्प्रदायों में अच्छा स्थान दिलाया और दिल्ली निवास दरम्यान उन्होंने वहां पर इस सम्प्रदाय के कई अनुयायी बना लिये थे। बुन्देलखण्ड में महाराज छत्रसाल का गुरुपद प्राप्त करने पर प्रणामी सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा और बढ़ गयी। प्राणनाथ ने बुन्देलखण्ड के बुन्देलों में न सिर्फ धार्मिक प्रेरणा जगायी लेकिन राजनीतिक और धार्मिक चेतना को उद्बुद्ध करने में सहायक हुए। राष्ट्रीयता के प्रतीक छत्रसाल के वे गुरु, सहायक के रूप में एक मात्र प्राणनाथ थे।[२६४] उस वक्त उनके प्रमुख शिष्यों में लालदासजी, केसोदास, मुकन्ददास अर्थात नवरंग स्वामी और छत्रसाल थे। प्राणनाथ के धामगमन के समय इस सम्प्रदाय के सहस्रों शिष्यों की उपस्थिति थी अर्थात अपने धामगमन से पूर्व उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय के कई अनुयायी बना लिये थे और सम्प्रदाय को सगठित स्वरूप दे दिया था।

प्राणनाथ की इहलीला समाप्ति के बाद प्रमुख शिष्यों ने सम्प्रदाय के विकास का प्रयत्न जारी रखा था। सम्प्रदाय के पूज्य ग्रन्थ का सकलन केसोदास ने किया।[२६५] इन प्रमुख शिष्यों ने नेपाल, दार्जिलिंग, गाहाटी, सिलीगुडी, काशी, प्रयाग, पजाब, बघेलखंड, कानपुर, बिहार आसाम आदि प्रदेशों में प्रणामी सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार किया। गुजरात में दूसरा प्रमुख केन्द्र सूरत बनाया गया। इस प्रकार पन्ना, सूरत और जामनगर प्रणामी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रों के रूप में बनाये गये।

प्राणनाथ अपने समय से बहुत आगे थे। सांस्कृतिक दृष्टि से प्रणामी सम्प्रदाय और प्राणनाथ का स्थान भारतीय समाज में महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। लेकिन इस सम्प्रदाय की इतनी प्रतिष्ठा न हुई, कि जितनी होनी चाहिये। प्राणनाथ व प्रणामी सम्प्रदाय इतना उदारमतवादी लगा कि बाद की दो शताब्दियों ने इसे अपनाने में सकोच रखा। जाति पांति, छुआछूत, मूर्तिपूजा आदि बाह्याडंबरों के सकीर्ण कठघरे में बन्द हिन्दू समाज श्री प्राणनाथ और उनके विचारों को समझने की शक्ति खो बैठा।[२६७] एक नग्न सत्य यह भी है कि "दुखमे सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय" के अनुसार बाद में राजकीय दृष्टि से जनजीवन अशात न रहने पर और समन्वयात्मक भावना के प्रसार की आवश्यकता न लगने पर इसका प्रचार न हुआ हो यह भी सभव है। इस सम्प्रदाय ने हस्तलिखित ग्रन्थों को प्रकाश में लाने की कोशिश नहीं की और वासना सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता के प्रति लोगों में

---

२६५. प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ६

२६६. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परंपरा, पृ० ५६८

२६७. प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १७

श्रद्धा न जगी हो यह भी सभव है। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे एक विवाद गुजरात मे जगा कि प्राणनाथ के स्थान पर गुरु देवचन्दजी को और विहारीजी को ही पूज्य मानना चाहिए और इस प्रकार मानने वाले लोगों ने "निजानद मडली" या "देव चदजी सत्सग मंडली" की स्थापना भी की थी।[२९८] वैसे पन्ना के मदिर मे कलश के स्थान पर पजा होने के कारण तथा वहा प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी की मृत्यु के बाद समाधि दी जाती थी, इसलिये इस सम्प्रदाय को इस्लाल धर्म का सम्प्रदाय होने का भ्रम फैलाया गया था।[२९९] इन भ्रमो के फलस्वरूप ही ई० सन १८८० और १९०८ मे नेपाल मे से इस सम्प्रदाय को निर्वासित कर देने का हुक्म किया गया था।[३००]

किन्तु बीसवी शताब्दी के मध्य से इस सम्प्रदाय ने नया जीवन लेना शुरु किया है और उसने लोगो का ध्यान आकृष्ट करना शुरु कर दिया है।

---

२९८. मिस्त्री रामजी मोजा, श्री प्रणामी धर्मप्रकाशीनो पुस्तकने उत्तर अरजी भा० २ (गुजराती) (१९२५), पृ० ४–५

२९९. डा० भगवानदास गुप्त, महाराज छत्रसाल बुन्देला, पृ० १११

३००. Panna Gazetteer, pp. 37–38.

तृतीय अध्याय

प्रणामी सम्प्रदाय की साहित्यनिधि

मध्यकालीन हिन्दीसाहित्य भक्तो एवम् सतो की वानियो से समृद्ध है। अपने-अपने धर्ममत को उन्होने अपने साहित्य मे अभिव्यक्त किया। भक्ति की सगुण और निर्गुण धारा के माध्यम मे ही यह अभिव्यक्ति हुई। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भक्ति का सर्वप्रथम प्रतिपादन महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता मे ही होता है। महाभारत के भागवतधर्म का विकास श्रीमद्भगवद्गीता में मिलता है। लेकिन इन दोनों मे चित्रित कृष्ण भिन्न-भिन्न होने की मान्यता भी है। वस्तुतः कृष्ण के गोपीजीवन का विस्तृत निरूपण श्रीमद्भागवत पुराण मे हुआ है। मध्यकालीन भक्तिसाहित्य मे कृष्ण का पौराणिक रूप ही विशेषतः स्वीकार्य रहा है। स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय के साहित्य ने कृष्ण की नित्य एव दिव्य ब्रह्मधाम की वास्तवीलीला के ब्रह्मानन्द को चित्रित किया है।

माधुर्योपासना वैष्णव भक्तो की भक्ति की चरमसीमा है। डा० रतिभानुसिंह "नाहर" लिखते है, नारायण (कृष्ण), नारद, पांचरात्रिको, कृष्णद्वैपायन, वेदव्यास, शाडिल्य आदि द्वारा प्रचारित एवम् प्रसारित भागवतधर्म जब धार्मिक आदोलन का रूप ग्रहण करता हुआ बहुसख्यकों एव विभिन्न देशी एवं विदेशी जातियों की वस्तु बनने लगा तो स्वभावतः इसमे कुछ नवीन तत्व सम्मिलित हो गये। इन्ही नवागत तत्वों मे से कृष्ण तथा राम के अत्यन्त रसिक रूप की कल्पना एक उल्लेखनीय तत्व है।[1] प्रस्थानत्रयी, रासपंचाध्यायी और मधुरोपासना के प्रचारक वैष्णव आचार्यों से प्रेरणा पाकर कृष्ण-कवि प्रेमलक्षणा भक्ति का गुणगान गाते रहे। लोकानुभूत स्त्री-

१. डा० रतिभानुसिंह "नाहर", भक्ति आदोलन का अध्ययन, पृ० २०७

पुरुष के प्रेम संबंध की व्यापकता को देखकर ज्ञानी साधकों ने भी ईश्वर के प्रति अपने आध्यात्मिक संबंध की अनुभूतियों को लौकिक शृंगार की भाषा तथा अन्योक्तियों में प्रकट किया है, किन्तु इस प्रेम का आलम्बन लोकनायक न होकर ईश्वर या ईश्वर का कोई अवतरित रूप होता है।[2] इसी हेतु कृष्णकवियों के लिए राधा-कृष्ण का कमनीय सौंदर्य पर्याप्त था।

परमप्रेमरूपाभक्ति का लक्षण बताते हुए नारद ने कहा है, वह अपने समस्त कर्मों के प्रति अर्पण करने तथा उनके किंचित मात्र भी विस्मृत हो जाने पर भी परम व्याकुल भी हो जाने में दीख पड़ती है। वह ठीक उसी प्रकार की है, जैसी व्रज की गोपियों की भक्ति में देखी जाती है।[3] वस्तुतः जो शृंगाररस जड़जगत में निकृष्ट है, वही शृंगाररस भगवद्विषय होने पर मधुरस हो जाता है, यद्यपि भक्तिशास्त्र की मर्यादा के अनुसार इसे शृंगार नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इनके लिए काम और प्रेम में भेद नहीं है।[4] प्रिय का प्रिय से संयोग या सम्मेलन ही माधुर्य है। डा० श्यामनारायण पांडेय ने कहा है, जिन भगवत्-प्रेमियों के अन्तस्तल में भगवान के प्रति सर्वस्व समर्पण करने का भाव है, जो समस्त काम सुख को लौकिक दृष्टि से प्रधानता नहीं देते तथा जिनकी समस्त इन्द्रियाँ प्रगाढ इष्टदेव के परम सौंदर्य के परमरसयुक्त परमानन्द को प्राप्त करने के लिए आतुर हो रही हैं, वे ही परमब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण के प्रति माधुर्य उपासना के साधक होते हैं।[5] गोपिकाओं की भक्ति लौकिकदृष्टि से परकीयाभाव की होने पर भी वह आत्मिक दृष्टि से स्वकीया थी। प्रियतम श्रीकृष्ण का निरन्तर चिंतन और स्मृति, मिलन की तीव्र उत्कण्ठ और रागदृष्टि का प्रभाव ही परकीयाभाव की मधुर भक्ति है। यही परकीयाभाव ही वैष्णवों का आदर्श हुआ और इसी का आधार लेकर आत्माएँ अपने आप को सखीभाव से श्रीकृष्ण को समर्पित करती रही हैं।[6] भागवत को वेदों का सार माननेवाले[7] प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय के अन्य भक्तों ने हिन्दी के कृष्णभक्तकवियों की भांति गोपिकाओं की मधुर-भक्ति के संयोगपक्ष और वियोगपक्ष का सुन्दर चित्रण किया है।

---

२. डा० शशि अग्रवाल, हिन्दी कृष्ण काव्य पर पुराणों का प्रभाव, पृ० १४६

३. नारद भक्ति सूत्र, २–३

४. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० २६१

५. डा० श्यामनारायण पांडेय, हिन्दी कृष्णकाव्य में माधुर्योपासना, पृ० ४६

६. S. K. De, Vaishnava Faiths & Movements, p. 54

७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश, चौ० ४
वेद को सार कह्यो भागवत, यह उपजा शास्त्रों के अन्त।

प्रणामी साहित्यनिधि के इन भक्तो का हिन्दी साहित्य के इतिहास मे नामोल्लेख नही हुआ। मिश्रबंधु आदि ने इनका नामोल्लेख किया भी है तो अन्य सम्प्रदाय के कवियों के रूप मे। यहाँ पर इस साहित्य को दो विभागो मे विभक्त किया गया है—१. प्राणनाथ और प्राणनाथ-पूर्व साहित्य और २. प्राणनाथोत्तर साहित्य।

प्राणनाथ और प्राणनाथपूर्व साहित्य

(क) गुरु देवचन्दजी द्वारा लिखित मूल तारतम्यवाणी

आज तक यही माना जा रहा है कि स्वामी प्राणनाथ से पूर्व प्रणामी सम्प्रदाय मे कोई साहित्य नही लिखा गया। जब कभी प्रणामी सम्प्रदाय के साहित्य पर विचार होता है या किया गया है, प्राणनाथ स्वामी लालदास या नवरग के नामों का सदर्भ ही लिया जाता है। इतना स्पष्ट है कि प्राणनाथ ने ही अपनी साहित्यनिधि से सम्प्रदाय को निश्चित स्वरूप दिया। लेकिन उनसे पूर्व गुरु देवचन्दजी ने भी कुछ लिखा होगा ऐसा मानने लेने के लिए प्रत्याश मे भी प्रमाण मिलते हैं। सं० १९८० मे सप्रदाय के के एक पक्ष की पत्रिकाओ से[८] यह शका उठायी गयी है कि देवचन्दजी (सुन्दरबाई) का नाम काटकर प्राणनाथ ने अपना नाम रख दिया है। लेकिन इस बात से संप्रदाय के विद्वान सहमत नही होने पर भी इतना अवश्य स्वीकार करते हैं[९] कि देवचन्दजी का मूल तारतम्य का होना स्वाभाविक है, क्योकि उन्ही के उपदेशो का विस्तार प्राणनाथ ने "कुलजमस्वरूप" मे किया है। कहा जाता है कि गुरु देवचन्दजी के श्रीकृष्णदर्शन का वर्णन ही मूल तारतम मे हुआ है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार आश्विन कृष्ण चतुर्दशी सं० १६७८ के दिन उनको जामनगर के श्यामसुन्दर जी के मंदिर में ऐसा प्रतीत हुआ कि एक महान अद्भुत तेजपुञ्ज उनके सामने उपस्थित है। कृष्ण के इस मूल स्वरूप ने इस प्रकार दर्शन दिये और बाद मे कृष्ण-देवचन्दजी के बीच ब्रह्म आदि के बारे मे चर्चा हुई। अर्थात् तारतम की मूलवाणी स० १६७८ के बाद ही कभी लिखी गई होगी।

(ख) स्वामी प्राणनाथ की जोशवाणी (बेहोशवाणी) और होशवाणी

"रास" नामक रचना का प्रारम्भ "हवे पेहेलों मोहजलनी कहू बात" से होता है। यह मोहजल ही माया है जो चारो ओर व्याप्त है। देवी देवता तक इसके प्रलोभन मे आने से न बचे। अतः प्रभु की शरण मे जाना ही श्रेयस्कर है। तदनन्तर प्रभु

---

८. (अ) भाई रामजी भोजा द्वारा प्रकाशित पत्रिका, सं० १९८०, पृ० १०
(ब) श्री प्राणनाथ सदेश, जागृति अंक, पृ० ६

९. पं० प्यारेलाल और श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज के प्रत्यक्ष मुलाकात के आधार पर।

को शात करो।[११] अन्तत. प्रियतम प्रियतमा की पवित्र आत्मा को अनन्यता के वश हो जाते हैं। इसी रचनान्तर्गत बारहमासी का वर्णन है। इसमे देवचन्दजी का आरोप कृष्ण मे करके और अपने आपको इन्द्रावती के रूप मे चित्रित करके विरह व्यक्त किया है। इस प्रकार एक साथ गोपीकृष्ण का विरह और गुरुशिष्य का विरह चित्रित हुआ है।

"कलश" (गुजराती) रचना मे सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म की खोज, जगत, विविध धर्ममत, वेदोक्त कर्मसाधना, पुरुष-प्रकृति, अवतारो की मीमांसा, श्रीकृष्ण त्रिधालीला, आदि तत्वों का विश्लेषण किया है।

"प्रकाश" (हिन्दुस्थानी) रचना वस्तुतः गुजराती मे लिखित उक्त रचना का ही अनुवाद है। आत्मसाधना के लिए उपयोगी तत्वो को इसमे लिया गया है, इसी-लिए स्वय प्राणनाथ ने अनुवाद किया। फिर भी भावविस्तार के कारण गुजराती रचना से इस अनूदित रचना मे चौपाइयाँ ज्यादा है। इसी रचना मे "कातनी का दृष्टात" नामक प्रकरण है। माना जाता है कि इसी दृष्टात का पू० गाधीजी पर गहरा प्रभाव पडा था जो कि अपने बचपन मे माताजी के साथ सुदामापुरी (पोरबन्दर) के प्रणामी मंदिर मे जाते थे। लक्ष्मीजी का दृष्टात, शुकदेव महिमा, बेहदवाणी, प्रगटवाणी जैसे महत्वपूर्ण प्रकरण या अंश इसी रचना मे आते हैं। अन्यत्र कहा जा चुका है कि कई विद्वान बेहदवाणी और प्रगटवाणी को उनकी "प्रकाश" से कोई अलग रचना मानते हैं। लेकिन वास्तव मे वे "प्रकाश" के प्रकरण मात्र है।

"कलश" (हिन्दुस्थानी) रचना भी वस्तुतः गुजराती मे लिखित उक्त रचना का ही अनुवाद हैं। "प्रकाश की तरह इसमे भी विषयविस्तार के कारण कुछ प्रकरण बढ गये है। ब्रह्माड वर्णन, प्रेममार्ग, माया का स्वरुप, विशिष्ट आत्माएँ, गोकुल लीला, जागनी लीला का इसमें भी वर्णन किया गया है। इन्होने यही उपदेश किया है कि[१२] माया दुखदायी है। इसे पकड़ोगे तो दुःख ही पाओगे। उससे बचने का

---

११. प्राणनाथ, कुलजमस्वरुप, षट्ऋतु, पृ० १, चौ० १०–११

भारी वहेली से लेजो मार, वालाजीनी हू विरहणी रे।
मुने दिवस दोहेला जाए, वसेके रैणी रे।
इंद्रावती कहे अवगुण, विसारों अमतणा रे।

१२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरुप, कलश, प्र० ४३ चौ० २६

लगोगे जो दुख को तो दुःख तुमको लागसी।
याद करो निज सुख, तो दुख पीछे भागसी॥

के बीच प्रचलित मिथ्या आडंबरों का खंडन करता है वहाँ धर्म-धर्म के बीच उत्पन्न होने वाले विषयवाद को नेस्तनाबूद कर धार्मिक भावना के बीच आध्यात्मिक सामंजस्य के पवित्र सोपान का निर्माण करता है।

"किरतन" (कीर्तन) रचना के पद भ्रमण के समय पर भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर लिखे गए हैं। उसमे विभिन्न मतवादियो के साथ चर्चा, पौराणिक मतवाद का स्पष्टीकरण और वेदान्त तत्त्वों को प्रतिपादित किया गया है। लेकिन वेदांत और पुराणों से सम्बन्धित "किरतन" अधिक प्रभावशाली हैं। इसमे नाना राग-रागिनियों मे छोटे-बड़े कई "किरतन" हैं। इन किरंतनो का उपदेश सर्वदेशीय एवं सार्वजनिक है। "सनध" में सच्चे मुस्लिम की पहचान थी और "किरंतन" में सच्चे मनुष्य की पहचान वे कराते हैं।[१७] इसी प्रकार, नम्रता, श्रद्धा, कायरता का परित्याग, आत्मबल-प्राप्ति के सदर्भ मे अपने विचार व्यक्त किये हैं।

"खुलासा" रचना मे स्वामी प्राणनाथ ने कुरान, जिसको वे खुदा का फरमान (आज्ञापत्र) मानते है, उसका स्पष्ट रूप प्रगट करते हुए ससार मे धार्मिक वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया है। पूर्वोक्त ग्रन्थों मे माया, ब्रह्म, जीव आदि का जो विवेचन किया है, उन्ही का अवैदिक ग्रन्थो के आधार पर इसमे विवेचन किया गया है। स्वामी प्राणनाथ के समन्वयवादी विचारो की इसमे स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः सभी धर्मों का मुख्य उद्देश्य उस परम प्रेमरस को प्राप्त करना ही है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्मों के सिद्धान्तो मे भिन्नत्व नही है। जो कुछ वैदिक ग्रन्थो मे कहा गया है, वही अवैदिक ग्रन्थो मे भी है —

जो कुछ कह्या कतेबने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाये भेद॥
बोली सबों जुदी परी, नाम जुदे परे सबन।
चलन जुदा कर दिया, ताथे समझ न परी किन॥
ताथे भई बड़ी उरझन, सो सुरझाऊं दोऊ।
नाम निशान जाहेर कहं, जो समझे सब कोऊ॥[१८]

---

१७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० १५, चौ० ४-५

सात बेर अस्नान करो, पहनो ऊन उत्तम कामल।
उपजो उत्तम जात मे, पर जीवड़ा न छोड़े, बल॥
सौ माला वायो गलेमे, द्वादस करो दस बेर।
जो लों प्रेम न उपजे पिउ सों, तो लों मन न छोड़े फेर॥

१८. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० १२ चौ० ४२-४४

"खिलवत" रचना में प्रेमी-प्रियतम-संवाद है। अहभाव का दमन, ब्रह्मज्ञान की महिमा, ब्रह्मसृष्टि (उत्तमजीव) का सृष्टि मे अवतीर्ण होने का कारण, आदि बातों का इसमे समावेश किया है। परमधाम के दर्शन की आतरिक चाह अभिव्यक्त हुई है। परमधाम की कल्पना करते हुए वे कहते हैं कि वहाँ तो ज्ञान के सागर भरे हैं, भान के समान ही उसके प्रेम के सागर हैं। स्वयं साकी शराब उड़ेले जा रहे हैं, अपने प्याले से लेकर भरते जाइए—

साकी पिलावे शराब, रूहें प्याले लिजिए।
हक इश्क का आब, भर भर प्याले पीजिए ॥[१६]

"परकरमा" (परिक्रमा) रचना मे आत्मा के परमधाम में विचरण का का सासारिक शब्दो मे वर्णन किया है। बुद्धि, जोश, बल या ज्ञान वहाँ नही पहुँचा सकते क्योंकि वह प्रेम-भूमिका है। इसीलिए वे प्रेम को परमधाम की सैर करवा देने की बिनती करते हैं—

अब आओ रे इश्क मानु हाम, देखूं वतन अपना निज धाम।
करूं चरण तले विश्राम, बिलसू पियोजी सों प्रेमकाम ॥[२०]

प्रेम से यह बिनती करने का कारण यही है कि वे कहते हैं—

"पथ होवे कोट कलप, प्रेम पहुचावे मिने पलक"।

इस प्रकार परमधाम के पच्चीस पक्ष के अन्तर्गत रंगमहल, फूलबाग, महान वन, पुखराज यमुनाजी के सात घाट, अक्षर धाम, सुधा सरोवर, जवाहिरों की नहरें और महल, चार हार-हवेली, माणिक पहाड, आठ सागर और आठ भूमि खड का वर्णन किया गया है। परमधाम की इन चीजो के द्वारा वहाँ के परमसौंदर्य का वर्णन दिया गया है। उन्होने परमधाम के प्रेमियो के अपूर्व प्रेम का परिचय दिया है। आत्माओं के प्रेमभाव, स्नेह सेवा, एकता, अलौकिकता, आहार-विहार, गतिस्थिति आदि अपूर्व दिव्यता का विस्तार से वर्णन किया है। परमधाम की सभी सामग्री शोभा और प्रेम से परिपूर्ण हैं। प्रेममयी ब्रह्मसृष्टि को ही ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण परमधाम मे विचरण करने का अधिकार है।

"सागर" रचना मे "परकरमा" में बताये गए आठों सागर का ही विस्तार से वर्णन है लेकिन सागरो के रूपक मे पूर्णब्रह्म सच्चिदानद के अप्राकृत गुण और उनकी असीमता का वर्णन करते हुए अलौकिक दिव्यता की ही अभिव्यक्ति हुई है। पूर्ण पुरुषोत्तम युगल स्वरुप का दिव्य शृंगार का और ब्रह्मागनाओं के शृंगार का

---

१६. वही, खिलवत, प्र० ८ चौ० १
२०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरुप, परकरमा, प्र० ३ चौ० १

चित्रण किया गया है। सच्चिदानंद स्वरूप का वर्णन करते वे अघाते नही, जिस अंग का वर्णन करते हैं आत्मा का व्ही अंग प्रभुमिलन के लिए छटपटाने लगता है—[२१]

नैन श्रवण मुख नासिका, मुख छबि अनि सुंदर।
देखत ही आशिक अंगो, चुभ रहत हैं हैयड़े अंदर।।

इस प्रकार आठों सागर के गूढार्थ का विवेचन हुआ है। नूर सागर का मूलस्थान मे, नीर और क्षीर सागर का सखियो की शोभा और ऐक्य में, दधिसिन्धु से युगलस्वरूप राधाकृष्ण के शोभाशृंगार मे, मधुसिन्धु का प्रेम के साथ घृतअर्णव का ब्रह्मविद्या के साथ, रससागर के ब्रह्मागनाओ के संबंध मे और सर्वरस सागर को कृष्ण (श्रीराजजी) की दया के साथ अन्तरात्मक तुलना की है।

"सिनगार" (शृंगार) रचना में आत्मा के समक्ष सच्चिदानद परब्रह्म नखशिखान्त शृंगार और अंग-उपांगों का पृथक-पृथक सौंदर्य, वस्त्रालकारो की दिव्यता का विभिन्न रूपों मे, प्रेम-प्रीत, कृपा-कोमलता, कला-कौशल्य, नीति, बलविद्वता और अपूर्वता का वर्णन किया है। ब्रह्मांगना (भक्तों) के धर्मकर्म, लक्षण और अन्वेषण का भी प्रतिपादन करते हुए उन्हे ससार से परमधाम जाने के लिए प्रेरित किया है।

परब्रह्म के चरणों की शोभा, गुण कोमलता का वर्णन कैसे हो, जब आत्मा एक नख की ज्योति देखकर दग रह गई—

सखी री तेज भरी आकाश में, नखजोत निकसी चीर।
ज्यो सागर छेद आवत, लहरें निर्मलका नीर।।[२२]

"सिन्धी" रचना में प्रभु से बिछुड़ी आत्मा जब प्रयत्न करने पर भी प्रभु से मिल नहीं पाती, तब निराश होकर बैठ नही जाती। लेकिन प्रभु को सहायता के लिए पुकारती है, उनकी शक्ति और आज्ञा को चुनौती देती है। इतना तक कह डालती है कि मेरे प्रेम की कमी नहीं, आपके हुक्म की ही देर है, वरना मैं कब से जाग्रत हो चुकी होती। खेल का ब्यौरा, विनती, न्याय, और फरियाद और हमारा अपराध इन चार मुख्य बातों को लेकर इसकी रचना की गई है।

"मारफतसागर" रचना में सरियत के बन्धनों में जकड़े हुए "कुरान" के धार्मिक सिद्धान्तो का आध्यात्मिक विश्लेषण किया गया है। मारफत आत्मा का मुक्तावस्था का नाम है। "कुरान" में आखिरी जमाने के सूचक सात निशानों का उल्लेख आया है, जो मगरक और मगरब सूरज, याजूजमाजूज, दाभ तुल अर्ज, दज्जाल

२१. वही, सागर, प्र० ५, चौ० ५१
२२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, सिनगार, प्र० ५ चौ० १

नाम से हैं। उन्हीं सात तत्वों का वैदिक ग्रन्थों में वर्णित अंतिम युग के प्रसंगों से संगति कर, धर्म की विभिन्नता के समन्वय की उच्च भावना उत्पन्न करना ही इस रचना का प्रधान उद्देश्य है। खिल्वत की बातें, तारतम, फिरके, कयामत के सात निशान, छः दिन की पैदाइश आदि बातों को इसमें विस्तार में लिया है।

प्राणनाथ ने कहा है, जब से ब्रह्माड बना है परमात्मा के अंश में उत्पन्न अवतार-पैगम्बर ब्रह्मज्ञान को संकेतो में बताते रहे—

जमाना खाली नहीं बिना महमदी सोय।
करत भवनमें रोशन, चिराग नवीकी सोय ॥[२३]

"कयामतनामा" (छोटा) में आत्मजागृति पैगम्बरी आदि पर प्रकाश डाला गया है। उपदेशवाणी को पढ़-सुन कर भी जो आत्मा जागृत न हो, वह मोमिन नहीं है और ऐसे लोगों से किनारा करना ही अच्छा है—

यो इल्म समझावते, जो कोई न समझत।
तिन मजाजी दिलको, जिनकरो नसीहत ॥[२४]

"कयामतनामा" (बड़ा) में कुरान के गुप्त भेदों को खोला गया है। दश जोरवक्रो का विवरण देते हुए जीवात्मा ब्रह्मज्ञान के द्वारा अपने आचरण के अनुसार आठ प्रकार की मुक्ति के द्वारों से जीवन मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं यही कयामत का सही अर्थ है। इसमें भी इमाम मेंहदी और निष्कलंक बुद्धावतार पर स्पष्टता की है।

प्राणनाथ की होशवाणी के ग्रंथ कुरान के जवाब सवाल, मेरामीराजी का सवाद, तीसरा कयामतनामा, कुरान की पत्रिकाएँ, आमिल मारफत, छत्रसालप्रबोध आदि में मुख्यरूप से हिन्दुमुस्लिम धर्म की एकता, सर्वधर्मो का मूल रहस्य, कुरान-पुरान के समानतत्त्वों जैसी बातों पर ही प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों में एक ही बात भिन्न-भिन्न ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः दार्शनिक विचारों को ही एक या अन्य ढंग में स्पष्ट करने के हेतु होशवाणी की छोटी-छोटी रचनाएँ लिखी गई हैं। वैसे भी इन रचनाओं का विस्तृत विवेचन करना असंभव है, क्योंकि होशवाणी की सभी रचनाएँ आज उपलब्ध नहीं होतीं।

(ग) करुणावतीकृत तारतम्यसागर

इस तारतम्यसागर ग्रन्थ के संदर्भ में आज साम्प्रदायिक विद्वान प्रायः मौन रहते हैं कहीं पर इसका विस्तृत उल्लेख भी नहीं हुआ। श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी ने इस

---

२३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, मारफतसागर, प्र० १४ चौ० ७६
२४. वही, छोटा कयामतनामा, प्र० १, चौ० ८८

पर प्रकाश डालने की कोशिश की थी। फिर भी इसके संदर्भ में विशेष जानकारी नहीं मिलती। श्री मगलदासजी महाराज के अनुसार, कसारा जयरामभाई ही करुणावतीजी के अवतार हैं, जिन्होने सुन्दर ललित शब्दो मे "तारतम्य सागर" ग्रन्थ बनाया है।[२५] लेकिन उक्त ग्रन्थ मे "प्रेमी तुलाराम बलिहारी" "तुलाराम पिया पर वारी" ऐसी छाप बार-बार आती है। ऐसा श्री कृष्णप्रियाचार्य का का मत है। माना जाता है कि तुलाराम भट्ट सूरत के ब्राह्मण थे और वल्लभसप्रदाय के पुरुषोतमदास के शिष्य थे। प्रारंभ मे वे पुष्टिमार्गी थे और बाद मे गुरु देवचन्द्र के सिद्धान्तो को मानने लगे थे। उन्होंने अपनी रचना मे घोषित किया है कि भूतल पर मेरे स्वरूप का नाम तुलजाराम है।[२६] अर्थात् इतना स्पष्ट है कि करुणावती कृत "तारतम्य सागर" ग्रन्थ स्वामी प्राणनाथ के समकाल मे ही रचा गया है। इनकी रचनाओ मे तारतम्यमसागर, श्री परमधामना पच्चीस पक्ष और महाकरण की प्रश्नोत्तरी का का उल्लेख मिलता है। अन्तिम दो रचनाओं में वल्लभ सम्प्रदाय और गुरु देवचन्दजी के दार्शनिक विचारो का समन्वयात्मक चित्रण किया गया है।

(आ) प्राणनाथ-पार्यंती साहित्य

स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के अतिरिक्त उनके कई शिष्यो एवम् सम्प्रदाय के अन्य सन्तो अनुयायियो की अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है। विशेषतः इन सब की रचनाओ मे गुरु देवचन्द्रजी स्वामी प्राणनाथ के जीवन, कार्य या विचारो को अपने ढंग से प्रस्तुत किया गया है या कृष्ण-राधा के प्रति उत्पन्न भक्तिभावना की अभिव्यक्ति हुई है।

"बीतक" परम्परा एक मौलिक देन

प्रणामी सम्प्रदाय की "बीतक" परम्परा हिन्दी जीवनी साहित्य की विधा मे एक मौलिक देन के समान है। साम्प्रदायिक साहित्य मे इन बीतको का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा॰ भोलानाथ तिवारी लिखते हैं, जीवनी के लिए ख्यात, वात, वार्ता, परचई या स्वय जीवनी के अतिरिक्त एक शब्द "बीतक" भी है। "बीतक" शब्द स॰ "वृत्त" से बना ज्ञात होता है और सन्त साहित्य मे जीवन-वृत्त के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इसका इस अर्थ मे प्रयोग प्रणामी साहित्य मे किया गया है। प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक प्राणनाथ के तथा उनके गुरु देवचन्द के जीवन को लेकर प्रणामी साहित्य में लालदास, ब्रजभूषण, हंसराज मुकुन्द या नौरंग स्वामी सनेह सखी की बीतक

---

२५. श्री मगलदासजी महाराज, बीतकदर्शन, पृ० २८।

२६. श्री प्राणनाथ संदेश, जागृति अंक, नवम्बर–दिसम्बर, ५७, पृ०३

लल्लू महाराज करुणावती की बीतक सात बीतकें लिखी गई हैं।[२७] इनमें अन्तिम तो गुजराती में है, शेष हिन्दी में है। जीवनी की दृष्टि से लालदास की बीतक ही सबसे सुन्दर है, जिसमें पूरा वर्णन है। धर्म तथा प्रचार की दृष्टि से लिखे होने के कारण बीतकों में भी निरपेक्षता नहीं है, इसी कारण केवल गुणों का वह भी प्रायः बढ़ाचढ़ाकर, वर्णन है।[२८] फिर भी, इनमें लालदास की बीतक अधिक प्रमाणिक एवम् आदरणीय मानी जाती है।

वस्तुत "बीतक" शब्द संस्कृत पद से गुजराती के तद्भव "बीतक" पद से ही आया होगा। क्योंकि गुजराती में "बीतक" का प्रयोग "जो गुजर चुका है या जिसका अनुभव हुआ है" के अर्थ में होता है। स्वामी प्राणनाथ, स्वामी लालदास, नवरंग स्वामी आदि कई गुजराती ही थे और परिणाम-स्वरूप गुजराती "बीतक" शब्द का उक्त अर्थ में प्रयोग किया हो।

(क) स्वामी लालदास

स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में स्वामी लालदास का नामोल्लेख अन्यत्र हो चुका है। ब्रह्मचारी मंगलदासजी ने उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया है[२९] कि वे पोरबन्दर के लोहाणा जाति के कुलीन एवम् प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। ठट्ठानगर के बड़े व्यापारी थे और वे ६६ व्यापार पोत के मालिक लक्ष्मण सेठ के नाम से प्रख्यात थे। धर्मप्रचार करते हुए, जिस समय स्वामी प्राणनाथ ठट्ठानगर पहुँचे उस समय चतुरा नाम एक ब्राह्मण के द्वारा लालदास ने प्राणनाथ के दर्शन की प्रार्थना की। इसका उल्लेख स्वयं लालदास ने अपनी "बीतक" में किया है—[३०]

चतुरें आए अरज करी, लाल चाहे करें दीदार।
लछमन उनका नाम है, है तालिब धनी निरधार।।

स्वामी प्राणनाथ से वहीं पर दीक्षित हो जाने पर इनका मन सांसारिक प्रवृत्तियों से हटता गया। जब स्वामी प्राणनाथ सूरत में थे, तब वे भी सब कुछ छोड़कर उनसे आ मिले—

---

२७. प्रथम अध्याय में बताया जा चुका है कि इन बीतकों की संख्या १७ की है। हां, अन्तिम दो को छोड़कर अन्य इन पांच बीतकों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

२८. सं० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीयखंड), पृ० ४७०

२९. सं० ब्रह्मचारी मंगलदास शर्मा, श्री छोटीवृत्त, पृ० ११८–१२१

३०. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० २३, चौ० ४

लालदास संग चले, खाली लेकर हाथ।
निबाहे आखर लों, चले राज के साथ ॥[31]

स्वामी लालदास के नाम से सम्प्रदाय में सात रचनाओं का उल्लेख होता है—१ बडीवृत (पद्य), २. छोटीवृत्त (गद्य), ३. मोहमदसाहब की बीतक अर्थात् माजजा, ४. बडा मसोदा (गद्य), ५. श्रीमद्भगवत की टीका—अनुवाद ६. अन्य छन्द।[32] वे सिंधी, कच्छी, गुजराती, मारवाडी, हिन्दी, संस्कृत, अरबी-फारसी भाषाओं के ज्ञाता थे। छोटी वृत और बड़ी वृत में उन्होंने परमधाम का वर्णन किया है। माजजा और बडा मसोदा रचनाओं में कुरान के रहस्यों का आयतों और हदीसों के आधार पर विवेचन किया है। लेकिन इन सब में से बीतक रचना ही अधिक आदरणीय रही है। स्वामी प्राणनाथ के "कुलजमस्वरूप" (तारतम्य सागर) की एक हस्तलिखित प्रति के साथ ही लालदास "बीतक" की एक हस्तलिखित प्रति भी प्रत्येक प्रणामी मन्दिर में प्रायः रहती है। "बीतक" को तीनों स्वरूपों (कृष्ण-मुहम्मद, गुरु देवचन्द और प्राणनाथ) की बीतक माना जाता है—

तीनो सरूपोंकी बीतक, जनम से लेकर।
सो कहूँ आगे संयन के, ए चरचा सब ऊपर ॥[33]

प्रथम दो प्रकरणों तक कृष्ण-मुहम्मद की बीतक है और बाद में १० वें प्रकरण तक गुरु देवचन्दजी का जीवन चित्रित किया गया है॥ ११ वें प्रकरण से ५९ प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ के सपूर्ण जीवन और कार्य का वर्णन किया है। अन्तिम १२ प्रकरणों मे पन्ना मे प्राणनाथ को आठो प्रहर की दिनचर्या रखी गई है। इस प्रकार बीतक मे ७१ प्रकरण और ४३०० चोपाइयां हैं। स्वामी लालदास का उल्लेख करते हुए प्रो० मातावदल जायसवाल ने लिखा है, [34] "बीतक" हिन्दवी मे लिखा हुआ प्राणनाथ का जीवन-चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में लगभग ४०० चौपाइयां हैं। सन् १६८४ ई० (सं० १७४१, में लिखित होने के कारण यह हिन्दवी का प्रथम जीवन-चरित्र कहा जा सकता है।

(ख) मयरंग स्वामी

अन्यत्र कहा जा चुका है कि स्वामी प्राणनाथ के कुरान-पुराण के समन्वयवादी भावना के पक्षधरों में से स्वामी लालदास प्रमुख थे, उसी प्रकार विरोधी में

---

३१. वही, प्र० ३१, चौ० ११

३२. सं० ब्रह्मचारी मगलदास शर्मा, श्री छोटी वृत्त, पृ० १२२

३३. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० २, चौ० २६

३४. स० धीरेन्द्र वर्मा-ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य, (द्वितीय खण्ड), पृ० ५६१

नवरंग स्वामी का प्रमुख रूप में नाम लिया जाता है। लेकिन स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनका पूरा प्रेम और आदरभाव रहा।

डा० श्यामसुन्दर शुक्ल ने नवरंग स्वामी के सदर्भ में "स्वामी प्राणनाथ के शिष्य" और रचना के अन्तर्गत "लीला प्रकाश" का सिर्फ उल्लेख किया है।[३५] लेकिन उनके जीवन सम्बन्धी परिचय सिर्फ साम्प्रदायिक ग्रन्थों में ही मिलता है। मुकुन्द स्वामी "नवरंग" का जन्म ज्येष्ठ कृष्णा नवमी बुधवार स० १७०५ में सूरत (गुजरात) में हुआ था। उनके पिता राघवजी एक धनी व्यापारी थे। उनकी माता का नाम कुँवरबाई था। प्राणनाथ की सूरतयात्रा के समय वे उनके उपदेश से मुग्ध हो गये थे और २५ वर्ष की आयु में प्राणनाथ का शिष्यत्व उन्होंने ग्रहण किया था। २२ वर्ष तक वे प्राणनाथ के साथ ही रहे और गुरुसेवा करते रहे। प्राणनाथ के देह विलय के बाद वे उदयपुर चले गये थे। उदयपुर का राजा इनका शिष्य हो गया था।[३७] इतना निश्चत है कि राजस्थान में प्रणामी सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार का श्रेय उन्हीं को मिलता है। उनकी मृत्यु माघ कृष्ण दशमी स० १७७५ में उदयपुर में हुई थी, जहाँ आज भी उनकी समाधि बनायी जाती है।

इनकी रचनाओं के सदर्भ में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रणामी साहित्य की निधि में इनका बहुत ही योगदान रहा है। माहगढ वाले राजा श्रीबलवतवलीहृदेव ने इनकी १६ हजार चौपाइयों का एक सग्रह करवाया था।[३६] मोहनमुकुन्द सत ने इनके विशालग्रन्थ "नवरंग सागर" का उल्लेख किया है। उक्त ग्रन्थ में २६००० चौपाइयाँ है। उनके निम्नलिखित ग्रंथ मिलते हैं—१ वृत्त, २. कीर्तनवृत्त, ३ कीर्तन जन्मोत्सव, ४. केदार (गुजराती), ५ योगारभ, ६. कीर्तन, ७. रोजननामा, ८ हिंडोला, ६. तारतमत, १०. अष्टपदी, ११. गुरुशिष्य सवाद, १२. छादोग्यपनिषद, १३. गीतारहस्य, १४, काजीकी जकडी, १५ जकडी, १६ रेवता, १७. रामत भूल, १८. स्फुट पद, १६. चिद् विलास, २० पटशास्त्र २१. सुन्दरसागर, और २२ लीलाप्रकाश।[३८] रणछोड़दास धीरजी ने नवरंग स्वामी की रचनाओं की नामावली इस प्रकार दी

३५. डा० श्याम सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा मे भक्ति, पृ० २६
३६ स० ब्रह्मचारी मोहनमुकुन्द सन्त, श्री नवरगकृत बीतक, पृ०'६
३७. इतिहास से कोई प्रमाण नहीं मिलता।
३८ श्री प्राणनाथ संदेश, जागृति अंक, नव-दिस० १६५७, पृ० ५
३६. स० ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द सन्त, श्री नवरंगजीकृत बीतक, पृ० ८

है–[४०] १. रास, २. रससागर, ३ लीलाप्रकाश, ४. चिद्‌विलास, ५ बीतक, ६.योगारंभ, ७. तांत्रिकमत ८. अष्टपदी, ९. गुरुशिष्य सवाद, १०. कीर्तन, ११. छांदोग्योपनिषद्, १२. पटशास्त्र, १३ भगवनगीता, १४ स्तोत्र के कीर्तन, १५. कीर्तन वसंत, १६. रासननामा, १७. जकडी, १८. हिंडोला, १९. किरतन जन्म समय के, २०. श्रीठकुरानीजी के जन्म समय के, २१. धाम की वृत्त, २२. रामतमूल सनमन्ध की, २३. रेखता, २४. पंद्रह झांकडी, २५ तारतमकी प्रणालिका, २६. गुजराती केदारो, २७. कबीर स्तोत्र, २८ जकडी दूमरी, और २९. बडा रोसन नामा। श्रीकृष्णप्रियाचार्य महाराज ने इनकी २६६५७ चोपाइयों का निम्नलिखित रचनाओं में विभक्त होना बताया है—[४१] १. रास (प्र० ५५, चौ० १२६३), २. रससागर (प्र० १४, चौ० १५७८), ३. लीलाप्रकाश (प्र० ३०, चौ० १२९०), ४. चिद्‌विलास छोटा (चौ० ५००), ५. चिद्‌विलास बड़ा (प्र० १४, चौ० ६०६), ६. महाकारण की बिनती (प्र० ४१, चौ० १३०१), ७ सुंदरसागर (प्र० ४०, चौ० २१८७), ८. बीतक (प्र० २७, चौ० ११७१), ९. कृपासिद्धसागर (प्र० ३६, चौ० १६०६), १०. पंद्रह झांकडी प्रकरण (प्र० १, चौ० १०६), ११. तारतम्य की प्रणालिका (प्र० १, चौ० १५५), १२. भागवत को टिप्पण, १३. तारतम्य (गद्य), १४. तत्रसार–(तान्त्रिकमत) (प्र० ११, चौ० ५६६), १५. गुरुशिष्यसवाद (प्र० ४, चौ० ४३४), १६. पटशास्त्र (प्र० ५, चौ० २०६), १७. गीतासार (प्र० १८, चौ० ४२१), १८ वृहदारण्यसार (प्र० १०, चौ० २४७), १९ छदोग्योपनिषत्सार (प्र० २०, चौ० ११५०), २०. योगारम (प्र० १५, चौ० ६७७), २१. सिद्धान्तमुक्तावली (प्र० १६, चौ० ५५२), २२. प्रेममजरी (प्र० ७, चौ० ५७१), २३. स्तोत्र के कीर्तन (प्र० ४७, चौ० ५३७), २४. रोशननामा (प्र० ३३, चौ० ८३७), २५ जकड़ी (प्र० १३, चौ० १०१), २६ का० म० जकड़ी, २७. घवन-आगमवाणी के (प्र० ५, चौ० २१६), २८. धाद्रायण ग्रंथ (प्र० १, चौ० २२८), २९. कीर्तन (प्र० ३२, चौ० १०२१), ३०. अष्टपदी (प्र० १७२, चौ० १३४८), ३१ गुजराती केदारो (प्र० ५७, चौ० १०६०), ३२. श्रीकृष्णजन्मकीर्तन (प्र० ६, चौ० १००), ३३. श्रीराधाजन्मकीर्तन (प्र० १२, चौ० ११२), ३४ वसत, धमार तथा दोल के कीर्तन (प्र० २३, चौ० ३०६), ३५. श्रीधाम की वृत्त–गद्य (प्र० १, चौ० ५००), ३६ श्रीधामकी वृत्त-पद्य (प्र० १०, चौ० ७०५), ३७. रामतमूलकी (प्र० ३६, चौ० ८७१), पावस के हिंदोला (प्र० ३८,

---

४०. प्र० रणछोड़दास वीरजी, गुरुशिष्य संवाद, पृ० ६४

४१. स० श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज, श्री करुणावलीकृत पच्चीसपक्ष, (आवरण पृष्ठ ४)

२६, चौ० २४७), ३६ प्रकीर्ण पद-कीर्तन (प्र० ३४, चौ० १०००), ४० प्रश्नावली-संस्कृत में (चौ० ५००), ४१. प्रश्नावली-हिन्दी में (चौ० ५००), ४२. श्रीनवरंग बीतक (प्र० १४, चौ० ५६६)।

डा० रामकुमार गुप्त ने इनकी रचनाओं के संदर्भ में कहा है, इनके (नवरंग स्वामी के) लिखे हुए करीब १६७ ग्रन्थ बताये जाते हैं। इनका सब में प्रसिद्ध एवं विशालग्रन्थ है—नवरससागर जिस में ३६००० चौपाइयाँ हैं। अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ इस प्रकार हैं—१ मिहिरराज चरित्र, १ सुन्दर सागर, ३ षट्शास्त्र, ४ लीलाप्रकाश, ५ लीलारहस्य, ६ गुरुशिष्य संवाद, ७ फुटकल पद, ।[४२] लेकिन इनके बताये गये "मिहिराज चरित्र" का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। वस्तुत "श्रीमेहराज चरित्र" बख्शी हंसराज द्वारा लिखित है, नवरंग स्वामी द्वारा नहीं। डा० गुप्त ने अपने मत का कोई प्रमाण नहीं दिया।

सम्प्रदाय में इनके तीन ग्रन्थों को ही आदरपूर्ण स्थान प्राप्त है—१ बीतक, २ रससागर, ३ सुन्दर सागर। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की समीक्षा करती हुई रचना 'गुरुशिष्यसंवाद" भी प्रसिद्ध है।

उनकी बीतक कब और कहाँ पर लिखी गयी है, इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता। इस बीतक में श्रीकृष्ण, गुरु देवचन्दजी और प्राणनाथजी का जीवन चित्रित किया गया है। उनकी "गुरु शिष्य संवाद" रचना में नवरंगजी के प्रश्न और स्वामी प्राणनाथ के उत्तरों का समावेश हुआ है। उस प्रश्नोत्तर में क्षर, अक्षर और अक्षरातीत पूर्णब्रह्म तीनों के स्वरूप स्थान, धाम लीला आदि का निरूपण किया गया है। अखंड भूमिका में महारास लीला वर्णन करने के बाद राससमाप्ति इस प्रकार हुई—

"नवल किशोर नागर, नवल किशोरी सखि संग।
विहरे रास विलास निज, भजनानंद रस रंग॥
ब्रह्म रात्रि पूर्ण भई, भया प्रात: प्रकाश।
यह देख श्रीकृष्ण प्रिया, निवृत भई कर रास॥
रास लीला पूरण भई, भई आज्ञा निज यह।
सुन सखियन के चित्तमें, उपज्यो दुख संदेह॥
अनुमोदित श्रीकृष्ण कर, चली आज्ञा चित लेय।
मनइच्छित निजप्रिया तबे, गई अपने स्वगेह॥[४३]

---

४२ डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य को गुजरात के संतकवियों की देन, पृ० १२६

४३. प्र० रणछोड़दास बीरजी, नवरंगकृत "गुरुशिष्य संवाद", पृ० ५०

"रसमाग-" मे उनकी माधुर्योपासना का स्वरूप ही झलकता है। कृष्ण-वियोग से गोपिकाओं को दुःख हुआ है और यह गोपिका अपने प्रियतम कृष्ण से विनती करती हैं—

"कब हम नैंन मिलावसी, चरण तली मिद्ध सार।
दृष्ट शीतल सुख उपजे, मेरे आतमके आधार॥
कब हम नखमणि निरखेंगे, भूषण झल हलकार।
चरण तले कब बसेंगे. मेरे आतम के आधार॥[४४]
फिर भी, विरह उनको पसन्द है, क्योंकि उस विरह के
कारण ही पिंडब्रह्माड मे खो जाने का सौभाग्य मिला है।[४५]

(ग) ब्रजभूषण

बीतको मे कई बार, प्रशस्ति की अतिशयोक्ति का डर रहता है। शायद इसी दृष्टि स प्रणामी सम्प्रदाय मे ब्रजभूषणकृत बीतक "वृत्तान्तमुक्तावली" का एक निराला स्थान है। महाराजा छत्रसाल ने बीतक की रचना नही की, लेकिन उनके शिष्य ब्रजभूषण ने बीतक की रचना की है। ब्रजभूषण को छत्रसाल के शिष्य के रूप में निःसकोच भाव से स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि 'वृत्तान्तमुक्तावली" मे एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं—

एहि विधि खोज पर पथि माहि,
मत देवचद्र सतगुरुको गायो।
नाद पुत्र तेहि छत्रसाल नृप,
तेहि शिष्य ब्रजभूषण कछु पायो॥[४६]

डा० भगवानदास ने छत्रसाल के आश्रित दरबारी कवि के अन्तर्गत ब्रजभूषण का उल्लेख किया है।[४७] मिश्रबधु ने ब्रजभूषण गोस्वामी का उल्लेख करते हुए, उनको राधावल्लभाचार्य बताया है और रचनाकाल १८०० अन्दाजी दिया है। वही पर उन्होंने ब्रजराज बुन्देलखड का भी उल्लेख किया है और इनका जन्मकाल १७७५ दिया है।[४८] लेकिन जीवन संबधी कोई विवरण नही दिया गया। पं० कृष्णदत्त

४४. श्री प्रणामी धर्मपत्रिका, रससागर अंक, अगस्त-सित० ६४, पृ० २
४५. वही, पृ० ६६
४६. ब्रजभूषण, वृतान्तमुक्तावली, प्र० ६, चौ० १८
४७. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० ११७
४८. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, भा० २, पृ० ६६५

शर्मा कहते हैं, श्रीव्रजभूषणजी के लौकिक संबंध के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि, अभी तक इनका कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं मिला, जिसमें इनके ग्राम ठाम जन्मादि का पता लगे। हां, इनकी रचना पर से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आप बुन्देलखंड प्रांत के निवासी थे।........ आपका रचनाकाल लगभग वि० सं० १७५५ के माना जा सकता है।[४९] यशवन्तलाल सी० दलाल[५०] के अनुसार, वे प० बद्रीदासजी के पुत्र थे। स्वामी प्राणनाथ जब पन्ना आये तब सुन्दर, वल्लभ और बद्रीदास तीन पंडित थे और वे तीनों शास्त्रार्थ में पराजित होने पर स्वामी प्राणनाथ के शिष्य हो गये। उन दिनों व्रजभूषण काशी में विद्याभ्यास कर रहे थे। उन्होंने पिता की पराजय के बारे में जब सुना तब बदला लेने के लिए पन्ना आ गये। प्रारंभ में छत्रसाल से ही शास्त्रार्थ हुआ और पराजित हो जाने पर छत्रसाल का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। उनका जन्म पन्ना में ही हुआ था, इसके संदर्भ में एक उक्ति है—

> भये पन्ना में कई भूषण, भूषण में भी कई भूषण।
> ऐसे भये थे कुल भूषण, जो हो गये हैं व्रजभूषण ॥

फिर भी इतना स्पष्ट है कि भूषण और व्रजभूषण दो अलग-अलग कवि थे। साम्प्रदयिक मान्यता गलत है कि व्रजभूषण की पालकी छत्रसाल ने अपने कंधों पर उठायी थी। यह घटना भूषण के साथ घटित अवश्य हुई थी। व्रजभूषण की तीन रचनाएँ बतायी जाती हैं—१. वृत्तान्त मुक्तावली, २. परात्पर दीपक (गद्य), और ३. श्री प्राणनाथजी का जीवनचरित्र (संस्कृत में)।[५१] 'वृत्तान्तमुक्तावली" के प्रारंभिक भाग में, अर्थात् ३५ प्रकरणों तक गुरु देवचन्द्रजी का वर्णन है, ३६ वें प्रकरण से ६५ प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ का जीवन चरित्र, और ८० प्रकरण तक पन्ना, छत्रसाल एवम् साम्प्रदायिक तत्त्वों की चर्चा की गई है। परिशिष्ट के ११ प्रकरण हैं। इस प्रकार "वृत्तान्तमुक्तावली" के प्र० ८० और ४६७५ चौपाइयां हैं। परिशिष्ट भाग में दी गई अष्टप्रहर की बीतक की ९७० चौपाइयां जोड़ने से उक्त ग्रन्थ ५६४५ चौपाइयों का बनता है। यह बीतक भी तीनों स्वरूप की है।

व्रजभूषण के संदर्भ में डा० श्यामनारायण पांडेय ने कहा है, श्री प्रणामी संप्रदाय में भूषणदासजी का नाम अत्यंत आदर एवं श्रद्धा के साथ लिया जाता है। भूषणदासजी बहुत उच्चकोटि के विद्वान माने गये हैं। व्रजभाषा में इनकी थोड़ी-सी

४९. व्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली (भूमिका), पृ० १२
५०. श्री प्राणनाथ संदेश (पत्रिका), प्रणामी साहित्य अंक, पृ० ४९
५१. श्री प्राणनाथ संदेश (पत्रिका), प्रणामी साहित्य अंक, पृ० ५१

रचनाएँ सिद्धान्त संबंधी प्राप्त होती हैं।[५२] प्रणामी संप्रदाय की रसोपासना का स्वरूप और देवचन्द्रजी का नामोल्लेख उनके निम्नलिखित पद में मिलता है—

अगट नित्य वृन्दावन भाख्यो,
सो हरिदास चित में राख्यो।
ताकी चरचा करें प्रेम सो
सेवे नित आचार नेम सो।
निज शिक्षा गुरु और बताई,
सो देवचन्द्र चित्त सों लाई।
अपनी सखी भाव करि लीजै,
पुरुषभाव अपनो तजि दीजै।
श्रीकृष्णचन्द्र जानो गुरु आपन,
श्यामा निज उपासना थापन।
सखी बिना इत पुरुष न पहुँचे,
कोटि कष्ट करि जो मन श्रोचे।
ताते सखी भाव करि भीजै,
पुनि यह नाम मन्त्र रस पीजै।[५३]

(घ) बख्शी हंसराज

प्रणामी सम्प्रदाय की बीतकों में भावुकता और कवित्व के दर्शन बख्शी हंसराज की बीतक "श्री मिहराज चरित्र" में ही होते हैं। मिश्रबंधु के अनुसार, बख्शी हंसराज श्रीवास्तव कायस्थ सं० १७८९ में पन्ना में हुए।[५४] लेकिन उन्होंने हंसराज कायस्थ का अन्यत्र उल्लेख करते हुए कहा है कि बख्शी हंसराज और ये एक ही हों[५५] यह मानना अनुचित होगा। आ० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका जन्म सं० १७९९ में पन्ना में हुआ था। इनके पूर्वज बख्शी हरिकिशुनजी पन्ना राज्य के मंत्री थे। हंसराजजी पन्ना नरेश श्री अमानसिंहजी के दरबारियों में थे। ये ब्रज की व्यासगद्दी के "विजय सखी" नामक महात्मा के शिष्य थे, जिन्होंने इनका सांप्रदायिक नाम "प्रेमसखी" रखा था। "सखीभाव" के उपासक होने के कारण इन्होंने अत्यंत प्रेम-माधुर्य-पूर्ण रचनाएँ की हैं।[५६] डा० भगवानदास गुप्त ने बख्शी

---

५२. डा० श्यामनारायण पांडेय, हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना, पृ० ३६६
५३. "श्रीसर्वेश्वर" वृन्दावन अंक, पृ० १००
५४. मिश्रबंधु, मिश्रबंधुविनोद, भाग २, पृ० ६११
५५. वही, पृ० ६२२
५६. आ० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२५

हंसराज को छत्रसाल के समय के कवियों में बताते हुए कहा है, इनकी जन्मभूमि पन्ना ही थी। छत्रसाल के शासनकाल के अंतिम वर्षों में हंसराज में जो कवित्वप्रतिभा प्रस्फुटित हुई, वह छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् हिरदेसाह, सभासिंह और अमानसिंह के काल में उत्तरोत्तर विकसित हुई। बख्शी हंसराज इन सभी के कृपापात्र थे।[५७] डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने बख्शी हंसराज को हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों की नामावली में रखा है।[५८] वस्तुतः महाराज छत्रसाल के पौत्र सभासिंह ने बख्शी हंसराज के पूर्वज ओरछानिवासी माधवदास को दीवानपद दिया था और तब से उस परिवार में "बख्शी" नाम जुड़ गया था। माधवदास के दो पुत्र मुरलीधर और केशवराय में से दूसरे अर्थात् केशवराय हंसराज के पिता थे। पन्ना उनका जन्म स्थान था। उनका जन्म प्रायः सं० १७४० लगभग माना जाता है।[५९]

मिश्रबंधु ने इनकी रचनाओं में सनेहसागर, और प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट के आधार पर श्रीकृष्णदूकी पाती, श्री जुगुल स्वरूप विरहपत्रिका, फाग तरंगिनी तथा चुरिहारिनलीला नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[६०] आ० रामचन्द्र शुक्ल ने सनेह सागर, विरहविलास, रामचन्द्रिका और बारहमासा इन चार ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[६१] डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने सनेह सागर, विरहविलास और बारहमासा को ही इनकी रचनाओं के अन्तर्गत रखा है।[६२] पं० पन्नालाल मिश्र के अनुसार, हंसराजजी की छः रचनाएँ हैं—[६३] १ मिहराज चरित्र, २ सनेह सागर, ३ श्रीकृष्णदूकी पाती, ४ श्री जुगुलस्वरूप विरह पत्रिका, ५ फागतरंगिनी, और ६ चुरिहारिन लीला। गौरीशंकर द्विवेदी के अनुसार,[६४] सनेह सागर, श्रीकृष्णदूकी पाती, श्री जुगलस्वरूप विरह पत्रिका, फागतरंगिनी, चुरिहारिनलीला, मेहराज चरित्र, विरह विलास, रायचंद्रिका और बारह मासा नामक नौ ग्रंथ हंसराजजी ने लिखे थे।

---

५७. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० ११८

५८. डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ३६२

५९. सं० शास्त्री देवकृष्ण शर्मा, बख्शी हंसराजकृत 'श्री मिहराज चरित्र" भूमिका, पृ० २

६०. मिश्रबन्धु, मिश्रबंधु विनोद, भाग २, ?२

६१. आ० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२५

६२. डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ३६२

६३. सं० शास्त्री देवकृष्ण शर्मा, बख्शी हंसराजकृत "श्री मिहराज चरित्र" भूमिका, पृ० ४

६४. गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव, पृ० ३६२-६४

इन सब में मेहराजचरित्र ही अधिक प्रसिद्ध है। यह स्वामी प्राणनाथ का पद्यबद्ध जीवन चरित्र है और प्रणामी सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थों में अपना स्थान रखता है।

"सनेहसागर" के नौ तरंगों में कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया गया है। "सनेहसागर" का एक पद्य द्रष्टव्य है—

इत तें चली राधिका गोरी सौपनि अपनी गैया।
उन तें अति आतुर आनन्द सो आए कुवर कन्हैया॥

कसि भौहे, हसि कुंवरि राधिका कान्ह कुंवरसों बोली।
अंग अंग उमगि भरे आनन्द सो, दरकति छिनछिन चोली॥[६५]

हंसराजजी ने "मेहराज चरित्र" लिखने में स्वामी लालदास की बीतक का ही सहारा लिया हो ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी कहीं-कहीं पर अन्तर अवश्य दीखता है। अन्य बीतकों की तरह इसमें भी गुरु देवचन्द्रजी और स्वामी प्राणनाथ के जीवन को चित्रित किया गया है। लेकिन जहाँ कवित्वशक्ति दिखाने का मौका मिला है, वहाँ पर उन्होने अपनी शक्ति को आजमाया भी है। अन्य बीतकों में स्वामी प्राणनाथ दिल्ली से अनूपशहर जाते है उस वक्त का कोई वर्णन नहीं है और जो वर्णन है वह नीरस है। लेकिन उस समय के आषाढ महीने ने हंसराज को आकर्षित किया ही—

मास असाढ लाग्यो तिहिवारा,
गरजत गगन बरसत जलधारा।
वर्षा रितु विरहिन केरी,
बरनि सकत न दशा मति मेरी॥

जित तित पपीहा वचन उचारे,
पीउ पीउ कहि बाल पुकारे।
दमकति द्युति उत दामिन केरी,
विरहिन के इत दशन उजेरी॥

बोलत मोर चहुँदिस भारी,
आह-आह विरहिन पुकारी।
दसहुँ दिसतें पवन झकोरें,
विरहिन अंग मदन मरोरे॥

६५. आ० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२६ पर उद्धृत

वृन्दन बरस बान सम छाले।
विरहिन मदन पंचसर घाले।
साप सुरर कहि रैन अन्धेरी,
सूनी सेज विरहिन केरी ॥
इतते उत अति पवन झकोरें,
विरहिन झूलति विरह हिंडोरे।
अचरजि करि मानो मति कोई,
अगिनिनु जलसों सेती होई ॥[६६]

इस बीतक में प्रथम प्रकरण मे चार युग के राजाओ का वर्णन, दूसरे प्रकरण से नौवें तक गुरु देवचन्द्र का जीवन वृत्त और दसवें प्रकरण से छप्पनवे प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ के जीवन, भ्रमण आदि का वर्णन किया गया है। अन्तिम छः प्रकरणो मे व्रजवृन्दावन, रासवर्णन, ब्रह्मसृष्टि आगमन आदि का वर्णन किया गया है। यह रचना ६१ प्रकरण और ५२३३ चौपाइयों में पूर्ण हुई है।

(ड) लल्लुजी महाराज–लालसखी

चरोतर सर्व संग्रह के अनुसार,[६७] लल्लुजी महाराज अलिद्रा के औदिच्य टोलकिया जाति के थे। उनका जन्म सं० १८६० में लगभग और सं० १९५४ में इनकी मृत्यु हुई थी। उन्होंने सूरत मे श्री लालजी महाराज से प्रणामी सम्प्रदाय का अभ्यास किया था। तत्पश्चात् गुजरात मे प्रणामी सम्प्रदाय का उन्होंने प्रचार किया। उन्होंने आत्मबोध वर्तमान दीपक, सुरती विवहा, कटकभेद आदि ग्रंथो की रचना की। उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय के कुलजमस्वरूप का हिन्दी भाषा से गुजराती पद्य मे अनुवाद किया। प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायियो मे वे "लालसखी" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विशेषत. बीतकें हिन्दी मे ही लिखी गई, लेकिन लल्लुजी भट्ट ने गुरु देवचन्दजी और स्वामी प्राणनाथ के जीवन को गुजराती में लिखी हुई बीतक "वर्तमान दीपक" मे अंकित किया है। उक्त ग्रन्थ के मंगलाचरण पर से अनुमान किया जाता है कि सूरत के प्रणामी मंदिर के तत्कालीन महंत लालजी के वे शिष्य थे। उन्होंने साम्प्रदायिक शिक्षा नौतनपुरी के तत्कालीन आचार्य श्री जीवरामदासजी महाराज से[६८] ली थी। अतः उनका जन्मकाल प्राय सं० १८६० के लगभग था।

---

६६. वख्शी हसराजकृत श्रीमिहरराजचरित्र, प्र० १६, चौ० ३५–४७
६७. सं० पुरुषोत्तम शाह–चन्द्रकान्त शाह, चरोतर सर्वसंग्रह, भा० २, पृ० ६७४
६८. लल्लुजी भट्ट, वर्तमान दीपक, भूमिका, पृ० ३

यह बीतक उन्होने सं० १९३६ मे शुरु की थी और स० १९४४ वैशाख, शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन लिखना पूर्ण किया था। उनके अन्य ग्रन्थों में "जीवचेतवणी", "ईश्वर बोधसागर", "आत्मबोध" और "श्रुति विवाह" हैं। "जीव चेतवणी" में कृष्ण-नारद के संवाद स्वरूप सद्गुरुसेवन की महिमा का वर्णन किया गया है। सद्गुरु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने हुए, उनकी ब्राह्य दृष्टि से घृणा करने के कारण नारदजी को ८४ लक्ष योनि में जन्म लेने का प्रायश्चित भुगतना पडा और सद्गुरु की कृपा से ८४ योनि के चित्र की परिक्रमा मात्र से उस प्रायश्चित का अन्त होना है। इसके अन्तर्गत जीव का गर्भवास, गर्भकृत ईश्वरस्तुति, जीव के जन्ममरण का कारण, मृत्यु के समय पर यम का भय, ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्ण, सौभाग्यवती और विधवा स्त्री और साधु-सन्तों के लक्षणों का विस्तार मे वर्णन किया है। अन्तिम प्रकरण मे परमधाम का सक्षिप्त मे वर्णन दिया गया है और इस तरह प्रत्येक जीव को चेतावनी देकर परमधाम का मार्ग दिखाया हैं। "ईश्वरबोध सागर" में गुरु और सद्गुरु के विभिन्न लक्षण बताते हुए, ब्रह्मनिष्ठ-ब्रह्मसद्गुरु की शरण मे जाने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। इस बात को समझाने के लिए उन्होने शिवपार्वती सवाद की योजना की है। ब्रह्मप्रियाओं के लिए इंड रचना से विराट तक समग्र ब्रह्मांड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। लवण राजा के दृष्टान्त से ब्रह्मप्रियाओ को तृतीय ब्रह्माड मे उतरने की शका का निवारण किया है। महद् इंड, सात शून्य, अष्टावरण, मूलमंगलाशक्ति, आदिनारायण, गोलक, अक्षरलोक तथा परमधाम का वर्णन करके ईश्वर सबधी सद्बोध दिया है। "आत्मबोध" के प्रारभ मे भट्टाचार्यजी और उनकी पत्नी निर्भया के स्वामी प्राणनाथ से हुए संवादविवाद को रखा गया है (निर्भया स्वामी प्राणनाथ के प्रति श्रद्धा रखती थी और प्रणामी सम्प्रदाय मे विश्वास रखती थी। लेकिन उनके पति भट्टाचार्य को कोई विश्वास पैदा नहीं हुआ था। आखिर मे पत्नी ने पति की स्वामी प्राणनाथ से मुलाकात करवायी और तब से भट्टाचार्य प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी बन गए थे।), इसमें सच्चिदानद आत्मस्वरूप है इस बात का बोध कराया गया है। प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का भी वर्णन किया गया है। श्री लल्लुजी भट्ट ने इस ग्रन्थ की रचना स० १९१३ मे की थी। उन्होने "श्रुति विवाह", रचना मे बताया है कि श्रुति (सुरती) परमधाम् मे जगत के दु:ख सुख का अनुभव करने के लिए यहां उतर आई और परमधाम, अपने स्वामी परब्रह्म-परमात्मा को भूल गई। सद्गुरु मिले और उपदेश दिया। सद्गुरु ने जगत की नश्वरता दिखायी, कृष्णभक्ति का मार्ग दिखाया और अन्ततः सुरता जागृत हुई। उसको अपने घर-परमधाम-की याद आयी और सुरता अपने मूलस्वरूप मे पहुँच गयी। यह तत्व इसके अन्तर्गत विस्तार से समझाया है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त

साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से पूर्ण और भक्तिपूर्ण भजन और गरबे भी उन्होंने लिखे हैं। उन्होंने विशेषरूप से गुजराती में ही सभी रचनाएँ लिखी हैं।

(च) महाराजा छत्रसाल

महाराजा छत्रसाल स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में से एक थे यह तथ्य प्रत्यक्ष उद्घाटित हो चुका है। उन्हीं की मदद से स्वामी प्राणनाथ के बाद प्रणामी सम्प्रदाय का प्रसार एवम् प्रचार दूर-दूर के प्रदेशों में हो सका। छत्रसाल स्वयं कवि थे और इनके लिखे कई राजनीति से भरे पत्र भी हैं, जो कविता में लिखे गए हैं।[६९] मिश्रबंधु ने इनका "पत्रम" के नाम से उल्लेख करते हुए लिखा है, आपका रचनाकाल सं० १७३० से माना जा सकता है। इन महाराज का स्वर्गवास सं० १७८८ में हुआ।[७०] डा० हीरालाल लिखते हैं, छत्रसाल वीर ही नहीं वरन् कवितात्मिक और स्वयं कवि भी था। वगस-विपत्ति में फसने पर भी उसने सहायता की प्रार्थना कविता में ही की और जब उसके घराने वालों ने ही एक बार उसकी हँसी की और लिख भेजा—

"ओरछे के राजा और दतिया के राई।
अपने मुंह छत्रसाल बने धनाबाई ॥

तब उसने इसका मुह तोड़ उत्तर कविता में ही लिख भेजा—

सुदामा तन हेरे तब रक हू ते राव कीन्हों,
बिदुर तन हेरे तब राज कियो चेरे तें।
कुबरी तन हेरे तब सुन्दर सरूप दीन्हो,
द्रौपदी तन हेरे तब चीर बढ़यो टेरे तें।
कहत छत्रसाल प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी,
हिरनाकुस मारो नेक नजर न फेरे तें।
ए रे गुरु ज्ञानी अभिमानी भए कहा होत,
नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे तें।[७१]

महाराज छत्रसाल में साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन अवश्य होते हैं। विशेषतः उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखित हैं। फिर भी उस पर अवधी, फारसी और बुन्देलखंडी का प्रभाव अवश्य हुआ है। श्री वियोगी हरि ने कहा है,[७२] "महाराज छत्रसाल एक ऊँचे" कवि थे। प्रेम और भक्ति इनकी रचनाओं में कूट कूट कर भरी

---

६९. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२८–२२९
७०. मिश्रबंधु, मिश्रबंधुविनोद भा० २, पृ० ४८६
७१. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० १००–१०१

है। इनकी रचना में तन्मयता भी अच्छी मात्रा में है। इनकी दृष्टि निस्सदेह कवि दृष्टि थी।……… काव्यकला की ओर यद्यपि इन्होंने विशेष ध्यान नही दिया तथापि उसका सर्वथा अभाव नही है। व्रजभाषा के साहित्य में महाराज छत्रसाल की रचनाएँ प्रेम और आदर की दृष्टि से देखी जाएँगी………।[72] "महाराराज छत्रसाल की रचनाओं मे श्रीकृष्णकीर्तन, श्रीरामयशचन्द्रिका, हनुमद्विनय, अक्षर अनन्यजूके पत्र और तिनको उत्तर, नीतिमंजरी और स्फुट कविताएँ तथा राजविनोद गीतो का सग्रह, छत्रविलास, नीति मंजरी महाराज छत्रसालजू की काव्य का भी उल्लेख है।[73] एक स्थान पर उनके "कृष्णचरित्र" नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख है।[74]

भक्ति के आवेश मे अपनी तुलना कृष्ण से करते हुए वे कहते है—

"तुम घनश्याम हम जाचक मयूर मत्त,
तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं॥
× × ×
तुम गिरिधारी हम कृष्णव्रतधारी तुम
दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं॥"[75]

उन्होंने प्रभुनाम के प्रभाव का स्वीकार किया है—

"जप तप संयम यम नियम,
छंदा निगम नित गाव।
कोटिन अपराधी तरे,
केवल नाम-प्रभाव ॥"[76]

मधुर भाव की भक्ति मे उनके कोमल भाव निम्नलिखित पद मे व्यक्त होते हैं—

"बजाय गयो रे मेरे अंगना में मुरली।
मैं तो ठाढी थाली अपने द्वार,
फुलनकी गेंद मारे नदलाल' ॥ १ ॥
मुरली की थाली थाली कौन बन जाउ,
मुरली में तान टारै लै लै मेरो नाम ॥२॥

---

७२. सं० श्री वियोगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० १५
७३. वही, पृ० ६
७४. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२८
७५. स० वियोगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली, पृ० ४-५
७६. वही, पृ० ५३

कित गई गौयें कित गए ग्वाल,
कित गए मुरली बजावन हार ।।३।।

निकस आईं गौयें निकस आए ग्वाल,
निकस आए मुरली बजावन हार ।।४।।

बन गईं गौयें गोकुल गए ग्वाल,
कृष्ण गए अपने ससुरार ।।५।।

अटा अटारिन चढ़ि गोउ धाए,
मुकुट की शोभा मोये बरनी न जाए ।।६।।

छोटे छोटे चरण बड़े बड़े नैन,
कुंजगलिनमें मारि गयो सैंन ।।७।।

छत्रसाल के स्वामी रसके रसाल,
पाए दर्शन हो गए निहाल ।।८।।[७७]

उन्होंने कहा है, कृष्ण प्रेम, भजन कीर्तन और आनन्द-विआनन्द में रहना चाहिए—

"इश्क शुराई प्रेमका प्याला ।
अन्दर प्रीतम छकि रहिये ।।
तन सोये रूह निशदिन जागे ।
धाम धनी के चरणों रहिये ।।
अष्ट पहर दिन चौसठ घड़ियाँ ।
निश दिन पीऊ पीऊ पीऊ कहिये ।।[७८]

गुरु स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनके दिल में भक्तिभाव और आस्था थी—

तुम ही करे वेदके भेद भारे,
तुम श्याम गिरोहके प्राण प्यारे ।
ते इलमको लै कुफरान मार्‌या,
ते परनाम कहा जहान तार्‌या ।।
खरचा ते खजाना मलावतनी,
लूटे मोमन खेद सुनी सो भनी ।

---

७७. प्रणामी धर्मपत्रिका (भजनांक) सं० २००१, आश्विन, पृ० ८८-८९
७८. प्रणामी धर्मपत्रिका (उपदेशाक). सं० १९९९, आश्विन, पृ० ३५

तुम ही असराफील सोर करे,
तुम सोर के जोर पहाड़ टरे ।।[७९]

कुल की प्रतिष्ठा छत्रसाल की दृष्टि मे सर्वोपरि है और इसीलिए गृहस्थो को सीख देते हैं—

लाख घटैं, कुल साख न छाडिये,
वस्त्र फटैं प्रभु औरहूं दैं है ।
द्रव्य घटैं घटना नहिं कीजिए,
दैं है न कोऊ पै लोक हमे है ।।
भूप छता जलरासि को पैरिबो,
कौन हैं बेर किनारे लगे है ।
हिम्मत छोडे ते किम्मत जायगी,
जायगो कास कलक न जै है ।।[८०]

(छ) पंचमसिंह

डा० श्यामसुदर शुक्ल ने स्वामी प्राणनाथ के शिष्य के रूप मे पंचमसिंह का नामोल्लेख किया है और उनकी रचनाओ मे "सवैये" का निर्देश किया है ।[८१] लेकिन साम्प्रदायिक साहित्य में पचमसिंह की रचनाओ का कोई उल्लेख नही मिलता । मिश्रबंधु ने पचमसिंह का कविताकाल १७८२ देते हुए विवरण मे बताया है कि महाराजा छत्रसाल पन्ना नरेश के वे भतीजे थे ।[८२] गौरीशकर द्विवेदी और शिवसिंह सरोज के अनुसार छत्रसाल के भतीजे पचमसिंह और पौत्र कुंवर मेदिनीमल्ल भी साधारण कविता कर लेते थे ।[८३] प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट के आधार पर उनकी रचनाओ के अन्तर्गत कवित्त का ही उल्लेख किया जा सकता है । डा० श्यामसुंदर शुक्ल का[८४] कथन उचित मालूम होता है कि पचमसिंह की बानियो का कुछ भी पता नही चलता ।

---

७९. सं० गोपालदासजी महाराज, कवितावली, पृ० ३१
८०. सं० वियोगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली, पृ० ७६
८१. डा० श्यामसुंदर शुक्ल, हिन्दीकाव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३०
८२. मिश्रबंधु, मिश्रबधु विनोद, भा० २, पृ० ६२०
८३. (अ) गौरीशकर द्विवेदी, बुंदेल वैभव, पृ० ४०६
(आ) शिवसिंह सरोज, पृ० ४४५
८४. डा० श्यामसुंदर शुक्ल, हिन्दीकाव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३६

(य) भट्टाचार्यजी

कभी कभी पतन भी उत्थान के लिए होता है। यह कथन भट्टाचार्य को बिलकुल लागू होता है। काशीनिवासी भट्टाचार्य पन्नानिवासी श्री परमानन्द पंडित की निर्भया नामक पुत्री से विवाहित हुए थे। निर्भया द्वारा स्वामी प्राणनाथ से उनका परिचय हुआ। फिर भी प्राणनाथजी पर इतनी श्रद्धा नही थी। इस बीच एक शास्त्रार्थ मे उनकी पराजय हुई और विद्वता के अभिमान का पतन हुआ। उन्होने स्वामी प्राणनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। वे अपनी २५-३० वर्ष की आयु मे ही शिष्य हो गये थे इस बात मे लगता है कि उनका जन्म स० १७२५ के लगभग मे हुआ होगा।[८५] उनके ग्रन्थो मे "निगमार्थप्रदीप" और "विद्वद्मनी" हैं। लेकिन दो ग्रन्थो के अतिरिक्त उनका अन्य साहित्य भी होना चाहिए वैसा एक अनुमान किया जाता है।[८६] दोनों ही ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे ही लिखे हुए हैं, और उनकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी दो-तीन है। "निगमार्थप्रदीप" मे उन्होने प्रेमलक्षणा-भक्ति की पराकाष्ठा का प्रतिपादन किया है और उपनिषदो के प्रमाण द्वारा गुरु देवचन्द्रजी तथा स्वामी प्राणनाथ का सद्गुरुरूपेण समर्थन किया है। ब्रह्मसृष्टियो परमहंसो की ब्रह्मता बतायी है। बाद मे वेदमन्त्रो से परमधाम की दिव्यता एवम् अखण्डता दिखाकर वहाँ के स्वलीलाद्वैत की सिद्धि की गई है। तदनन्तर प्रसगानुसार मे ब्रजरासलीला का दिग्दर्शन कराते हुए परमहंसो की त्यागवृत्ति का लक्षण बताया है।

(स) मुकुन्दस्वामी

प्रणामी सम्प्रदाय मे "स्वामी त्रिपुटी" के नाम से स्वामी लालदास, नवरग स्वामी और मुकुन्द स्वामी को ही समझ लिया जाता है। डा० श्यामसुदर शुक्ल ने[८७] मुकुन्द स्वामी का नामोल्लेख किया है और उनकी रचनाओ मे "साखियो" का निर्देश किया है। उनके जन्म समय के सन्दर्भ मे सम्प्रदाय भी मौन है लेकिन उनके जीवन की चमत्कारिक घटना सम्प्रदाय मे प्रचलित है। कहा जाता है[८८] कि एक दिन जब उनको कार्यवशात अन्य गाँव जाने का प्रसग उपस्थित हुआ। इसी अवसर पर एक दिव्य पुरुष ने उनका नाम लेकर आवाज दी। वे अनुपस्थित थे, पर आगन्तुक ने सूचना दी कि, 'मुकुन्द से कहना कि प्राणनाथ बुलाने आए थे और शीघ्र मिलने की

---

८५. सन्तदासजी, निगमार्थप्रदीप, (प्राक्कथन), पृ० २
८६. वही, पृ० २
८७. डा० श्यामसुदर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३४
८८. प्रणामी धर्मपत्रिका, "मुकुन्दवाणी अंक", जुलाई १९५८, पृ० ४-५

कह गए हैं। "घर लौटने पर जब मुकुन्द स्वामी को यह सूचना मिली तब बिना अन्नजल ग्रहण किये पन्ना की ओर जाने के लिए निकल पड़े। लेकिन पूर्व तरफ न जाते हुए, उत्तर दिशा की ओर वे चल दिये। उनकी परेशानी सहसा उपस्थित हुए एक साधु ने दूर की। साधु ने आँखें मूँद लेने की आज्ञा दी और वैसा करने पर स्वामी मुकुन्ददास पन्ना के प्रणामी मंदिर में बिराजित स्वामी प्राणनाथ के सन्मुख पहुँच गए। यह जनश्रुति कहाँ तक सही है यह कहना मुश्किल है। परन्तु अनुमान किया जाता है कि वे स्वामी प्राणनाथ के समकालीन थे।"[८९] उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सुना जाता है कि आपने जीवित समाधि ली थी। वह स्थान लखनऊ से १२ कोस की दूरी पर स्थित महिमाबाद के नाम से प्रसिद्ध है।[९०] सम्प्रदाय के विद्वानों का मानना है कि उन्होंने कई रचनाएँ लिखी होंगी। लेकिन उनकी दो-तीन रचनाओं के सिवा अन्य रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती।[९१] उन्होंने कई पद लिखे हैं और उन पदों में उनका भक्तिभाव झलकता है। वृन्दावन के प्रति उनका प्रेम निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

"आली! हम न भये वृंदावनके द्रुम ।।
हरमित विधि हरिहर ग्रोमर, बहु कल्पित बहु कलप रहीमन ।

× × ×

जह श्रीकृष्ण सखिन साधन ललिता, विहरत वृन्दावन ।
पुहुप पत्रद्रुम डार ललन पर, उडि पदरज परत सकल बन ।।[९२]

उन्होंने गुरुपद का महत्व भी बताया है—[९३]

"बौरे मन! सेव ले गुरु अपना ।।
बिन गुरु सेवे पार न पइहो, ज्ञान कथो चाहे कितना ।। १ ।।

उनकी माधुर्य भावपूर्ण भक्ति उनसे यही कहलवाती है कि,[९४] "व्रज की रीत प्रीत गति न्यारी"। मन्ततः उनको यही कहना पड़ता है—

"तुम नन्दलाल! सदाके कपटी ।। टेक ।।
मैं जमुना जल भरन जात रही, गगरी हमरी घाट पै पटकी ।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, दधि मेरो खाय बाह मेरी पटकी ।।

---

८९. प्रणामी धर्म पत्रिका "मुकुन्द वाणी" अंक जुलाई १९५८ पृ० ४
९०. वही, पृ० ५
९१. प्रणामी धर्म पत्रिका, स० १९९३, ज्येष्ठ अंक, पृ० ३
९२. श्री निजानन्द भजनसागर, पृ० ५
९३. वही, पृ० ८
९४. वही, पृ० ३२

साथको सगो पार उतर गई, नैया हमरी बीचहि ग्रटकी।
कहत "मुकुन्द" रूप लोभानो, हमरी सुरति मूरति बीच ग्रटकी।।"[६५]

इसीलिए मन को ग्राश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा—

"प्रीतम ! प्रीत न करिये, प्रीत किये दुःख होय।"[६६]

फिर भी, मन में एक ही बात है—

"कब मिलिहौ मोहि प्रान प्यारे।
सुनरी सखी मोहे नींद न ग्रावे,
जब तें भये पिया न्यारे।।[६७]

उनकी ग्रन्य रचनाग्रो मे ग्रयज्ञानतिलक,[६८] ग्रथ जागनी लीलावर्णन,[६९] परमधाम वर्णन[१००] सुन्दरसागर,[१०१] ग्रौर बोधसागर[१०२] हैं।

(द) जुगुलदास

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के गुरु स्वामी जुगलदास[१०३] का नाम प्रणामी समाज मे बड़े ग्रादर के साथ लिया जाता है। उनको "कमलावती" की वासना माना जाता है। जुगुलदास की जन्मभूमि दतिया राज्य बतायो जाती है। दतिया के प्रतिष्ठित ग्रौर श्रीमन्त कायस्थ परिवार मे उनका जन्म हुग्रा था। गाँव के लोग उनको *"जियू महाराज" कहकर पुकारते थे। प्रसाद की बात को लेकर उनके जीवन* मे कोई प्रसंग बना था ग्रौर उसमे उनके दिल को बड़ी चोट लग गयी थी। उनके जन्मसंवत के बारे मे पता नही चलता। परन्तु शाहगढ महराज बखतवली सिंहजू देव के दरबार मे इनको उच्चासन मिलता था। इस पर से सिद्ध होता है कि १८ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे ग्राप विद्यमान थे। उनकी समाधि माडेर मे मिलती है। इनके रचे हुए कई ग्रन्थ सुने जाते हैं, जिनमे परमधाम की बड़ी वृत्ति, मनमोहन रसानन्द

---

९५. श्री निजानन्द भजनसागर, पृ० ३०
९६. प्रणामी धर्मपत्रिका, मुकुन्दवाणी ग्रंक, जुलाई १९५८, पृ० ४३
९७ वही, पृ० ४८
९८. वही, पृ० ४९
९९. वही, पृ० ६६
१००. वही, पृ० ७५
१०१. प्रणामी धर्म पत्रिका, स० १९९३, ज्येष्ठ ग्रंक पृ० ३
१०२ वही, पृ० ३
१०३. जुगलदासजीकृत, वैराठनिरूपण (प्राक्कथन), पृ० १

सागर, छोटी और बड़ी पत्री तारतम की प्रणालिका, वैराट निरूपण, महाकारण इत्यादि हैं। "रसानन्दसागर" उनकी गद्य मे लिखित रचना है। इस रचना में परमधाम के पदार्थों का वर्णन है और प्रणामी सम्प्रदाय का विश्लेषण है। तत्कालीन गद्य का उदाहरण दृष्टव्य है[१०४]—

"हे सुन्दरसाथजी ! ऐसे यहां आनन्द सुधा सिंधु में फिसल के सुरत तुमारी बीच अंधकूप दुख अग्नि आफत तूफान जम जाचना के गिर पडी है। सो तुमको फेर बीच उस सुधासिंध के पोहोचाइने जगाइने के कारन मासूक दुलहा तुमारे इस माया में माफिक तुमारे देहधर आए हैं"।

उन्होने तत्कालीन समाज को, विशेषत गृहस्थाश्रमी के लिए जो आचार विचार की बात कही है, दृष्टव्य है—"आचार रीति भांति या दिनचर्या निजधाम पहुँचने की, पूर्णब्रह्म मिलने की, गृहस्थाश्रम मे फकीरी (त्यागवृत्ति, वैराग) करने की जिस पद को त्याग से महात्मा लोग पहुँचते हैं तिसपद को गृहस्थाश्रम द्वारा पहुँचने की और लोक परलोक सुधारने की तथा श्यामश्यामाजी तथा सद्गुरु सुन्दरसाथ के वश करने की लिखी है।"[१०५]

छत्रसाल के वंशजो ने प्रणामी सम्प्रदाय के भक्तो को जब दुःख देना शुरू किया, तब जुगलदासजी से रहा न गया और उन्होने राजा हरवंशराय को एक पत्र लिखा था। यह पत्र भी उनके गद्य का नमूना है।[१०६]

उनके पदो मे भक्तिभावपूर्ण माधुर्य प्रतीत होता है—

(१) "पीजै पीजै इन पीऊको जुगल रस पीजे रे।"[१०७]

(२) "जा छिन प्रीतम वेनु बजायो।
रहस मण्डल तें असत मण्डल लो, एक अमृत स्वर छायो।।"[१०८]

और, प्रीतम का मिलन होते ही वे कह उठेंगे—
"मै तो अब चरन कमल नही छोडो रे।"[१०९]

---

१०४. स० मोहनमुकुन्द सत और कृष्णदासजी सत,
श्री युगलदासजी कृत "मनमोहनसागर" पृ० ११५

१०५. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशाक, आश्विन १६६६, पृ० ४७

१०६. प्रणामी धर्मपत्रिका, माग स० १६६१, पृ० ७–६

१०७. श्री निजानन्द भजनसागर, पृ० ७४

१०८. वही, पृ० ७३

१०९. वही, पृ० ७६

लेकिन मिलन से पूर्व तीव्र प्रेम उनसे यही कहलवाता है—[110]

"दुलहिन भई है दिवानी रे, विरह बउरानी ॥

× × ×

पिय बिन और कछु नहीं सूझत, दस दिसनें भई बिरानी ॥
जड़ चेतन तन मन दस दिस सुधि, पिय बिन और भुलानी ॥

× × ×

दौरि दौरि पसु पंछिन बूझत, तुम देखे पिय जानी ॥
बोलों तो कोई मोहि बतायो, किन गये गर्व गुमानी ॥४॥
रोम रोम पियके रंगमें, दुलहिन मिट दुलहानी ॥
"जुगल" सखी कहै राज पुरातन, कबहूं पुरारंगजरानी ॥५॥

अपनी आत्मा को चितावनी देते हुए उस परमधाम का वर्णन देते हैं—[111]

"आत्मा जीव जागी चलो परमधाम, दर्शन श्यामा श्याम।"

परमप्रिय कृष्ण, जो उनके प्राण के नाथ हैं और साथ ही स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनकी भक्ति द्रष्टव्य है—

'कुर्बानी मेरे प्रानके नाथ, तुम पर कुर्बानी ॥
भई अंग अंग तुमरी नार, तुम पर कुर्बानी ॥
तुम प्राननके हो नाथ, तुम पर कुर्बानी ॥[112]

प्रियदर्शन की कितनी व्याकुलता है—[113]

"रचत नैन कटाक्षनें हमको, रोम रोम घायल करि डारे ॥
भीतर तलफत मनस चारो, बाहेर तलफत नैन हमारे।
सकलवस्था गति निरत रावरी, नवल नवल छिनछिन पर न्यारे ॥"

परमप्रिय कृष्ण की प्राप्ति के बाद तो भक्तहृदय यही कह उठेगा—[114] "अब मोकों को करे पगले न्यारो रे।" उनको कृष्ण की शोभा भी युगलस्वरूप न आकर्षित करती है—[115]

---

११०. श्री निजानन्द भजनसागर पृ० ७१
१११. वही, पृ० ७२
११२. वही, पृ० ७५
११३. वही, पृ० ७१
११४. वही, पृ० ७६
११५. वही, पृ० ७६

"पूरन ब्रह्म ब्रह्मतें न्यारो, दिल मोहोल मेरे आये।
रंग रंगिली दुल्हिन श्यामा, संग साथ सुहाये॥"

(ट) चेतनदास

जुगलदासजी महाराज के शिष्यों में चतुरदास, चेतनदास और जीवनदास के नाम लिये जाते हैं। इनमे से चेतनदास ने प्रणामी साहित्य को अपने भावपूर्ण और उपदेशपूर्ण पदों से समृद्ध किया है। संसार की मायाजाल से दूर रहने के लिए वे कहते है—"वनो बहु मकडोकी जालो, तामे मति फसियो।"[११६]

ससार के तत्वो से मन को हटाकर जब प्रिय मे ही मन को केन्द्रित कर दिया जाए तो एक दिन मन खुद गा उठेगा—[११७]

"परदेशी बलमुवा आए गए॥"

उस प्रियतम से प्रेमपूर्ण ढग से कहा जा सकता है—

"मोहन नाचो हमारे आगे तुमरे नाच हमही नीक लागे।
जयमें नाच बहुत रंग होईं, तुमरे नाच तुले ना कोई।"[११८]

लेकिन प्रियतम कृष्ण और उसकी बशी का असर बहुत ही गहरा पडा—[११९]

"श्याम रौरे मुरलीमे मारत बान।
सुतल रहलि चिहुकि उठि जागे, उडि गई नीद शब्दके तान।
मुरलीके चोट औपध नहि लागे, मन मतवाला फिरे बौरान॥"

फिर भी प्रियतम की मुरली जब बजती है तब दिल उन्ही के पास पहुँच जाता है और सवाल कर उठता है—[१२०] "कौन बन मुरली बाजे घन घोर।" उस सगीतमय निमन्त्रण से खुशी हो होती है, लेकिन अभिव्यक्त तो इसी प्रकार करना चाहिए कि—

"सखी। मधुवनमे बेन बाजे।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बिचमे जमुना घाट नाव लागे।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, तहा कान्ह मोरे दान मागे।"[१२१]

---

११६. श्री निजानद भजनमाला, पृ० ८२
११७ वही, पृ० ८२
११८. वही, पृ० ८८
११९. वही, पृ० ६८
१२०. वही, पृ० १०६
१२१. वही, पृ० १०७

निय जाय रे मोहन । मनहरि के ।
हर घडी मोहे पार बुलावें, कैसे के आऊं मैं जमुना उतरिके ।
जमुना के नीर तीरे धेनु चरावे, मुरली बजावे मुख धरिके ।
श्री वृन्दावनकी कुंजगलीमे, छोड़ि गये वैरागिन करिके ।
मैं जानो पिया मोहि मनावें, उलटि मनाऊं पैया परिके ।"[१२२]

लेकिन प्रियतम कृष्णरहित व्रज हो जाने पर वियोगजनित दुःख वह कहाँ तक सहन कर सके—

"केता दुःख प्रभी एहि व्रज बसिके ।
जाऊं हूं ऊधो माथोपुर नगरि, एनि ग्ररज मेरी कहो प्रवशिके ।
हित मनहित भए प्रभु तजि गये, पापी प्राण नहीं जात निकसके ।
पिया पिया रटन पीली भई देहिया, सूक गये कमलनैन नीर झरिके ।"[१२३]

अन्ततः यही विनती प्रियतम से करनी पड़ती है कि "व्रज में बसो हो बनवारी ।"[१२४]

चेतनदास के पदों में एक ओर मधुरभाव की भक्ति झलकती है, तो दूसरी ओर सीधा उपदेश भी मिलता है—

"सुन्दर देहि देखि मत भूलो, आखिर होय सबै निहकामा ।
जब लग प्रान रहे घट भीतर, निजनाम जपो आठो यामा ।"[१२५]

०० ०० ००

"सांचा रहिए मिथ्या नहिं कहिए, साचा साच समाई ।"[१२६]

०० ०० ००

"झूठासे सब नेह लगावे, साचा सुधि बिसराई ।
झूठाके आपन कर माने, सांचसे दूर पराई ।"[१२७]
"स्वामी मुर्दा सेवक मुर्दा, झूठ ताहि सेवकाई ।
बिन साच पहेचाने काहूको, जरामरन न जाई ।[१२८]

---

१२२. श्री निजानन्द भजनमाला पृ० १०६
१२३. वही, पृ० १०८
१२४. वही, पृ० १०१
१२५. वही, पृ० ८६
१२६. वही, पृ० ६१
१२७. वही, पृ० ६४
१२८. वही, ० ६५

प्रणामी के अन्य सन्तो में केशवदास, भीमभाई, जीवनमस्तान, लच्छीदास, महन्त श्रीजीवराम, बिहारीदास जीवनदास गोपालदास महन्त, परमहंस गोपालदास, आनन्द दास, छत्रूदास, चतुरदास, रतनदास, भवानीभाई, गोवर्द्धनदास, पिताम्बरदास आदि ने प्रणामी सम्प्रदाय मे योगदान दिया है, किन्तु उन सन्तो की जीवनियाँ पूर्णरूप से मिलती नही हैं।

(ठ) जीवन मस्ताना

मिश्रबन्धु ने जीवन मस्ताना का नामोल्लेख किया है और विवरण दिया है, परन्तु जन्मसमय नही दिया। उन्होने उनका रचनाकाल सं० १७५७ माना है।[१२९] मिश्रबन्धु ने उनके प्राणनाथ का शिष्य होने की बात का स्वीकार किया है, लेकिन कवित्व की दृष्टि से हीन श्रेणी में रखा है। वस्तुत: जीवन मस्ताने की रचनाओ मे भी कहीं कहीं कवित्व की चमक दिखाई पड़ती है। जीवन मस्ताना ने निम्नपद्य द्वारा एक परमात्मा को सहायक बताया है और इसके सिवा और सब स्वप्नवत् झूठ दर्शाया है—

"जीवन कलामसे जान लिया,
एक साहिब साचा यार है।
मातापिता सहोदर तीरिया,
ये सब पैसेकी लार है।
इनको चाहिए खूब खजाना,
तब ये करते प्यार हैं।
ताते दुनिया झूठी लड़ी,
इसका क्या इतवार है।
जीवनकलामसे जान लिया,
एक साहिब साचा यार है।"[१३०]

प्रेमपूर्ण भक्ति ही सुखप्राप्ति का साधन है और अद्वैत की स्थिति प्राप्त होती है—

"रौशन नूर हुआ तिन ऊपर,
पूरन इश्क अपार है।
बैठे हक्क हादी रूहे तीनो,

१२९. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग), पृ० ५६५
१३०. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशाक, सं० १९९९ (आश्विन), पृ० ८१

मिल करते नित्यविहार है।
पशु पक्षी समूह रट लावे,
तुही तुही ततकाल है।"[१३१]

कबीर की तरह भक्ति के बाह्य उपकरणों को उन्होंने पसद नहीं किया। उन्होंने कहा है—

"कोई कर माला लै बैठे कोई अंग पखारे पानी से।
कोई आग जला आसिन पर बैठे, कोई लिये वेष भवानी मे।"[१३२]

"रोटी" का महत्व होने पर भी वे मुग्ध हैं युगलविहारी पर और युगलशोभा का वर्णन इस मति से कैसे हो सकता है।[१३३] उसी "सामलिया सुलताने" मे वे ध्यान लगाते हैं—

"मुरली" मधुर बजावत सुन्दर, शब्द सुनावत ताने मे।
लिये दोहनी गौग्रोकी व्रज, घर घर फिरा गुमानेसे॥
दधि स्वाई दधि-बासन कोरे, सबमे रहा सयानेमे।
जीवन मस्ताने ध्यान लगावे, सामलिया सुलतान से॥"[१३४]

वे गोपिकाम्रो के प्रेम को ही सच्चा प्रेम मानते हैं—

"जीवन मस्ताने इश्क वही जो, किया ग्वालिया भेषे का।

०० ०० ००

कटि पर लाल काछनी काछे, अच्छा बना लौनेपे का।
शिर पर मोर पक्षकी मुकटा, पीत पटा परम पेमेका।
निरतत गान करत गति गु जति, करि नटवर अवलेशें का।"[१३५]

कृष्ण मे लगे हुए मन को वृन्दावन की भूमि ही पसन्द है—

---

१३१. वही, पृ० ८३
१३२. वही, पृ० ८३
१३३. "माखन रोटी खात सबमे, युगल विहारी जोटी है।
जाना जिसने लखा सोई जन, क्या बरनो मति छोटी है।
जीवन मस्ताने यह काया, रोटी बिन होत न मोटी है॥"
—श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० १७७
१३४. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० १८३
१३५. वही, पृ० १६२–१६३

"मधुर वेन मृदुंग मजी रे, मुरली धुनि घुघकारी है।
बाजत तायेइ तायेइ, तैसे हनन हथारी है।
थिरकि जात ठहरात चन्द्रिका, लोटत जिमि घरवारी है।
जीवन मस्ताने श्री वृन्दावन मे, विहरत कुंजविहारी है।।"[१३६]

कृष्ण की गोपियों के साथ होती हुई रासलीला का दृश्य देखकर भक्त को कितनी खुशी होती है—

"लचकि लचकि पग धरत धरनि पे, धक धक धक धक पलकनमों।
नाचत अपनी गति विधि साथे, थेइ थेई थेई थेइ पलकनसो।
सब वसन गोपियो प्रेम भिगोये, थाक थका थल थलकनसों।
जीवन मस्ताने उमंग अंग दोउ, पलक न लागे पलकनसों।।"[१३७]

स्वामी प्राणनाथ ने हिन्दू-मुसलमान एकता पर ओर दिया था वैसे जीवन-मस्ताना भी कहते है—

"पाप पुण्यको करती दुनिया, याहो से उरझानी है।
हिन्दू मुसलमा दोऊ फिरके, अपनी अपनी बानी है।
मुसलमान वेचून बतावे, यो निराकार कहे ज्ञानी है।
जीवन मस्ताने साच कहे, ये सतगुरुसे हम जानी है।।"[१३८]

०० ०० ००

"हिन्दू अपनी हुए न जाने, मुस्लिम सरियत सारे की।
पण्डित काजी बोल गुमागुम, भूलां बाग विचारे की।
रहमत लिल्लिह सबसे न्यारा, सुरत निज सरदारे की।
जीवन मस्ताने कहै पुकारे, अक्षर ब्रह्मके पारे की।।"[१३९]

अन्ततः उनको लगता है कि "जीवन मस्ताने इश्क बिना, सब दुनिया गोते खाती है।"[१४०] लेकिन इस जीवन को पार लगाने के लिए गुरु-सतगुरु की भी आवश्यकता है। उन्होने केवल सद्गुरु को ही ससार सागर से पार लगानेवाला बताया है और उनकी महिमा गायी है—

---

१३६. श्री निजानन्द भजनमाला पृ० १८६
१३७. वही, पृ० १८६
१३८. वही, पृ० १७४
१३९. वही, पृ० १८१–१८२
१४०. वही, पृ० १६४

"जीवन मरताने सतगुरु बिन, को देवे पार लखाई है।
सगि कुदरतका ख्याल जगत, सब भूलि गया भरमाई है।
मूल वतन साहिब बिसराया, आयु न परत चिन्हाई है।
मृगजल देखि मृगा ज्यों दौड़त, प्यासा ही मरजाई है।।"[१४१]

— क्योंकि इस संसार में तो,

"पाप पुण्य की हाट लगी है, जित चाहे सो लै जाई है।

०० ०० ००

सौदागर सौदाको आये, देखि कपट मिठाई है।
मोहमाया बस कामक्रोधके, आपुइ गये बिकाई है।
अहंकार और जाति बडाई, इन्ही में बुद्धि लड़ाई है।।"[१४२]

अगर जीवन में सद्‌गुरु की प्राप्ति न हुई तो यह जीवन असफल रहेगा। बिना सद्‌गुरु जप-तप-नियम आदि का ज्ञान उपयोगी नहीं होता[१४३]—

"वेद पढ़े अरु ज्ञान बतावे, दिलमे रोश बढ़ावेगा।
दूसरेको तो ज्ञान बतावे, आप भ्रम बीच भेद न पावेगा।

०० ०० ००

जस बन्दर मरकटहि नचावें, तस माया मोह नचावेगा।
पाप पुण्य दोनो में फांसी, फेरि योनिमे आवेगा।
नहीं किनारा इस सागर मे, फिरि फिरि गोते खावेगा।
कहे मस्तान सुनोभाई जीवन सतगुरु बिन को पार लखावेगा।"

सद्‌गुरु के उपदेश से ही आवागमन के फेरे को टाला जा सकता है[१४४]—

"कई षटकर्मी नेमी धर्मी, निशदिन रहत संदेसे से।
कई आसन मारे दमको साधे, बोलत बचन मजूजेसे।
कई देह दगावें मौनी कहावें, सुगन बतावें लेखे से।
पर जरा मरत नही छूटे जीवन, बिन सतगुरु उपदेश से।।

उनकी रचनाओं की अन्य विशेषता है पचक की। मिश्रबन्धु ने उनके ग्रन्थों मे "पचक दहाई"[१४५] का उल्लेख किया है।

---

१४१. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशांक, सं० १९९९ आश्विन, पृ० ८४
१४२. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० १९६
१४३. वही, पृ० १९०
१४४. वही, पृ० १८४
१४५. मिश्रबन्धु मिश्रबन्धुविनोद (द्वितीय भाग), पृ० ५९२

(ड) गोपालदास

साम्प्रदायिक साहित्य मे गोपालदास दो हुए हैं और इसीलिए दोनों की रचनाओं को अलग करना मुश्किल हो जाता है। फिर भी भाषा के कारण परमहंस गोपालदास–"प्रेमसखी" और महन्त गोपालदास की रचनाएँ स्पष्ट रूप से अलग हो जाती हैं। गोपालदास प्रेमसखी फूलपुर के निवासी थे। उनका जन्म गोरखपुर महामण्डलान्तर्गत मधुवन नामक ग्राम मे हुआ था। उनका जन्म सं० १८१६ के साल मे आषाढ कृष्णा प्रतिपदा रविवार के दिन हुआ था। उनके पिता प० वेदमणि शर्मा और माता सुलक्षणादेवी। गृहत्याग करके देश भ्रमण और धर्मअध्ययन करते हुए वे जगन्नाथपुरी पहुँचे वहाँ से द्वारकापुरी मे आ गए। सभवतः इन्होंने बाद में सूरत के प्रणामी मन्दिर की गद्दी ग्रहण की। अलौकिक ज्ञान एव लाभप्रद चमत्कार दिखाते हुए वे स० १९१८ के साल आषाढ कृष्णा प्रतिपदा के दिन परमधाम पहुँचे। इनकी मृत्यु के सदर्भ मे "वृत्तान्तदीपिका" कार श्री यागदासजी ने लिखा है—

"श्रोनइसमे सवत सोई जाने,
अष्टादश कहि साल बखाने।
मास अषाढ कृष्ण परव आये,
परिवा तिथि रविवार सोहाये॥"[१४६]

साम्प्रदायिक साहित्य मे "प्रेमसखी" के पदो का ही अधिक महत्व है। सवतः उन्होंने अन्य कोई रचना नहीं दी। लेकिन, उनके पदों मे मधुरभक्ति के दर्शन होते हैं उस पर से लगता है कि उनके पद ही उनको एक स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त है।

प्रियतम कृष्ण के विरह में भक्त का जी व्याकुल है और भक्त कह उठता है—"प्रिय मोहे पतिया पठाए, सुनि सुनि जिय अकुलाए।"[१४७] विरह को मिटाने के लिए प्रियतम से यही कहना पडता है—

"तुम जीते मैं हारी पिया मेरे, तुम जीते मैं हारी।
जो तुम कही भई सब सोई, अमरे दुर्जन सवारी।
होत सोई जो करत करावत, होइहै सोई जो विचारी।"[१४८]

---

१४६. प्रणामी धर्मपत्रिका (स० १९९९, पोष), पृ० १५
१४७. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० ४३
१४८. वही, पृ० ४५

आखिर हार मानने के साथ प्रियतम पर इतनी जिम्मेदारी भी थोप देनी है भक्त को कि—[१४९] "अब तो सरन पिया तुमरी हों, लीजे बाह गहि मोर।
भक्त अपने अवगुणों से भी परिचित है, फिर भी नम्रता से यही कहना है—

"अपने चरन मोहि राखिए, अवगुन तजी पिया मोरे।
× × ×
अन्धाधुन्धसो दुहाईस, सुने काहूकी ना कोई।
तहा तुमही मोहि डारी हो, जहां बाद अन्ध घोर॥"[१५०]

इसी मोहमायापूर्ण ससार से छुटकारा पाने के लिए प्रियतम कृष्ण के त्वरित दर्शन की मांग है—

"वेगि दरस मोहि दिजे पिया, सा सो तनकि जिय जाये।
बिन जाने दुख भोग्यो, जाने सही नहीं जाये।
जोलो न देखो नयन भर, तलों धतिनि बराये।"[१५१]

विरह की व्याकुलता के कारण धीरज धरना मुश्किल हो गया है—[१५२]

"कैसे के धीर धरू पिया, पीर भई जिय जोर।
तुमही विदेश मोहि डारी, जहा अन्धकार घोर।
तुम बिन अपना न कोई, दग चोगेका शोर॥
× × ×
जब लग सुधि नही पाई तब लग भ्रमिउ चहुँ ओर।
पाए सदेसवा प्रीतमके, अब कैसे रहे जीव मोर॥"

शायद महापाप किया हुआ है कि प्रियतम का वियोग हुआ है—[१५३]

"विनती एक मोरि सुनो पिया, तुम हो दीन दयाल।
मोसम अधम ना कोई काहुँ, महा सन दुष्ट अपार।
जड़ शठ नीच पतित मैं, विमुख लियो प्रतिपाल।
× × ×
महाघोर पाप मैं किह्यो, तायें विमुख मति मोर।
अब कैसे सनमुख होऊं, निशदिन रहे हिय साल॥"

---

१४९. श्री निजानन्द भजनमाला पृ०
१५०. वही, पृ० ५५
१५१. वही, पृ० ५४
१५२. वही, पृ० ४७
१५३. वही, पृ० ५५

अपना दुःख कहीं न कहीं व्यक्त करने को इच्छा होनी है। प्रिय वियोग से पीड़ित 'सखी' अपनी अन्य सखी से पूछती है—[१५४]

"कब होइहैं सखी पियाको मिलावन।
जो मैं जानतिऊं पियासो बिछुरि हौं,
रहतिऊं चरन लपटावन।
अब तो भूल बहुत भई मोसो,
करहु क्षमा लेहु शरनमे आवन॥"

सखी से यही प्रश्न होता है—"कौन दिन होइ हैं सखी निजघर जावन।"[१५५] प्रणामी सम्प्रदाय की दार्शनिकता के आधार पर, उस परमधाम की ब्रह्मप्रियाएँ यहाँ पर अवतरित हुई हैं। लेकिन "निजघर" पहुँचने के प्रियतम कृष्ण की ही कृपा चाहिए। अत. भक्त कहता है—[१५६]

"कोई ना कहे कौनें दिशा पिया मोर है आली।
द्रुम एक भुज चारि, पछी आठ पट डारी।
सुने न काहु की. कोई अन्यवाद शोर है।"

अन्ततः भक्त को "निजघर" पहुँचने के लिये यही कहना पडता है—
"तुम ठाकुर मैं चेरी. सुनहु पिया विनती मोरी।
रहिउ सनाथ अनाथ भइउ इत, चहुँदिश दुःख भकभोरी॥"[१५७]
× × ×
"मोसो चूक सब विध परी, निजे चरन तले मोही।
हा हा करत हौं चरन परत हो, त्राहि त्राहि मैं तोरी।
तुम बिन मोर कोउ नाही, मैं पापिन मत मोरी॥"[१५८]

इस ससार मे मोहजल और अँधियारे के कारण भक्त जीना पसन्द नही करता—[१५९]

"जलचर राग कराल मोहजल, खाये लेत सब माल।
भारी भँहर अथाह मृगजल, दीसे न टापु करार॥
ता पै रैन घोर अधियारी, तड़पे जल वर्षाए।
गरजे सिन्धु महाभय भारी, कोउ न सुनत पुकार॥"

---

१५४. निजानन्द भजनमाला पृ० ५६ १५५. वही, पृ० ५७
१५६. वही, पृ० ६५
१५७. वही, पृ० ६४ १५८. वही, पृ० ५६
१५९. वही, पृ० ४४

(ढ) मोहनदास

मोहनदास की जीवनी संपूर्ण रूप से नहीं मिलती। लेकिन सूरत की गद्दी पर विराजित मोहनदास महन्त [१६०] यही हों, तो इनका जन्मकाल सं० १९०० के आसपास में होगा। वे सोरमपुर के निवासी थे।

उन्होंने अपने पदों में संसार की माया से छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त की है। क्योंकि--[१६१]

"मातु पिता सुत नारी प्यारी, बन्धु सहोदर भाई।
अन्तकाल कोई काम न आई, हंसा अकेला रमि जाई॥"

लेकिन सांसारिक मोहमाया के तत्त्वों से छुटकारा दिलाने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता रहती है--[१६२]

"बिन सतगुरुको भेद बताई हो।"
नाम मात गुरु विद्या पढाई सो, पुरोहित जो करम कराई सो।"

जीवन में साधुसेवा और गुरुभक्ति का महत्त्व है--

"जो जम बंद करेगा, पीछे समझ पड़ेगा भाई।
× × ×
ना कबहुं साधुनकी सेवा, ना गुरु भक्ति करेगा।
घोर नरक में डारि दियो है, रोए रोए जी करगा॥"[१६३]

सुखदुःख का आधार अपने कर्मों पर है, लेकिन हम दोषी ठहराते हैं भगवान को इसीलिए मोहनदासजी कहते हैं--[१६४] "कर्म लिखा फल पाई प्रभुको, नाहक दोष लगाई।" सफल जीवन के लिए भक्ति ही आवश्यक है--

"यह तन पाय भक्ति न करि है, सो आखिर जमपुर को जाई।
विष्णु भक्ति बहुत नर गए, सो यश वेद पुरानमें गाई॥"[१६५]
× × /
"प्रभु बिना जन्म अकारथ कीनी
धन्धा करि करि दिवस गवावे, पेट भरने की रेनी।
बांधि मगोट महल बनावे, करम लगे अब सेनी॥

---

१६० मणिशंकर करसनजी दवे, महागुजरातना संतो-महंतो अने महात्माओ, पृ० ७२
१६१ श्री नित्यानन्द भजनमाला, पृ० १२२
१६२ वही, पृ० १२८
१६३ वही, पृ० १२१
१६४ वही, पृ० ११६ १६५ वही, पृ० १२१

कभी सत्य कभी झूठ बोलके, धन लेने की रीती।
घटक देखाय गुसांई कहावे, तिलक रमाय सपेती।।
अपना कर्म त्याग के मन्तो, करहिं मायासों प्रीती।
ऐसा चार पदारथ पायके, तनिको ध्यान न देती।।"[१६६]

सच्ची भक्ति वही जिसमें और सभी से उदासीनता हो--

"अगमे सोई ज्ञानी वैरागी।
दुनी से वैर प्रीत प्रीतमसे, सतगुरु पद अनुरागी।
बैठे कल्प वृक्षके छांही, काल करम नहिं लागी।।"[१६७]

प्रियतम कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम ही भक्ति है, लेकिन भक्ति करने के गलत ढग भी द्रष्टव्य हैं--[१६८]

कोई इंगला कोई पिंगला सुखमन, कोई त्रिकुटी विश्वासकरी है।
कोई अनहद अजपाको धावे, गगन गुफा में ध्यान धरी है।
कोई तीरथ कोई व्रत घनेरो, कोई आनन बिच वास करी है।
बिन सतगुरु भर्म मैल न छुटे, नाहक भटक भटी है।"

इसीलिए भक्त को लगता है कि भगवान जग को नचा रहा है--[१६९] तेरी गति कही न जाई, प्रभु तुम भले जग नाच नचाई।"खुद को भी प्रभु की अवस्था का दुःख है। प्रियतम कृष्ण से बिछुड़ जाने पर उससे रहा नहीं जाता--[१७०]

"बलमुआ बिन अब मोरा रहलो न जाए।

× × ×

पिया बिन भवन भियावन लागे, गृह आंगन सोहाए।
चंचल चित मन थिर न रहत है, बिरहा सहलो न जाए।।
पल पल पथ हेरों प्रीतमके, सुमरि हियालाए।
रैनि सेज्या पर नींद न आवे, मारेहि उठल भमाए।।"

प्रियतम कृष्ण की शोभा भी द्रष्टव्य है--[१७१]

"वैजन्ती उर माला लटके, जुड ललित देखि चित अटके।
पेट पामुली मुभग विलक्षन, कट पर काछनी काछना हो।
चलत चरन पर घुंघर घमके, नखशिख कोटि भान शशि चमके।"

---

१६६ श्रीनिजानन्द भजनावली पृ० १३१
१६७ वही, पृ० १३३
१६८ वही, पृ० १३४
१६९ वही, पृ० १२०
१७० वही, पृ० ११४
१७१ वही, पृ० ११९

कृष्ण की बंसी का जादू सारे ब्रज पर था ही, पर ब्रजबालाओं पर अत्यधिक चला था—[१७२]

"एक दिन बंसी बजाए सांवलिया, ब्रज बालाको मोहि लिया
बंसी के शब्द परे ब्रज माहीं, ब्रजनारी तन त्याग दिया।
जो जैसी तैसी उठि धाई, ऐसो जादू डाल दिया ॥"

परेशान करने वाला कृष्ण प्रिय भी ही लगता है। फिर भी कहना पड़ता है—

"गगरी भरन कैसे जाऊं जमुना मैं।
बाट घाटमें नन्द को ढोटा, निरखी रहे गलियनमें।
जो मैं उलटी जाउ पानी के, बहियां पकर रोकत बनमें।"[१७३]

× × ×

"मैं जमुना जल जात मज्जनके, सारी फारी दहलैया।
ले लकुट मटुकी सिर फोरे, दधि मोर देत लुटैया ॥"[१७४]

× × ×

"दीजे दीजे चीर हमारा, मोहन मुरली बजानेवाले।
कार्तिक मास बन करि नारी, मोरे नहाने बसन उतारी ॥
चीर हरि ले गये मदन मुरारि, कदम चढ बैठ दिखाने वाले ॥"[१७५]

लेकिन वही श्याम रूठ के जब गया है, तब यही कहना पड़ता है कि "जाओरे सखि कोई श्याम मनाओ, बिरहा लगि दिए तनमे रे।"[१७६]

प्रियतम का वियोग और भी व्याकुलता पैदा करती है, जबकि—[१७७]

"असाढ है सखि अम्बर गरजे, देखि घटा जिया डरे यो।
ऐसे समय प्रभु तजिगए मोहि, सोची मदन संतापे यो।"

प्रियतम की निर्ममता भी देखिये—

"ऐसे निपट निठुर श्यामरो, अजहु न लिख भेजे पतियारे।"[१७८]

---

१७२. श्री नित्यानन्द भजनावली, पृ० ११८
१७३. वही, पृ० १२४
१७४. वही, पृ० १२४
१७५. वही, पृ० १३५
१७६. वही, पृ० १४४
१७७. वही, पृ० १४२
१७८. वही, पृ० १४३

कोई समाचार न मिलने पर शका भी होती है—

"पिया मोर बसे परदेश, ऊदेस नहि पठाओल रे कि।
दिन दिन बडे कलेस, अदेसवा लागल रे कि।"[१७६]

जिस जगह इतना विरह सहना पडता हो, उस जगह को छोड़ देना ही उचित लगे। लेकिन जब प्रियतम के समाचार मिलते हैं तब, खुशी का ठिकाना नही—[१८०]

"सुन लेहु सखियाँ अनूप एक अखियां, पतिया पियाजी के आए
चलहु सबेरिया अबेर भले रतिया, अगम देश गमि पाए।"

(ण) ज्ञानदास

प्रियतम कृष्ण की स्मृतियाँ जहाँ जुड़ी हुई है, वह भूमि भी प्यारी लगती है। इसीलिए ज्ञानदास ने कहा है—[१८१]

"जग मे है वृन्दावन न्यारा।
देखे कोई बराह संहिता, सब लोकन के पारा।"

क्योकि यही पर प्रियतम का प्रेम मिला था—

"ठाठे रे श्याम मग मारत नजरिया।
बाके बाँके नैन मरोर के मारत।
बस कर राख्यो जिन सबहि गुजरिया॥
मैं जमुना जल भरन जात रही।
काँकरी मारत श्याम मेरी गगरिया॥"[१८२]

ज्ञानदास ने निम्नलिखित पद मे साधुसन्तो के लक्षण बताये हैं—

"समझ मन यह साधुन की रीत।
निशदिन करत करत साहेब पर।
जरत सलभ की प्रीत॥
पर धन पर त्रिय अशुभ कर्म तें।
सदा रहता भयभीत॥
परनिंदा अपवाद श्रवन से।
त्याग जानत फजीत॥

---

१७९. वही, पृ० १३७
१८०. वही, पृ० १४०
१८१. वही, पृ० ५
१८२. वही, पृ० १५५

विरह फिराक धनीकी रावत ।
गावत तिन हीके गीत ।।
नीर मीर के विलग करन को ।
बुद्धि हम प्रचित ।।
ऐसे प्रीत करहु मन मेरे ।
तुम हो सांचे मीत ।।
ज्ञानदास मत गुरु शीतल पद ।
गहु तु परम पुनीत ।।[१८३]

(त) महंत गोपालदास

महन्त गोपालदास ने प्रणामीमत के सिद्धान्तों को सरस और सुबोध करने के हेतु "प्रदेशी समाचार" रचना में ब्रह्मांड की उत्पत्ति, ब्रह्म वासनाओं का ससार की माया में फसना, मूल लीला और धाम की विस्मृति, अनन्त सोहर्पीडित ब्रह्मप्रियाओं को जागृत कराना आदि का वर्णन है । पूर्वार्द्ध हिस्सा स्वयं गोपालदास का है, जबकि उत्तरार्द्ध हिस्सा जुगलदास के शिष्य चतुरदास की 'शब्दावली' का है । 'प्रदेशी समाचार' गुजराती भाषा में भाषान्तरित हुआ गोपालदास द्वारा । उन्होंने गोपालदास की बारालडी, मुरलीधर के कवित्त, छत्रसाल के कवित और ग्रर्जुनदास रचित दान-लीला का वर्णन करते हुए पदो का सकलन 'कवितावली' में किया है । इस कविता-वली' की भूमिका में सकलित सन्तो के जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

(थ) गुलाबदास

गुलाबदास पन्ना के निवासी थे । उन्होंने बहुत से पदकीर्तन, ब्रजलीला, रास-लीला तथा अन्य चेतावनी के पद हिन्दी तथा गुजराती भाषा में लिखे हैं । इनकी 'बारासडी' में ४० पद हैं । इन पदो में सामाजिक एवं धार्मिक विषयो को–विशेषत. प्रणामी सम्प्रदाय के तत्वों को–ले लिया है—उदाहरणार्थ—

(अ) "नना नारी नागिन नाहरी, इनका एक सुभाव ।
जीवत सोखे पीडको, मरे नर कलेजो खाय ।।
मरे नर कलेजा खाय, नारीका ऐसा फन्दा ।
नाहर भखत मास, नारि कर राखे बन्दा ।।
कहत "गुलाबदास" यह नागिन का विष जाय ।
नारी विष ना उतरे, कोजे कोट उपाय ।।[१८४]

---

१८३. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशाक, स० १९९९ आश्विन, पृ० ३५
१८४. स० गोपालदास, कवितावली (२००९), पृ० ४

(ब) 'परा पारब्रह्म सबके परे, तापर और न कोय।
अक्षरातीत अनादि पद, परसि प्रेम रस सोय।।
परसि प्रेम रस सोय, पलक पल नैन निहारो।
पल पल सुमरो तासु, हिये ते नाहिं बिसारो।।
कहत "गुलाबदास" सुनो मन मेरे भाई।
कोटि पलक की पाति, हिये ते नाम न जाई।।[१८५]

उनके संगीत की रागिनियों के ज्ञान के पदों में लालित्य आ गया है—

"वंशी धुनि बाजे माई जमुना तीर।
मधुर अरी ब्रजराय बांसुरिया, रंगि शरद मुख सीर।।"[१८६]

× × ×

"माई। मेरो मन मोह्यो बैन बजाए।
मदन मथन त्रिभंगी मूरती, करत गान गति लाए।।"[१८७]

× × ×

"आज गई मैं बंशी वट में, देखोरी। कान्ह बजावत बंशी।
मधुरे धरे मधुरे सुर गावत, बेधि करति उर प्रेम की गांसी।[१८८]

उनके उपदेश पूर्ण पदों में भी एक मधुरता झलकती है। अपने मन को चेतावनी देते हुए वे कहते हैं—

(अ) " तू तो मान कह्यो मन मेरो, कुसुम रंग जोबन तेरो।
धूप परे परि जात पलक मे साझ सो नाहि सबेरो।
सुर नर मुनि अवतार अवनिमे लिन्हों कहा तिन डेरो।।
क्षुरिके साहेब नेरो।।

× × ×

कहत "गुलाब" प्रेम रस भीने, फेर नही जग फेरो।
सतगुरु संग रस बिलसो, प्रेम प्रीतिसों हेरो।
लगन ऐसी लागल गेरो।।"[१८९]

---

१८५. वही, पृ० ८
१८६. निजानन्द भजनमाला, पृ० १५७
१८७. वही, पृ० १५७
१८८. वही, पृ० १५६
१८९. वही, पृ० १६०

(ब) "वेद के वाद करे सबहिं मत, ब्रह्मको रूप सरूप बतावें ।
नाम बिना कछु रूप नहीं, नहीं रूप बिना कोऊ नामहिं पावें ॥
सारन में नहीं सूझत भेजत, बूझत जीव यों बादि गमावें ।
ऊंट मर्जारि प्रमानि लियो, कहे दास 'गुपावन' गोपत तामें ।।"[१६०]

(द) मुरलीदास

मुरलीधर छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह के पुत्र सभासिंह के दीवान माधवदास के पुत्र थे। भक्ति के पाखंड पर वे कहते हैं—

"कोट तन काट कर तीरथन कोट कर,
गिरि कदलन जाय कोटि विधि सहु रे ।
कोट अष्टांग कर जोग अभ्यास कर,
कोट व्याकरन सुन कोट कहु रे ।
कोटि वपुन गिन रहो, कोट उपवास कर,
कोट पचाग तन भागिन बीच दहु रे ।
एक श्रीराज सुन वृथा पाखण्ड सब,
राज सुख राज सुख राज सुख कहु रे ।"[१६१]

य) अर्जुनदास

अर्जुनदास ने दानलीला का जो वर्णन किया है उसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मैं चली थी सवेरी अबेर भयो,
प्रभु मारग रोकि रहे बनवारी ।
जीते तुम्हीं हम हारे हो मोहन,
दान ले भी हम सो गिरधारी ।।
ऐसी बात सुनी नन्दनन्दनने,
हंसि दोऊ चले बनबाग मंझारी ।
अर्जुनदास के नाथ मनोहर,
नन्द नन्दन वृषभान दुलारी ।।[१६२]

---

१६०. वही, पृ० १६६
१६१. डा० गोपालदास, कवितावली, पृ० २०
१६२. वही, पृ० ४६

(न) सुखलालदास

मुरलीदास की तरह सुखलालदास भी कहते हैं—

"भभूत लगाए से काज न फावत,
जरा बढ़ाए थे ब्रह्म न पावें।
पड़े रंगाए तो फल न लागत,
डंडधारी के पुन हाथ न आवें।"[१६३]

अन्य रचनाकारों में पुरुषोत्तम, निवाज, रतनेश, हरिकेश, हरिश्चन्द्र, गुलालसिंह बख्शी, केशवराज, हिम्मतसिंह कायस्थ और प्रतापसिंह बंदीजन आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है।[१६४] लेकिन इनकी रचनाओं की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। अतः इनको प्रणामीसंतों एवं भक्तों के रूप में स्वीकार करने में शंका उठती है। कहा जाता है कि[१६५] हरिकेश ने 'व्रजलीला' नामक ग्रंथ लिखा है। हृदयशाह के 'हृदयप्रकाश' नामक ग्रंथ का उल्लेख होता है। मिश्रबन्धु ने किसी रसरंगजी का उल्लेख करते हुए, इनका कविताकाल १७८० ई० दिया है। इसकी रचना ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में है। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है। इनका "बानी" ग्रन्थ छत्तरपुर दरबार में उपलब्ध होता है। ये मुसलमान जाति के थे। प्रारंभ में धामी सम्प्रदाय के और बाद में वैष्णव सम्प्रदाय के शिष्य हो गए। इनका पद दृष्टव्य है—

तेरे महेबूब बांकेने चसमकी चाटेमारी है।
खड़ा है सामने ही में जरा नहिं पलक टारी है।
जिलाया उन्हीने मुझको जिनो यह सास भारी है।
तड़पता कहीना जीतो विछोहा दर्द भारी है।।[१६६]

शिवनाथ के रसरंजन ग्रन्थ का उल्लेख भी मिश्रबंधु ने किया है। शिवनाथ जगतराज के दरबार में थे।[१६७] ब्रजदास, ज्ञान ग्यानचन्द, नारायणदास, श्यामदास मोहमदास और लघुरामकृष्णजी की रचनाएँ प्राप्त नहीं हुई, लेकिन उन्होंने साम्प्रदायिक दर्शन को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है।[१६८]

---

१६३. प्रणामी धर्मपत्रिका, भजनांक, २००१ सं० आश्विन, पृ० १५
१६४. (अ) गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव, पृ० ४०६, १०, १६, ६७, ६६, ५०१
(ब) डा० कविवर बिहारी और उनका युग, पृ० ७६
१६५. गौरीशंकर द्विवेदी, बुंदेल वैभव, पृ० ३६०
१६६. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृ० ५६७
१६७. वही, पृ० ६६१
१६८. श्रीकृष्ण प्रियाचार्य के एक पत्र के आधार पर।

राजापुर पटनानिवासी कृष्णदास, मिश्रबन्धु ने[१९९] जिस कृष्णदास का उल्लेख किया है उस से सम्भवतः भिन्न है। कृष्णदास ने अपनी रचना "संक्षिप्त प्रणालिका" में कहा है—

यह पद पाई गोपिका, कियो न जपतप ।
प्रेम सच्छना भक्तिमें, भई सदा सयोग ॥[२००]

पं० घनश्याम दत्त शर्मा— दिनेश ने शीतलदास छबीलदास, मेहरदासजी का उल्लेख किया है, लेकिन उनकी रचनाओं का कोई परिचय नहीं दिया या कोई प्रमाण नहीं दिया।[२०१]

आधुनिक युग में प्रणामी साहित्य गद्य और पद्य में समान परिमाण में लिखा गया है। सदानन्द गोस्वामी ने "पद्मावतीदर्शन" नामक खंड काव्य की रचना की है। दीन कृष्णभिखारी ने भी मध्यकालीन बीतक परंपरा को "निजानंद सागर" में निभाया है। पं० मिश्रीलालशास्त्री ने "मुक्तिपीठ" और मुक्तक पद भी लिखे हैं। आचार्य धर्मदास जी ने भी कई पद दिये हैं। परमधाम में कृष्ण-राधा के रासखेल को देखते हुए वे कहते हैं—

खेलत सब ही सब मिल होरी ॥
सखी ॥ हेली मिलकर आई, रंग बिरंगी गोरी ।
नवरंग सजि सिनगार उमगे, आई जुवतन जोरी ॥
परमधाम में प्रथम हि खेले, राजश्याम की जोरी ।
खेले ब्रज अरन अखंड रासमें, जागनी रंग में ओरी ।
"धरम" हाथ जो जोरी ॥[२०२]

रामरतनदास "रत्न" के प्रेमरत्नावली" नामक पदों का संग्रह प्राप्त होता है। इसका एक पद द्रष्टव्य है—[२०३]

मुरली मधुर बजाये सजनी मुरली मधुर बजाये ।
भनक पड़ी कानन में जब ही तनमन सुधि बिसरायें ॥

१९९. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृ० ८०९
२००. कृष्णदास, संक्षिप्त प्रणालिका, पृ० १२९
२०१. श्री प्राणनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अ क. ६३. पृ० ४
२०२. श्री प्रणामी धर्मपत्रिका व० ३५, अं० ९. पृ० १
२०३. रामरतनदास, प्रेम रत्नावली. पृ० १-२

शेष महेश शारदा भूलहिं, ध्वनि मे ध्यान लगावें ।
देवलोकमे देव निहारे, सुमन वृष्टि बरसावें ।।
रतन प्राणवसी में बस रहे, सुनत सुनत सुख पावें ।।

पूजारी वृंदावनदास, हरिशंकर पुराणी, ब्रह्मचारी पूर्णदास, पं० बालकृष्ण प्रणामी "उदासी", प० कुबेरदत्त उपाध्याय, मानिकलाल "दोषी" राधाकृष्णजी "प्रणामी", प० तिलकधारी मिश्र, श्यामबिहारी दुबे, स्वामी स्वानंदजी, टीकादत्त शर्मा, ब्रह्मचारी पूर्णानंद शास्त्री आदि की पदरचनाएं यत्रतत्र मिलती हैं। कन्हैया लाल भट्ट—दीन सेवक-लिखित भक्तिपदो का संग्रह "श्री राजनाम स्तोत्र" है। रामजी भाई कवि और कृष्णमणिजी की काव्यरचनाएं भी उपलब्ध होती हैं । रामजी भाई की "प्रणामी गीता" उल्लेखनीय रचना है ।

प्रणामी सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारो को अभिव्यक्त करने वाले गद्यलेखक और सशोधको मे महाराज आनन्ददासजी, श्री कृष्णप्रियाचार्यजी, प० कृष्णदत्त शर्मा "सूरि", प० कृष्णदत्त शास्त्री, पं० श्यामशरणजी, वल्लभदासजी, प० कृष्णदासजी, पं० प्यारेलाल, मोहनमुकुन्द सत, मगलदास शर्मा, श्रीमती विमलादेवी मेहता, मुरली दास धामी, घनश्यामदास शर्मा, रणछोड़दास वीरजी, चचलदास धामी, राजदास धामी, यशवतलाल दलाल, डा० डी० जी० पाण्डेय, श्रीमती कृष्णादेवी, टीकानदजी, देवकरन आदि ने अल्पाधिक मात्रा में योगदान दिया है।

सप्रदाय के दार्शनिक मीमासा ग्रन्थो मे "ब्रह्म विज्ञान भास्कर", "आनन्द सागर", "विज्ञान सरोवर", "सृष्टिविज्ञान वर्णन", "प्रणामी धर्मप्रकाश", विराट पट दर्शन, और "परमधाम प्रणालिका" का विशेष महत्व है। "ब्रह्मविज्ञान भास्कर" मे महाराज आनन्दसागर ने सृष्टि की उत्पत्ति, कर्मकाण्ड का निरूपण, उपासनाकाड, ज्ञानकाड और विज्ञान का निरूपण किया। अत मे साम्प्रदायिक रहस्यो को प्रश्नोत्तर से स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ "ब्रह्मबोध भास्कर" के नाम से भी अभिहित किया जाता है । पं० कृष्णदत्त शर्मा "सूरि" लिखित "विराटपट दर्शन" मे विराट के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन तथा विराट के चतुर्दशात्मक भुवनो का विवेचन एव विराट के नाश के अनन्तर विश्व के सूक्ष्मकारण स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। धाम, स्थान अधिकार, साकार-निराकार आदि का विवेचन इसमे किया गया है। प्रणामी सप्रदाय के उपास्य स्वलीलाद्वैत ब्रह्म का समन्वय शास्त्रानुसार स्पष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ मे १४ पर्व (प्रकरण) हैं। समाधान पर्व, जो परिशिष्ट भाग मे जोड़ा गया है, उसमे साम्प्रदायिक भावना को स्पष्ट किया गया है। रणछोड़दास वीरजी ने "परमधाम प्रणालिक", "सृष्टिविज्ञान वर्णन", "पातालथी परमधाम" मे क्षर, अक्षर और अक्षरातीत की सूक्ष्म समीक्षा संभवतः "ब्रह्म बोध भास्कर" के आधार पर ही की है।

श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज ने अनेक प्राचीन रचनाओं का संशोधन किया है। उनके "श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका" में इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति और लय का संक्षिप्त निरूपण किया है। महाराज मगलदासजी की "बोतक दर्शन", "आत्मशोधन" और "आत्मपरिचय" रचनाएं उपदेशात्मक हैं। पं० प्यारेलाल ने "असत्यमुर मर्दनम् "भजन संग्रह" आदि रचनाओं में साम्प्रदायिक तत्वों को चित्रित किया है। पं० कृष्णदत्त शास्त्री लिखित "निजानन्द चरितामृत" का सम्प्रदाय में अपना एक स्थान है।

मध्यकाल से लेकर १९वीं सदी तक का प्रणामी संतों एवं भक्तों का साहित्य अत्यधिक बिखरा पड़ा है। जिन ग्रन्थागारों में ये रचनाएं भरी पड़ी हैं, वहां कोई उपयोग होता नहीं और साथ ही साथ किसी अन्य व्यक्ति को देखने के लिए भी नहीं दिया जाता। अतः विस्तृत जानकारी प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है, प्रणामी सम्प्रदाय की साहित्यनिधि समृद्ध है और खोजी उसमें से भले ही अल्पात्र में लेकिन मुक्तक प्राप्त कर सकता है।



चतुर्थ अध्याय

सिद्धान्त और साहित्य

(अ) प्राणनाथ का दार्शनिक पक्ष

धर्म और दर्शन मनुष्य की प्राचीनतम संपत्ति है। परमात्मा, आत्मा, सृष्टि, मुक्ति आदि के बारे में उनका सोचना ही विश्व के विभिन्न धर्मदर्शनों का कारण है। वस्तुतः मानवजन्म के साथ ही धर्म नामक चीज जुड़ी हुई है। वह मनुष्य के जन्म सिद्ध स्वभाव का एक अविभाज्य अंग है। भले ही धर्म देशकाल के मुताबिक विविधरूप ग्रहण करता रहेगा; लेकिन मनुष्य आज जैसा है वैसा रहेगा और तब तक जगत में धर्म का अस्तित्व रहेगा ही। उसका कभी नाश नहीं होगा। मानववंशशास्त्र के अध्ययन में धर्म के जो विविध प्राचीनतम स्वरूप देखने में आए हैं, वे धर्म के प्रचलित होने के प्रमाण देते हैं। ईश्वर के अस्तित्व के संदर्भ में मानवजाति प्रायः सहमत है और ईश्वर प्राप्ति के लिए मनुष्य की आत्मा सर्वदेशकाल में प्रयत्नशील रही है। डा० राधाकृष्णन् का कथन उचित है।[1] फिर भी, वे कहते हैं कि धर्म शब्द बहुत व्यापक भावनायुक्त और विशाल अर्थयुक्त शब्द है। धर्म की एक निश्चित सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती।[2] इतना स्पष्ट है कि धर्म और जीवन अभिन्न है तथा वह समस्त जीवनव्यापी तत्व है। विशेषरूप से भारतीय जनमानस यही मानता है कि, *धर्मो रक्षति रक्षतः*। इसी रक्षा के हेतुस्वरूप कई धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन एक प्रचलित कथन है कि धर्म अनेक हैं; पर धर्म एक है। अर्थात् विशिष्ट धर्मों में भिन्नता होने पर भी इन धर्मों में सामान्य तत्त्व निहित हैं। प्राणनाथ

---

१. डा० राधाकृष्णन्, धर्मों का मिलन (गु० संस्करण), पृ० ६–१०

२. डा० राधाकृष्णन्, हिन्दू जीवन दर्शन (गु० संस्करण), पृ० ७६–७७

ने परिस्थिति को देखते हुए, इन्ही समान तत्त्वों को प्रकट किया है। डा० गोवर्द्धन शर्मा और प्रो० माताबदल जायसवाल ने इसीलिए कहा है, भारतीय इतिहास के मध्य-काल मे श्री प्राणनाथ एक ऐसे महात्मा थे, जिन्होने तत्कालीन अन्य धर्म-सुधारको यथा कबीर, नानक, दादू आदि की भांति राम-रहीम की एकता का कथन करके हिन्दू-मुसलमानो के पारस्परिक द्वेष को शात करने का सदेश ही नही दिया, बल्कि हिन्दुओ के धर्म-ग्रन्थ वेद-उपनिषद्, गीता, भागवत, मुसलमानो के धर्म ग्रन्थ कुरान, ईसाईयों के इजील, यहूदियो के जंबूर तथा दाऊद पैगम्बर के अनुयायियो के धर्म-ग्रन्थ तौरेत मे मौलिक एकता खोजने का प्रयत्न किया।[3] इस प्रकार मध्ययुग मे रहते हुए भी विश्वधर्म समन्वय का स्वप्न देखा।[4] अतः प्रणनाथ के दार्शनिकपक्ष का स्वतन्त्र रूप से विवेचन करने से पहले उक्त सभी विदेशी धर्मों और भारतीय-अद्वैतमत-सिद्वात को दार्शनिक पक्षपात का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करें।

(क) यहूदी, ईसाई, इस्लाम, भारतीय अद्वैतमत सिद्धात और प्रणामी सम्प्रदाय का तुलनात्मक अध्ययन

यहूदीधर्म प्राचीनधर्म है कि जो एकेश्वरवाद की घोषणा करता है। जेहोवाह अर्थात् यहूदियो के ईश्वर ने जो दश आदेश दिये उनका अगर यहूदी लोग पालन करते रहे, तो उनकी रक्षा करने की शर्त मूसा से की गई। मूसा को दिये गये दश आदेश (Ten Commandments) इस प्रकार हैं--

१ मैं तेरा भगवान हू, जिसने तुझे इजिप्त के बदीखाने से मुक्त कराया मेरे सिवा अन्य किसी भगवान की उपासना मत करना। (अर्थात् एकेश्वर उपासना)।

२ धातु पत्थर आदि मे से कोई मूर्ति मत बनाना तथा वैसी अन्य मूर्ति के प्रति झुकना नही।

३. व्यर्थ मे प्रभुस्मरण करना नही।

४. छ दिन तक काम करना पर सातवें दिन आराम करना ताकि नौकर-दास पशुपक्षी को भी आराम मिले।

५. मां-बाप का आदर करना।

६. किसी की हत्या न करना।[5]

---

३. (अ) सप्तसिंधु (पत्रिका), अगस्त, १९६४, पृ० २१
(आ) सं० धीरेन्द्र वर्मा, व्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीत खंड), पृ० ५६०

४. आनन्द शंकर ध्रुव, धर्म वर्णन, पृ० १९८

५. तौरेत, २४–१९ : २१ (Leviticus 24–19.21)

७ व्यभिचार मत करना

८. चोरी मत करना।

९. किसी के विरुद्ध मे झूठी गवाह मत देना।

१०. पडोसियो के घर पर, नौकर पर अथवा पशु पर लोभ मत करना।

ये सभी आदेश "Thou shalt" से शुरू होते हैं। इस धर्म मे ईश्वर को एक अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप माना गया है। शुद्ध नीतिप्रधान एकेश्वरवाद इस धर्म की विशेषता है। यहूदी सतो मे से एमोस, होमिया, इसाईयाह, जेरेमियाह और एजेकियल ने यही उपदेश दिया कि, जेहोवाह सिर्फ यहूदियो का ही नही परन्तु सब का भगवान है। यहूदियो ने अगर कुमार्ग पर चलना सीखा तो जेहोवाह उन्हें भी सजा देंगे। धर्म पालन करने वालो का है और सारा समाज भले ही कुमार्ग पर चलता हो, लेकिन भगवान के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझकर पवित्र जीवन गुजारना चाहिए। कर्मकाण्ड से भी सदाचार ज्यादा महत्वपूर्ण है। बाह्याचार नही, लेकिन अतरतल की भक्ति भगवान को प्यारी है। सक्षिप्त मे इस धर्म ने एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा का विरोध, आत्मा की अमरता, पाप-पुण्य के बदले की मान्यता नीति नियम, पूर्णजीवन आदि बातो को केन्द्र मे रखा है।

लेकिन यहूदियो की पशुबलिक्रिया [६] पर राहुल साकृत्यायन कहते हैं, मूर्ति-पूजक समुदाय तो प्रायः सारा ही इस पशुबलिक्रिया मे अत्यन्त श्रद्धालु देखा जाता है; किन्तु अमूर्तिपूजक धर्म भी इससे वचित नही रहा। यहूदियो की भव्य वेदियाँ सदा पशुरक्त मे रजित रही हैं। [७]

---

६. तौरेत, २२-२० : २४ (Leviticus 22-20 : 24

That will offer has oblation for all his vows or for all his freewill offerings, which they will offer unto the Lord for a burnt offering Ye shall offer at your own will a male without blemish, of the beeves, of the sheep, or of the goats . Blind or broken or maimed, or having a wen, scurvey or scubbed, ye shall not offer these unto the Lord, nor make an offering by fire of them, upon the alter unto the Lord ··· Ye shall not offer unto the Lord, that which is bruised, or crushed, or broken or cut,

७ राहुल सांकृत्यायन, इस्लामधर्म की रूपरेखा, पृ० १०१-१०२

यहूदियों के दश आदेशों (Ten Commandments) की तरह प्रणामी सम्प्रदाय की दश आज्ञाएँ इस प्रकार हैं—[८]

१ धार्मिक नियमों का पालन किये बिना आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति स्थायी नहीं रह सकती। स्थायी उन्नति के बिना देश तथा समाज कभी सुखी नहीं रह सकता। इसलिये धार्मिक नियमों का अवश्य पालन करें।

२ मांसभक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन, परधन तथा परनिन्दा और असत्य भाषण इन षट दोषों से अवश्य बचें।

३ मनुष्यमात्र में बन्धुभाव उत्पन्न करते हुए जीवात्मा को सत्पथ पर ले जाना चाहिए। जिससे लोक परलोक सुगम बनें।

४. सत्कर्म और सद्भावना के बिना संसार में सुख और शान्ति का आनन्द प्राप्त नहीं होता, यह अवश्य ध्यान रखें।

५. समाजशोषण और असद्भावना को सबसे बड़ा पाप समझें।

६. अन्य के साथ उपकार तथा न्यायवृत्ति रखना, सब से बड़ा पुण्य कर्म समझे।

७ अपने लिए कष्ट सहन कर लेना ही तप और दूसरे के प्रति नरम होना ही सबसे बड़ा त्याग है।

८. झूठे आडम्बर में पड़कर साम्प्रदायिक और सैद्धान्तिक तथ्यों को ठुकराना महान पाप समझें।

९. धार्मिक ज्ञान के प्रचार में किसी से व्यर्थ वाद-विवाद नहीं करना चाहिये। दुराग्रही को समझाने की चेष्टा भी व्यर्थ ही है।

१०. धर्म प्रचार का उत्तरदायित्व गृहस्थ और सन्त दोनों पर है। इसके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिये।

इतना स्पष्ट है कि प्रणामी सम्प्रदाय के उक्त दस आदेशों में सैद्धान्तिक तत्वों का विशेषत समावेश नहीं हुआ, जबकि यहूदी धर्म के आदेशों में कई सैद्धान्तिक तत्व भी हैं।

मानवप्रेम, बन्धुत्व, सेवा और क्षमा का सदेश देने के लिए जिसस (Jesus) को यहूदी धर्म से अलग होकर नया धर्म स्थापित करना पड़ा। जिसस ने जब अपनी धार्मिक प्रवृत्ति शुरू की, तब यहूदी के सादुकी, फरोशी के ईसी और येरोप्यटी वादोंमें से फरोसी का विशेष जोर था। फरोसी के बाह्याडबर, धर्म के नाम पर धोखेबाजी आदि

---

८ सं० ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द, पटऋतु, पृ० १७

से ऊबकर जिसस ने नीतिप्रधान सरल उपदेश देना शुरू किया। सन्त ज्हान ने जिसस को उपदेश दिया कि,[९] "धर्मराज्य का समय निकट आया है अतः पाप न करना और सब के प्रति प्रेम और समानता से बर्ताव रखना। दो वस्त्र हो तो नग्न को एक वस्त्र दे देना। जिस के पास अन्न हो तो भूखो में बाट कर खाना। सादुकी और फरोशी लोगो को अपने पाप के लिए प्रायश्चित करना चाहिए। "४० दिन की एकान्तसाधना के बाद जिसस ने यही उपदेश दिया कि "भगवान प्रेम और दया का सागर है। वे पिता हैं और सब मनुष्य उनकी सन्तान हैं।" उनके धार्मिक सिद्धातो मे ऐकेश्वरवाद नीतिपूर्णजीवन, ईश्वर का वात्सल्यपूर्ण पितृत्व सबंध, ईश्वर–पिता मे अटूट विश्वास, मानवसेवा, क्षमा, अहिंसा, नम्रता और आत्मनिरीक्षण को प्रमुख स्थान मिला है। यहूदियो की हिंसा प्रवृत्ति के विरुद्ध मे ईसाई धर्म ने कहा है, मुझे हिंसायुक्त यज्ञ नही चाहिए; मैं ईश्वर की कृपा चाहता हूं।[१०] जिनको अमृतत्व की प्राप्ति करनी है उनको चाहिए कि माँ–बाप, पत्नी आदि का त्याग करें।[११] लेकिन यह भी कहा गया है कि देव और द्रव इन दोनो की साथ मे साधना नही हो सकती—

> No man can serve two masters : for either will hate the one and love the other, or else he will hold to the one and despire the other We cannot serve God and mammon[१२]

अपने धर्म के प्रचार एवम् प्रसार के लिए शिष्यो को भेजते वक्त यही कहा कि तुम लोग अपने पास सोना चादी या निकम्मे वस्त्र भी मत रखना।[१३] अर्थात् जिसस ने सन्यासधर्म को भी महत्त्व दिया है। यहूदी और ईसाई धर्म मे यही भिन्नत्व है कि यहूदियो के मुताबिक ईश्वर विश्व का सम्राट है और नीति के नियामानुसार जगत का नियमन करता है। ईसाईधर्म कहता है, ईश्वर पवित्र पिता है और सब पर प्रेम रखता है। यहूदी धर्म ने नियमो और बाह्यविध पर जोर दिया है जबकि ईसाई धर्म प्रेम और आत्मा की पवित्रता पर। यहूदी धर्म मे धार्मिक विधि और पूजा का स्थान है, लेकिन ईसाईधर्म ने मानवसेवा के आदर्श को प्रमुख स्थान दिया है। यहूदी धर्म न्याय के सिद्धातों का कडा पालन प्रस्तुत करता है, लेकिन ईसाई अपकार पर भी उपकार के आदर्श को मानता है। यहूदी धर्म मे नैतिक मूल्यो का गहन अन्वेपण नही मिलता तथा बदला लेने की वृत्ति के दर्शन होते हैं। ईसाई धर्म ईश्वरी राज्य

९. आनन्द शकर ध्रुव, धर्म वर्णन, पृ० २०४
१०. New Testament, Matthew, 9:13
११. वही, पृ० १६-२६
१२. Ibid, 6:24
१३. Matthew 10.9–13

का संदेश देते हुए, नैतिक मूल्य का सूक्ष्म विश्लेषण करता है तथा क्षमा, आत्मभोग आदि सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है। ईसाईधर्म के अनुसार ईश्वर का राज्य सर्वव्यापी राज्य है। यहूदी धर्म मानता है कि ईश्वर लोगों को सजा देकर सुधारते हैं, लेकिन ईसाई धर्म का कहना है कि लोगों के पाप एवम् दुःख दूर करने के हेतु ईश्वर खुद अपने आप पर उनके दुःख सहन कर लेते हैं। ईसाई धर्म ने भी यहूदी धर्म के दस आदेशों को स्वीकार किया है, लेकिन उनको सरल और स्पष्ट भी किया है। ईसाई धर्म के भक्ति आदि तत्वों को लेकर डा० लारिन्सर आदि विद्वानों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि कृष्ण की गीता पर बाइबल का प्रभाव है। लेकिन इस बात का बालगंगाधर तिलक ने युक्तियुक्त खंडन किया है।[१४] सर्वविदित तो यही है कि ईसाई धर्म में भक्तितत्व का प्रवेश हिन्दूधर्म के कारण ही हुआ है। सेन्ट टेरेसा की भक्ति-पद्धति सात भूमिकाओं में विभक्त हुई है। टेरेसा ने प्रथम दो भूमिका में वैराग्य की आवश्यकता बतायी है, तीसरी और चौथी भूमिका में आत्मज्ञान उत्पन्न होती है, पांचवीं, छठवीं और सातवीं भूमिकाएं परमात्मा के साथ अधिक ऐक्य पाने के लिए हैं। अर्थात् योगवसिष्ठ में दिये गये ज्ञानमार्ग की भूमिकाओं से ये कुछ अंश में मिलती जुलती हैं।

इस्लाम धर्म के संदर्भ में डा० राधाकृष्णन् ने कहा है कि इस्लाम गूढतारहित धर्म है। उसकी ताकत और उसका सौंदर्य उसकी सादगी में निहित है। यह नैसर्गिक धर्म है---- इसमें जाति के बंधन नहीं हैं, पुजारी या पुरोहित नहीं है, इसमें किसी यज्ञ या विधि-नियमों की जरूरत नहीं पड़ती------ व्यावहारिक पक्ष में देखा जाए तो प्रजातन्त्र इसका प्रधान स्वर है।[१५]

इस्लाम एक विश्वधर्म है। ईसाईधर्म की तरह यह धर्म भी एक महापुरुष द्वारा स्थापित है और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करता है। इस्लाम का अर्थ ही होता है कि ईश्वर की शरण में जाना। ईश्वर की शरणागति ही इस धर्म का मुख्य रहस्य है। इस्लाम के धार्मिक सिद्धांत ईमान और दीन विभागों में बँटे हुए हैं। ईमान के अन्तर्गत श्रद्धा आदि का और दीन के अन्तर्गत धार्मिक आज्ञाओं का पालन का वर्णन होता है। इस्लामधर्म भी यहूदी और ईसाई धर्म की तरह एकेश्वरवाद के सिद्धान्त में मानता है। ईश्वर को इस्लाम ने सृष्टि का कर्ता, धर्ता हर्ता माना है— "वह (ईश्वर) जिसने भूमि में से जो कुछ है (सबको) तुम्हारे लिये बनाया।[१६]

---

१४. बालगंगाधर तिलक, श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र, पृ० ५८८-५९३

१५. डा० राधाकृष्णन्, धर्मोनु मिलन (गु० सस्करण), पृ० १६४–१६५

१६. कुरान, २:४:२

उसने सचमुच भूमि और आकाश बनाया। मनुष्य को क्षुद्र बिन्दु से बनाया। उसने पशु बनाये, जिनसे गर्म वस्त्र पाते हो तथा और भी अनेक प्रकार के लाभ उठाते हो।[१७] वह तुम्हारा ईश्वर सब चीजों का बनाने वाला है, उसके सिवाय कोई पूज्य नहीं है।[१८] ईश्वर सब चीजों का सृष्टा एवम् अधिकारी है।[१९] निस्सन्देह तेरा ईश्वर मनुष्यों के लिए उनके अपराधो को क्षमा करनेवाला है।[२०] ईश्वर काफिरो पर भी क्षमा करता है—इस बात मे (हे मुहम्मद) तेरा कुछ नहीं, चाहे वह (ईश्वर) उन (काफिरो) को क्षमा करे या उन पर विपद डाले, यदि वह अत्याचारी है।[२१] परमेश्वर सत्य है।[२२] परमेश्वर मातापिता स्त्री पुत्रादि रहित है।[२३]

इस्लाम धर्म मे भी परमेश्वर के साकार और निराकार रूप का वर्णन होने की मान्यता है। साकार रूप के मानने वाले कुरान वाक्यो का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि वह (परमेश्वर) जिसने छः दिन मे भूमि और आकाश को बनाया, और फिर "अर्श" पर विराजमान हुआ।[२४] कृपालु परमेश्वर "अर्श" पर विराजमान हुआ। उसका "अर्श" जल पर है।[२५] जो फरिश्ते अर्श को उठाये हैं और जो उसके पास अपने परमेश्वर की स्तुति करते हैं।[२६] यहाँ पर "अर्श" पर विराजमान परमेश्वर और पुराणो के शेषशायी ईश्वर मे साम्य दीखता है। इस्लाम मे यह सिद्धान्त भी मिलता है कि ईश्वर, निराकार, अनुपम, सर्वव्यापक, अद्वितीय और अति समीप है। कुरान मे कहा गया है, निस्सन्देह तुम्हारा ईश्वर एक परमेश्वर है, उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं, वह कृपालु और क्षमाशील है।[२७] ईश्वर गवाही देता है कि उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं। फरिश्ते तथा ज्ञानी लोग इस पर दृढ हैं कि उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं जो शक्तिमान एव ज्ञानी है।[२८] वह आदि है, वह अन्त है, वह

१७. कुरान, १६.१:३–५
१८. वही, ४.७:२
१९. वही, ३९:६.१०
२०. वही, १३:१.६
२१. वही, ३:१३:८
२२. वही, ३१:३:११
२३. वही, १२१.१:३
२४. वही, ५७:१:४; १०:१:३; १३:१:२; ३२:१:४;
२५. वही, २०:१:५
२६. वही, ४०:१:७
२७. वही, २:१९:११
२८. वही, ३.८:६

बाहर है, वह भीतर है; वह सब चीजो का जानकार है ।[२९] निश्चय ही भगवान (अपने) ज्ञान से सब चीजों को घेरे हुए हैं ।[३०] (नास्तिक) भगवान की मुलाकात के संदेह मे हैं, वह सब व्यापक है ।[३१] हिन्दू धर्म के देवदूतो जैसी ही इस्लाम की फरिश्तो की कल्पना है । जिस प्रकार पुराणों मे परमेश्वर के बाद अनेक देवता भिन्न-भिन्न काम करने वाले माने जाते हैं—यमराज मृत्यु के, इन्द्र वृष्टि के—इसी प्रकार की फरिश्तो की कल्पना है । इब्लीस फरिश्तो मे देवेन्द्र और परमेश्वर ने मनुष्य जाति के आदि पिता आदम को बनाया है । कुरान मे कहा गया है, जब हमने फरिश्तो को दण्डवत् करने का कहा, तो इब्लीस के अतिरिक्त सब ने किया । इब्लीस बोला—क्या मैं उसे दण्डवत् करूँ, जो मिट्टी से बना है ।[३२] फरिश्तो की सहायता के सदर्भ मे कहा गया है, निस्सन्देह तुम्हारे ऊपर रखने वाले हैं, किरामत् कातिबीन । जो कुछ तुम करते हो, उसे (वह) जानते हैं ।[३३] फरिश्तों में जिब्राईल सब का सरदार है, मीकाईल मृत्यु का और इस्राफील प्रलय का फरिश्ता है । ऐसा कुरान में निर्देश मिलता है । [३४] कुरान मे इब्लीस को शैतानो का सरदार बनाया गया है और उसकी क्षुद्रता और गर्व के कारण स्वर्ग से निकाल दिया गया ।[३५] शैतान (पापात्मा) के सदर्भ मे कहा गया है, यह केवल शैतान है, जो तुम्हें अपने दोस्तों से डराता है । कह मेरे स्वामी । शैतान के प्रलोभनो से मैं तेरी शरण मे आया हूँ । जब तुम कुरान को पढ़ो, तो दुष्ट शैतान से रक्षा पाने के लिए ईश्वर की शरण मागो ।[३६] शैतान, फरिश्तो आदि का वर्णन कुरान मे मिलता है, लेकिन जीवात्मा के सदर्भ मे "कुलरूहु मिनम्रि रब्बी" (कह कि जीव मेरे परमेश्वर की आज्ञा से है ।) के सिवा कोई उल्लेख नहीं ।

इस्लाम ने सृष्टि-जगत को भ्रमात्मक या मिथ्या नही माना । इस्लाम मानता है, आकाश, पृथ्वी और जो कुछ मध्य मे हैं, इन सब को मिथ्या नही, एक निश्चित उद्देश्य से उत्पन्न किया गया है ।[३७] क्यो नही परमात्मा पर विश्वास करते, तुम

२९. कुरान, ५७ १:३
३०. वही, ६५:२·५
३१. वही, ४१:६:१०
३२. वही, १७·७:१
३३. वहीं, ८२ १.१०–१२
३४ वही, २ १२:१–२
३५. वही ७ २ ११–१७
३६. वही, ३:१८:४, २३:६.५: १६.१३ ६;
३७. वही, ४६:१ ३; ४४ २:६; ४५·३ १;

मृतक थे फिर उसने तुम्हें जिलाया, और फिर मारता है, तदनन्तर जिलायेगा, अन्त में उसके पास ही जाओगे। वह जिसने तुम्हें और जो कुछ पृथ्वी में है सबको उत्पन्न किया, फिर आकाश पर चढ़ा और उसे सात आकाशों में विभक्त किया। वह निस्सन्देह सब वस्तुओं का ज्ञाता है।[३८] वह जिसने तुम्हारे लिए नक्षत्रों का निर्माण किया, कि जिसमें जंगल, समुद्र और अन्धकार में रास्ता पावें ········ ··· वह जो आकाश से जल गिराता है। फिर उससे सारी उद्भिद्यमान वस्तुएँ निकाली। उसमें मैं (प्रभु) ने वनस्पति निकाली, फिर उसमें संयुक्त फलों को उत्पन्न करता हूं कितने ही खजूर की डाल में लटकते हैं, अनुपम और सोपम अंगूर, अनार और जैतून के उद्यान। जब वे फलते और पकते हैं तो उनके फलों को देखो। इसमें ही विश्वासी जातियों के लिए प्रमाण हैं।[३९] क्या तू नहीं देखता परमेश्वर ने ही जल उतारा, फिर उससे अनेक प्रकार के अच्छे फल और पर्वतों में श्वेत, रक्त, अति कृष्ण आदि अनेक वर्ण की उपत्यका उत्पन्न हुई। कीड़े, पशु और मनुष्यों में बहुत प्रकार के वर्ण वाले प्राणी हैं। इस प्रकार के ज्ञान वाले भगवान से डरते हैं। परमेश्वर निस्सन्देह क्षमाशील और बलिष्ठ है।[४०] मनुष्य को बिन्दु से सिरजा।[४१] मैंने पङ्क से ही मनुष्य को बनाया और उससे पहले प्रज्वलित अग्नि से जान्न (जिन्न) उत्पन्न किये।[४२] धन्य है जिसने आकाश में शिखर, बड़ा प्रकाशक चन्द्र और प्रदीपों को सिरजा। जिसने छः दिनों में पृथ्वी, आकाश और जो उनके भीतर हैं निर्माण किये, फिर स्वर्ग पर चढ़ा।[४३] क्या अविश्वासियों (नास्तिकों) ने नहीं देखा, आकाश और पृथ्वी पहले ढँके थे, फिर हमने उन दोनों को उघाड़ा और पानी से सारे प्राणियों का निर्माण किया। आकाश को सुरक्षित छत बनाया; वह उसके प्रमाण हैं, किन्तु (वे) विश्वास नहीं करते। जिसने रात, दिन, चन्द्र, सूर्य को बनाया (जो कि) सारे आकाश में परिक्रमा देते है। पूर्वजों में से भी किसी को अमर नहीं बनाया, यदि तू (मुहम्मद) मरे तो क्या वह (नास्तिक) अमर है। सारे प्राणी मृत्यु के स्वाद रूप है।[४४]

---

३८. कुरान, २:३:८-६
३९ वही, ६:१२:३-५
४०. वही, ३५.४.१-२
४१. वही, १६:१:४
४२. वही, १५·३.१-२
४३. वही, २५:६.२; २५:५ १५
४४. वही, २१.३:१, ३-५

ईसाई और यहूदी धर्मों की तरह इस्लाम धर्म भी जीवो के पुनर्जन्म को नही मानता। लेकिन कयामत (प्रलय या पुनरुत्थान) के दिन प्रत्येक जीव अपने पुराने शरीर के साथ जी उठेगा। उसी दिन उसके पाप-पुण्य का न्याय होगा। उस निर्णय-दिन के विषय मे कुरान मे निम्नलिखित भाव हैं—जिसने पुण्य कर्म किया, वह अपने लिये, जिसने पाप कर्म किया वह अपने लिये। तेरा ईश्वर किसी सेवक के साथ अन्याय नही करता।[४५] उस दिन कोई दूसरे का भार नही उठायेगा, यदि बहुत भार से टूटा जाता कोई पुकारे तो भी उसमे कुछ लेकर कोई न ढोवेगा, चाहे सम्बन्धी ही क्यो न हो।[४६] *जो कुछ उन्होने अर्जन किया, अवश्य सब प्राणी उसका फल पायेंगे,* वह अन्याय से पीडित न होगे।[४७] फिर भी, किये गये पापो पर पश्चाताप होने पर क्षमा प्राप्ति का निर्देश कुरान में है।[४८] पुण्यात्मा मृत्यु के बाद स्वर्ग की और पापी नर्क को प्राप्त करती है। पुराणादि की तरह कुरान में भी स्वर्गलोक का वैभवपूर्ण वर्णन है—शुभ कर्म करने वाले विश्वासियो को शुभ-सदेश सुना। उनके लिए उद्यान है, उसके नीचे नहरें बहती हैं, सारे अच्छे फल वहाँ लाये गये हैं। (स्वर्गवाले) उन लोगो को, जैसा कि पहले कहा गया था, वैसा ही यह उपहार दिया है। उसमे उनके लिए सुन्दर स्त्रिया है, और वह (पुण्यात्मा लोग) सर्वदा वहा के निवासी होंगे।[४९] उद्यान का वृत्तान्त जो उनके लिए प्रतिज्ञात है, वहा दुर्गन्ध रहित जल की नहरें दूध की नहरें हैं, जिनका स्वाद नही बदलता, शराब की नहरें जो पीने वालो को स्वादिष्ट हैं, फेनरहित मधु की नहरें हैं, उनके लिए वहाँ बहुत से स्वादिष्ट फल हैं।[५०] तुम और तुम्हारी पत्निया सादर उद्यान मे प्रवेश करो। उन (स्वर्गियो) के पास सुनहली थाली और प्याले लिये लडके घूमते हैं, वहा सब कुछ है—जो कुछ चाहिए और जो कुछ नेत्रो को अच्छा प्रतीत होता है, तुम लोग सर्वदा वहाँ के वासी रहोगे। यह वही उद्यान है, जिसे तुमने उसके बदले पाया है, जो कुछ कि तुम करते थे। तुम्हारे लिए वहा बहुत से स्वादु फल हैं, उनमे से खाओ।[५१] प्रभु के विरोध मे खड़े होने से डरने वालो के लिए दो बाग हैं। फिर तुम कौन कौन से प्रसादो को

४५. कुरान, ४४ ६ २
४६. वही, ३५:३:४
४७. वही, ४५:३:१
४८. वही, २.६ २
४९. वही, २:३:४
५०. वही, २६ २ ४
५१. वही, ४३:७ ३-६

भुठलाओगे ? जहा बहुत-सी शाखाएँ है। उन दोनो बागों में दो झरने झरते है। उनमे नाना प्रकार के सारे अच्छे फल है। तकिया लगाये कोमल तूलशय्या पर बैठे हैं, दोनो बागो मे फल लटक रहे हैं। वहाँ मनुष्यो और जिन्नों से न छूई गई नीचे दृष्टि वाली रमणियाँ है। उन बागो मे दो गर्म पानी के सोते हैं। वहाँ अच्छे अच्छे फल खजूर और अनार हैं। सब उद्यानो मे परिशुद्ध सुन्दरियाँ हैं। संयम मुक्त, गौरवर्णवाली, शामियानो मे हैं। किसी मनुष्य या जिन्न से वह (इससे) पूर्व नही छूई गई हैं। वहा तकिया लगाये हरे पर्दे के नीचे बैठे हैं और वहा कोमल बहुमूल्य बिछौने भी है।[५२] स्वर्ग मे जितना सुख वैभव है, नर्क में उतनी ही विपत्ति और यातना। "कुरान कहता है, जिन्होंने हमारे प्रमाणो पर विश्वास नही किया, थोडी देर में हम उन्हे अग्नि मे फेंक देंगे। जब उनका एक चमडा जल जायगा, तो उसमे दूसरा हम बदलेंगे, जिसमे कष्ट आस्वादन करें।[५३] उन सारे शैतान के अनुयायियो के लिए नर्क का वचन दिया गया है, उसके सात द्वार है, प्रत्येक द्वार मे एक कुण्ड बाटा गया है।[५४] काफिरो के लिए आग्नेय वस्त्र बनाये गये हैं। उनके सिर पर गर्म जल डाला जाता है। उससे जो कुछ पेट में है और जो चमड़ा है, सब वह जाता है। उनके लिए लोहे के मुद्गर हैं। कण्ठ रुक जाने से वह बाहर निकलना चाहते हैं, किन्तु फिर भीतर डाल दिये जाते है। चक्खो नर्क यातना को।[५५] उस अग्नि के समूह मे डाल दे। फिर १४० हाथ लम्बी बेड़ी मे बाध दे। वह महान परमात्मा पर विश्वास नही करता था। याचको को भोजन देने मे दत्तचित न होता था। यहा इसके सिवाय उसका कोई मित्र नही। घाव के धोये जल के सिवाय (कोई) भोजन नही। अपराधी छोड़ दूसरा कोई उसे नही खाता।[५६] कुरान मे स्वर्गियो और नर्क निवासियो के बीच कई स्थान पर[५७] दिये गये वार्तालाप में ज्ञात होता है कि स्वर्ग और नर्क दोनो पास-पास हैं। नर्क उत्तर तरफ और स्वर्ग दक्षिण की ओर। दोनो के बीच एक दीवार है। कुरान कहता है, (स्वर्ग और नर्क) दोनो के बीच एक दीवार (ओट) है, उसके ऊपर मनुष्य है,जो प्रत्येक को उनके लक्षणो से पहचानते हैं। वे स्वर्गियो से बोलते-तुम्हारे लिए नमस्कार है। वे स्वर्ग मे प्रविष्ट नही हुए, वे स्वर्ग के इच्छुक हैं। जब नारकीयो की ओर (उनकी) दृष्टि पड़ी, बोले-हे मेरे स्वामी, हमें

५२. कुरान, ५५:३ ४६-७७
५३. वही, ४ ८.६
५४. वही, १५:३-१६
५५. वही,
५६. वही, ६६:२-२८-३४
५७. वही, ७४.२:६; १०,१२-१४, १६-१८

अपराधी लोगों के साथ न कर।[५८] इस दीवार को "इयुराफ" कहा जाता है। कर्मों के मुताबिक ही स्वर्ग या नर्क मिलता है। लेकिन कर्म करने में भी जीव की परतन्त्रता का निर्देश करने वाले अंश "कुरान" में है—भगवान जिसे चाहता है मार्ग पर लगाता है, जिसे चाहता है भटकाता है। ईश्वर जिसे मार्ग पर चलने की प्रेरणा करता है, वह मार्ग वाला (होता है), जिसे भटकाता है वह भटकता रहता है।[५९] मृत्यु भी भगवान ही के अधीन है—कोई भी जीव परमेश्वर की आज्ञा से लिखित अवधि के विरुद्ध नहीं मरता है।[६०] जो उसकी इच्छा का अनुसरण करता है, प्रभु उसे शान्ति मार्ग बतलाता है। अपने आदेश से अन्धकार से प्रकाश की ओर भेजता है, उसे सीधे मार्ग पर चलाता है।[६१]

इस्लाम की धर्म साधना में नमाज, कर्मकाण्ड, मातृभाव, कुर्बानी, हज्ज, मूर्तिपूजाखण्डन, आचार विचार (अर्थात् मद्य मद्य मद्यपान, न्यायव्यवस्था, स्त्री अधिकार, दण्ड, सदाचार) आदि बातें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इस्लाम शान्ति धर्म है लेकिन कुरान की एक उक्ति को लेकर उसकी साम्प्रदायिक संकीर्णता के संदर्भ में बहुत कुछ कहा जाता है—जिसने इस्लाम से भिन्न धर्म को स्वीकार किया, कदापि वह स्वीकृत न होगा और वह अन्त्यदिन में घाटा उठाने वाला है।[६२] हिन्दू धर्म में जो स्थान सन्ध्या पूजा या भजन का है, इस्लाम में वही स्थान नमाज का। प्रत्येक मुसलमान का नमाज एक नित्य-कर्म है—नमाज और मध्यमसलात के लिये सावधान रहो। नम्रतापूर्वक परमेश्वर के लिए खड़े हो। यदि खतरे में हो तो पैदल या सवार ही (उसे पूरा) कर लो। पुन जब शान्त हो ... ...तो प्रभु को स्मरण करो।[६३] उसके लिए शुद्धि की भी आवश्यकता है—हे विश्वासी मुसलमानो! जब तक जो कुछ तुम कहते हो उसे नहीं समझते, या तुम नशे में हो, अथवा यात्रा में न होने पर भी अशुद्ध हो, तब तक नमाज में न जाओ, जब तक कि तुम स्नान न कर लो। यदि रोगी या यात्री की अवस्था में मलोत्सर्ग या स्त्रीसंसर्ग किया और जल न मिला, तो शुद्ध मिट्टी से उसे हाथ मुँह पर फेरो।[६४] कर्मकाण्ड के अन्तर्गत रोज़ा

५८. कुरान ७ ६:७–८
५९. वही, ७ २२ ७
६०. वही, ३ १५ २
६१. वही, ५:३:५
६२. वही, ३ : ८ : ५
६३. वही, २ ३२ . ३–४
६४. वही, ४ : ७ : १

(उपवास) के सन्दर्भ में कुरान ने सूचना दी है—हे आस्तिक मुसलमानों। पूर्वजों के समान तुम पर भी कुछ दिनों के लिए रोजा रखने का विधान लिखा गया है, जिससे कि तुम संयमी हो। फिर जो कोई तुम में रोगी हो या यात्रा में हो तो वह बदले में एक गरीब को भोजन दे। जो खुशी से शुभ कर्म करे तो वह मंगल है और यदि उपवास करो तो तुम्हारे लिये शुभ है, यदि तुम जानते हो। रमजान का मास पवित्र है, जिसमे स्पष्ट, मार्ग प्रदर्शक, मानव शिक्षक, सत्यासत्य विभाजक कुरान उतारा गया। इसलिये तुम मे से जो कोई रमजान महीने को प्राप्त हो, उपवास करे।[६५] भ्रातृभाव जिसका बड़े बल मे इस्लाम प्रचार करता है—अवश्य सारे मुसलमान भाई हैं। अत: मिला दो (परस्पर लड़ते झगड़ते) भाइयो को। ईश्वर से डरो, कदाचित् तुम दया के पात्र बनाये जाओ।[६६] हज्ज के लिए कहा है—मनुष्यों को हज्ज के लिये बुला, कि तेरे पास दूर से पैदल और ऊँटो पर चले आवें। भगवान के लिये हज्ज और उम्रा पूरा करो। और यदि किसी प्रकार रोके गये तो यथाशक्ति बलिदान (कुर्बानी) करो। जब तक बलि ठिकाने पर न पहुँच जाय शिर की हजामत न बनवाओ। और जो तुम मे से रोगी हो या जिसके शिर मे पीड़ा हो, तो उसके बदले रोजा करे या दान दे या बलिदान करे। अब तुम सकुशल हो तो जो कोई हज्ज के साथ उम्रा चाहे यथाशक्ति बलि भेजे, और जो न पाये तो तीन दिन का उपवास हज्ज के समय मे और सात उपवास जब लौटकर जाये, यह पूरे दश (उपवास) उन लोगों के लिये है जिन के घर काबा के पास नही हैं।[६७] बलि-कुर्बानीका सिद्धान्त यहूदी धर्म जैसा ही इस्लाम में भी है। अन्तर सिर्फ यही है कि यहूदी धर्म पशुमांस का आग मे होम करता है और इस्लाम पशुहत्या करने मात्र मे विधि की समाप्ति मे मानता है। फिर भी कुरान मे बलि के विरुद्ध मे भी कहा गया है—परमेश्वर को उनका मांस और रक्त नही पहुँचता, बल्कि तुम्हारा संयम पहुँचता है।[६८]

इस्लाम ने मूर्ति पूजा का विरोध किया है—जब कोई शुभ फल प्राप्त हुआ तो उन्होंने (मूर्ति-पूजको ने) मूर्ति मे साझी बनाया। किन्तु परमेश्वर उनसे जिनको कि उन्होने साझी बनाया, बड़ा है। क्या उन मूर्तियो को (परमेश्वर का) साझी बनाते हैं जो स्वयं उत्पन्न है और कुछ उत्पन्न नही कर सकती; न अपनी सहायता कर सकती हैं, न अपने भक्तो की। क्या उन (मूर्तियो) के पैर हैं जिन से चलती हैं,

---

६५. कुरान २ : २३ : १–३
६६. वही, ४६ : १ : १०
६७ वही, २:२४:८
६८. वही, २२.५:४

या उनके हाथ हैं जिनसे पकड़ती या आँख हैं जिनसे देखती हैं अथवा कान हैं जिनसे सुनती हैं।[६९] मूर्तिपूजा का खण्डन कई स्थानों पर मिलता है।[७०] भक्ष्याभक्ष्य के विषय में इस्लाम कहता है, मुर्दार, खून, शूकर-मांस जिसके ऊपर भगवान को छोड़कर दूसरे किसी देवता, प्रतिमा आदि का नाम पढ़ा गया हो वह, तथा दम घुटने से, चोट से, सींग मारने से मरे, और जिसे अन्य किसी मांसाहारी प्राणी ने खाया हो—वे सब तुम्हारे लिए अभक्ष्य हैं। किसी स्थान के नाम पर बलि चढ़ाना या पासा डालना पाप है।[७१] चोरी-हत्या के लिए कुरान भी मना करता है।[७२] परोक्ष ढंग से मद्यपान और जुआ को भी महापाप कहा है।[७३] परस्त्रीगमन और सूद लेने का निषेध किया है।[७४] सम्पत्ति के हिस्सों में स्त्री को अधिकारी माना है।[७५] अन्यायपूर्ण बर्ताव चोरी और व्यभिचार के अत्यन्त कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है।[७६] सदाचार के अन्तर्गत कृतघ्नता को एक अपराध माना गया है[७७] लेकिन अपव्ययता से खुदा खुश नहीं रहता ऐसा कहा गया है।[७८] आचार सम्बन्धी उपदेश देते हुए कहा गया है—शुभ कर्म कर और क्षमा मान ले, अज्ञानियों से उपेक्षा कर। ईश्वर कलह नहीं पसन्द करता। धोखा हत्या से बढ़कर है।[७९] विश्वासात्मक और क्रियात्मक मन्तव्यों की दृष्टि से कुरान में कहा गया है—यह पुण्य नहीं कि तुम अपना मुँह को पूर्व या पश्चिम की ओर कर लो, पुण्य तो यह है—परमेश्वर, अन्तिम दिन, देवदूतों किताब और ऋषियों पर श्रद्धा रखना, धन को प्रेमियों, सम्बन्धियों, अनाथों, दरिद्रों, पथिकों, याचकों और गर्दन बचाने के लिए देना, उपवास रखना, दान देना, जब प्रतिज्ञा कर चुके तो अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना, विपत्तियों, हानियों और युद्धों में सहिष्णु होना; जो ऐसा करता है वही सच्चे और संयमी है।[८०]

---

६९. कुरान ७.२४.२-२६
७०. वही, १०.४, ४-६, १२.५:८-५, १६.३.११; १६:७.१; १६:३.२, २१.६:२-१७, २६.५.१, ८६.१.८
७१. वही, ५.१.३
७२. वही, ४.५.४
७३. वही, ४.७.१, २:२७.३
७४. वही, ७०.१.२६, ३०, ३:१४.१
७५. वही, ४.२.१, ८.२.२; ४.२८.५
७६. वही, ८:१.१०; ५.६.४, ८.७.२, २४.१:२
७७. वही, ८:६:४ ७८. वही, ७:३.६
७९. वही, ७:२४:११; २.२५:६. २:२७.१
८०. वही, २:२२.१

हिन्दू और ईसाई धर्म की भाँति इस्लाम में भी सम्प्रदाय–उप–सम्प्रदाय हैं। उनमें से सूफीमत अपनी दार्शनिक शैली के कारण अलग-सा दिखाई पड़ता है। इस्लाम धर्म की रहस्यवादी साधना को ही सूफीमत कहा जाता है। परमसत्य का ज्ञान प्राप्त करना ही तसव्वुफ है और इसीलिए मुस्लिम रहस्यवादी अपने को "अन्न अल-हक्क" कहते नहीं थकते।[८१] सूफियों के सिद्धान्त व्यक्तिगत आध्यात्मिक और रहस्यवादी अनुभूति पर ही विशेषतः आधारित हैं। वे बाह्याचार से भी अधिक आन्तरिक शुचिता पर जोर देते हैं। उनके मतानुसार धार्मिक सिद्धान्तों का "सत्य" के साथ सामंजस्य होना चाहिए और "सत्य" अर्थात् "परमसत्य" का ज्ञान। जो रहस्यवादी साधना से प्राप्त हो सकता है। ई० कैर्ड ने कहा है, मर्मी के लिए परमात्मा सब कुछ है और कुछ भी नहीं। "सब कुछ" इसलिए कि किसी भी वस्तु का अस्तित्व उसे छोड़कर सम्भव नहीं है और "कुछ भी नहीं" इसलिए कि वास्तविक जगत की प्रत्येक वस्तु से वह परे है।[८२] सूफी साधकों के परमात्मा सर्वातीत, निर्गुण और असीम होने पर भी सर्वगत और सगुण भी है। उसको समझने के लिए आन्तरिक प्रेम, भक्ति चाहिए। परमात्मा प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप और अनन्त-सौन्दर्ययुक्त है। पापों से मुक्ति पाने के लिए प्रायश्चित को वे महत्त्वपूर्ण मानते हैं ही, बल्कि आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होने की प्रथम सीढ़ी भी मानते हैं।[८३] कट्टर इस्लाम की कर्मकाण्ड की विधि के मुताबिक रहने वाले मार्ग को "शरीअत" कहते हैं और सूफी–साधक उसको लाँघ गये हैं। उससे ऊपर वाली भूमिका को "तरिकत" कहते हैं। इस भूमिका के साधक रोजा आदि कर्मकाण्ड को महत्त्व नहीं देते। हृदय में अपने "मालिक" के प्रति प्रेम-निष्ठा रखते हैं। सूफीमत के प्रेम की तीसरी भूमिका को "हकीकत" कहा जाता है, अर्थात् जिस भूमिका में आत्मतत्त्व का पूरा अनुभव हुआ हो। मिलन के विरह की वेदना जीव के लिए असह्य हो जाती है और फलतः भगवान के प्रति निष्ठा बढ़ती है। इस चौथी भूमिका को "मारिफत" कहते हैं। जुहीरुद्दीन अहमद ने[८४] भारतीय सूफीमत के सदर्भ में कहा है कि वे सूफी मार्ग की चार मंजिलें और उन मंजिलों की चार अवस्थाएँ मानते हैं। प्रथम अवस्था नासूत

---

८१. R.A. Nicholson, The Mystics of Islam (Preface), p 1.

८२. E. Caird, The Evolution of Thology in the Greek Philosophers, Vol. II, p. 286.

८३. Al-Hujwiri, The Kashf Al-Mahjub (Trans. R. A. Nicholson) p. 294.

८४. Zuhirruddin Ahmed, A Dictionary of Islam, p. 609.

है अर्थात् मनुष्य की प्रकृत अवस्था। इसमें शरीयत के कानून-नीति-नियमों का पालन करना पड़ता है। प्रारम्भिक ज्ञान की आवश्यकता की दृष्टि से इसका महत्त्व है। दूसरी अवस्था को "मलकूत" कहते हैं जिसमें पवित्रता का सहारा साधक लेता है। इस अवस्था में सांसारिक प्रलोभनों का त्याग कर देवदूत-सा वह पवित्र होता है। तीसरी अवस्था "जबरूत" में साधक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करके परमात्मा-मिलन के मार्ग की बाधाओं को दूर हटाता है। यही ईश्वरीयज्ञान (मारिफ़त) की अन्तिम स्थिति है। इस स्थिति को "हकीक" भी कहते हैं। साधारणतया सूफ़ी साधना की सात मंज़िलें मानी जाती हैं—(१) उबूदियत इसमें साधक अपने हृदय को पवित्र करने के प्रयत्न में लगता है जिससे कि प्रभु की ओर बढ़ सके। शरीयत के मुताबिक परमात्मा की सेवा में वह अपने आपको लगा सके। (२) इश्क, परमात्मा का प्रेम उसके हृदय में उत्पन्न होता है और साधक इस अवस्था में फ़क्र (गरीबी) को ग्रहण करता है। (३) जुहद अर्थात् इस अवस्था में सांसारिक इच्छा-आवरण का नाश होता है। (४) मारिफ़त अवस्था में वह परमात्मा के गुण, स्वभाव, कर्म का ध्यान करता है। (५) वज्द (भावावेश) अवस्था में परमात्मा के "एकत्व" के ध्यान में लीन हो जाता है। (६) हकीकत अवस्था में साधक को परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है और इस पर सम्पूर्ण रूप से तवक्कुल (निर्भर) करता है। (७) वस्ल—इस अन्तिम अवस्था में परमात्मा के साक्षात् का अनुभव करता है।[८५] कट्टर इस्लाम के परमात्मा अद्वितीय और सृष्टि के सभी पदार्थों से भिन्न है, लेकिन सूफ़ीमत के "एकेश्वरवाद" के अनुसार परमात्मा इस दृश्यमान जगत में परिव्याप्त एकमात्र सत्य है। उस परमसत्ता को अपने आपको प्रकट करने के लिए इस असत् क्षणभंगुर सृष्टि उत्पन्न करनी पड़ी। यह सृष्टि परमात्मा की प्रतिच्छवि है और मनुष्य इस सृष्टि का अंश। अतः मनुष्य में परमात्मा के सत् और और सृष्टि के असत् तत्त्व निहित हैं। इब्नुल अरबी का कहना है कि शाश्वत और दृश्यमान वस्तुएँ दोनों 'एक' के ही पूरक हैं और उनमें परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जीव सृष्टिकर्ता की बाह्य अभिव्यक्ति है। मनुष्य, परमात्मा का चेतनांश है, जो इस सृष्टि में प्रकट दीख पड़ता है।[८६] जीवधारियों में मनुष्य सर्वोच्च स्थान को प्राप्त किये हुए हैं, लेकिन उसका चरमोत्कर्ष "पूर्ण-मानव" में है। पूर्णमानव (इन्सानुल-कामिल) सिद्धान्त को इब्नुल अरबी ने ही नामकरण किया।[८७] सूफ़ी आत्मा के नफ़्स (कुप्रवृत्तियों का स्थान) और रूह

---

८५ रामपूजन तिवारी सूफ़ीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३२६

८६ R. A. Nicholson, The Mystics of Islam, p. 155,

८७ R. A. Nicholson, Studies in Islamic Mysticism, p. 77.

(मद्वृत्तियो का स्थान) वैसे दो भेद बताते है। भावावेग से परिचालित नफस और विवेकयुक्त रूह का का संघर्ष चलता रहता है। उच्चतर आत्मा जो प्रारम्भ मे शरीर मे स्थित है उसके करव (दिल), रूह (ज्ञान) और सिर्र (अन्त करण) ये तीन विभाग हैं। सिर्र विभाग मे ही साधक परमात्मा के दर्शन कर पाता है। इस ससार मे आने से पूर्व आत्मा-परमात्मा अभिन्न थे। परन्तु यहाँ रहते समय वह परमात्मा मे निर्वासित रहता है और मनुष्य शरीर उस आत्मा का निर्वासनस्थान है।[८८] नफस पर काबू पाने के लिए सूफीमत ने मौन, उपवास, एकान्तसेवन आदि को आवश्यक समझा है। सूफियो का चरमलक्ष्य है परमात्मा मे "एकत्व" को प्राप्त करना और यह सभव है जब साधक अपने आपको जान लेता है। परमात्मा के लिए प्रेम का होना आवश्यक है। जब तक उनकी मेहरबानी नही होता साधक के हृदय में प्रेम नही होता। उन्ही की कृपा से प्रेम सुलभ हो जाता है। साधक चाहे जितनी भी चेष्ठा क्यो न करे, यह अमूल्य वस्तु तबतक प्राप्त नही होती जबतक भगवान की दया नही होती।[८९] सूफियो ने ज्ञान के इल्म (सामारिक) औ मारिफ (अध्यात्मिक) नामक दो प्रकार माने हैं। परमात्मा का ज्ञान "इल्मेमारिफत" है जिसके द्वारा परमात्मा को उसके पैगम्बर और सन्त जान पाते हैं।[९०] वास्तव मे सूफीमत इस्लाम का अद्वैतवाद है आत्मा और परमात्मा की एकता और उस ऐक्य की सिद्धि के लिए सूफियों के अनुसार परमात्मा के प्रति प्रेम का होना आवश्यक है।

स्वामी प्राणनाथ ने 'सनध", "खुलासा", "मारफत" और कयामतनामा (छोटा और बड़ा) मे इस्लामधर्म का विवेचन किया है। इस विवेचन मे उन्होने प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है। पुराणादि मे जिसे "मृत्युलोक" कहा गया है वही कुरान मे "नासूत" है, अक्षरधाम के लिए जबरूत, विष्णु के लिए अजाजील, रुद्र के लिए अजराइल, ईश्वरसृष्टि के लिए खास खलक, परब्रह्म के लिए नूरजमाल, अद्वैत के लिए तौहीद, अक्षरातीत उत्तम पुरुष के लिए इल्ललाहु, विज्ञान के लिए मारफत, निर्गुण निराकार के लिए बेचून बेचगुन आदि का प्रयोग कुरान मे किया गया है। वस्तुतः सर्व धर्मो का सार है कि ब्रह्म एक है, बुद्धिमान लोग उसे कई नामों से पुकारते हैं—"एक सद्विप्राः बहुधा वन्दनी।" कुरान और पुराण के अनुसार वह परब्रह्म स्वलीलाद्वैत है। उन्होने कल्कि अवतार, मेंहदी या मसीहा के आविर्भूत होने की

---

८८. Zuhirruddin Ahmed, A Dictionary of Islam, p 609.

८९ Al-Hujwiri, The Kashf Al-Mahjub (Trans. R. A. Nicholson), p. 17?.

९० Ibid, p. 16

मान्यता को उपर्युक्त ग्रंथों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने "कयामत-नामा" में कुरान, इंजील और तौरेत के मतानुसार "अन्तिम दिन" का चित्रण किया है और बताया है कि किस प्रकार, ईसा, मोहम्मद और इमाम का प्रादुर्भाव हुआ। उक्त ग्रन्थ में हिन्दू, ईसाई और मुस्लिम धर्मग्रन्थों में की गई भविष्यवाणी का भी वर्णन किया गया है। हिन्दू महापुरुष ही मानवकल्याण कर सकेगा यह बात भी कह दी है। इसलिए, ग्राउज महोदय ने उक्त ग्रन्थ के संदर्भ में कहा है कि, कयामतनामा के अन्तर्गत इस बात पर विश्वास पैदा करने की कोशिश की गई है कि जिससे वैसे महापुरुषों में सम्पूर्ण श्रद्धा और भक्तिभाव जागृत हो।[६१]

स्वामी प्राणनाथ के अनुसार, हजरत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम की कुरानशरीफ के मूलतत्त्व हिन्दू के पौराणिक ग्रन्थों से गूढ़ार्थ में मेल खाते हैं। प्रणामी सम्प्रदाय के "तारतम्य-मन्त्र" (दीक्षामन्त्र) और कलिमह का अर्थ समान है। कलिमह शरीफ के मूल शब्दों के गूढ़ अर्थ में और श्रीमद्भागवद्गीता के अध्याय १५ के "त्रिगुणात्मक" गुण में भी गुप्त ज्ञान में ऐक्य का आभास मिलता है। "ला इलाह इल्लल्लाहु, मुहम्मदरसूलुल्लाह" कलिमह शरीफ के ला + इलाह + इल्लल्लाहु के अर्थ की व्याख्या इस प्रकार की जाय कि "ला" क्षर सर्वाणि भूतानि, "इलाह" कूटस्थोऽक्षर और "इल्लल्लाहु" उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत है।[६२] गीता में कहा है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वर. ॥

इस प्रकार, क्षर "ला" और अक्षर "इलाह" दो प्रकार के पुरुष हैं। जितना जड़ चेतनात्मक मिथ्या विराट पुरुष प्रलय में लीन होने वाला क्षर (ला) है और अक्षर ब्रह्म (इलाह) कूटस्थ नित्य है। इन दोनों में भिन्न अक्षरातीत उत्तम पुरुष (इल्लल्लाहु) है। इस प्रकार कलिमए इस्लाम में मुराद अल्लाह तआला इल्लल्लाहु बरहक तौहीद (अद्वैत) स्पष्ट होता है। वह परब्रह्म अल्लाह तआला बिस्मिल्लाहिर्रहमान निर्रहीमके सबी बेनमून अर्थात्, दयामय, दयालु, कृपाशील और स्वलीलाद्वैत हैं। ऐसे पूर्णब्रह्म परमात्मा—अल्लाह तआला के बयान व महिमा का वर्णन वेद, शास्त्र और पुराणों में स्थान-स्थान पर आया है। ऋग्वेद में "इलाह" नाम पर ब्रह्म को स्पष्ट लिखा है और स्वतन्त्र सूक्त ही इलाह के नाम पर है।

---

६१. F. S. Grows, Mathura, A District Memoir (1883)
६२ श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय, १५, श्लोक, १६-१७.

"कुरान" में "एह् देनस्मेरातल मुस्तकीम" का अर्थ ऋग्वेद के "अग्ने नय सुपथा" के अर्थ से मिलता है। वेद का "एकमेवद्वितीयं ब्रह्म" और कुरान शरीफ का "वहद हू लाशरीकल्लहू" उसी तौहीद–अद्वैत अर्थ को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार कुरान का "ला इलाह इल्लल्लाहु" और जेन्द अवस्ता का "नेस्त ऐजिद यजदान" का अर्थ भी एक है। गीता मे परमात्मा को "ज्योतिषामपिततज्जयोतिः" और "प्रभास्मिशशिसूर्ययो" लिखा है और "कुरान" में उसी प्रकार अल्लाहतआला को "नूरुल अल्लानूर" और "नूरस्समा वाते वल अर्ज" कहा है। इस प्रकार "इन्नाइन्जुलना" और "इन्नायेतना" आदि कुरान की सूरतो के द्वारा कुरान–पुराण की एकता पर स्वामी प्राणनाथ ने जोर दिया। इस्लाम और वैदिक धर्म के आपसी विरोधाभासों में भी, निहित एकता को ही अधिक महत्त्व दिया—

नाम सारों जुदा धरे, लई सबो जुदी रसम।
सबमे उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म ॥[९३]

उसी प्रकार, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और ईसाई धर्मग्रन्थ "न्यू टेस्टामेंट" मे समान तत्त्वों को ढूंढा जा सकता है। जिस प्रकार गीता मे कहा गया है,

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय ।[९४]

ज्हान मे भी यह कहा है कि जो मुझे प्रेम करता है उसके प्रति पिता (भगवान) का भी प्रेम होता है और मैं भी उसको चाहूँगा

(He that loveth me shall be loved by my father and I will love him).[९५]

गीता मे कहा है, मैं सहायक, भगवान, गवाह, शरण और मित्र हूँ।[९६] उसी प्रकार ज्हान मे कहा है, मैं ही पथ–माध्यम, सत्य और जीवन हू।[९७] गीता में कहा है,[९८] जो मेरी भक्ति सच्ची श्रद्धा से करता है उसमें मैं निवास करता हूं और वह मुझ मे। ज्हान मे है, मैं उसमे हूँ और वह मुझ मे है, दोनो मे सम्पूर्ण रूप से एकत्व हो जाता है।[९९] गीता मे है, मेरी भक्ति करने वाला अविनाशी है।[१००] ज्हान मे कहा है,[१०१] मुझ मे श्रद्धा रखने वाले का नाश नही होता, उसको अमर जीवन प्राप्त होता

---

९३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० ११, चौ० ३८.
९४. गीता, ७:१७.
९५. New Testament, St. John, 14:21
९६. गीता, ९:१८
९७. New Testament, St. John, 14:6
९८. गीता, ९:२९
९९. New Testament, St. John, 17:23
१००. गीता, ९:३१
१०१. New Testament, St. John, 3:5

है। जिस प्रकार गीता में कहा है, मैं आदि, मध्य और अन्त हूँ—अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।[102] उसी प्रकार, ईसाई धर्म कहता है,

I am Alpha, omega, the beginning and the ending.

अर्थात् मैं मध्य, प्रारम्भ और अन्त हूँ।[103] गीता में भक्त आश्वस्त किया गया है कि मैं तेरी सब पापों से रक्षा करूँगा—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥[104]

उसी प्रकार मसीह में कहा गया है, वत्स, तुझे पापों से मुक्ति दी जायेगी—

Son, be of good cheer, thy sins be forgiven[105]

यहूदी धर्म ने ईश्वर को सर्वोपरि, अनन्त, शाश्वत, महान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और अविकारी माना है—

There is no God but him He is the first and the last, was changeth not He is from everlasting to everlasting He is the *most high, the Lord of lords, the God of heaven and earth He* is the creator and the sustainer He killeth and be maketh alive[106]

गीता में भी "ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन" के साथ कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥[107]

यहूदी और ईसाई धर्म में यही अन्तर है कि ईसाई मनुष्यावतार रूप ही ईश्वर को मानता है। इस्लाम में भगवान सम्बन्धी विचार की समानता यहूदी (हिब्रू) के साथ दिखाई पड़ती है। यहूदी और ईसाई धर्म आत्मा की शाश्वतता पर जोर देते हैं जबकि इस्लाम ने आत्मा के संदर्भ में अधिक चिन्तन नहीं किया।[108] यहूदी, ईसाई और इस्लाम में पुनर्जन्म की मान्यता सामान्यतया नहीं है। लेकिन सूफियों ने ऐसे उल्लेख किये हैं और वे इसके लिए आशावादी हैं। जड़ से चैतन्य स्वरूप में और उसमें देवत्व में उत्तरोत्तर क्रम चलता है। अन्तत सूफियों के अनुसार महाचैतन्य

१०२ गीता, १०.२०
१०३ New Testament, The Revelation, 1:8
१०४. गीता, १८.६६.
१०५. New Testament, St Mathew, 9.2.
१०६ Alban G. Widgery, The Comparative Study of Religions, p 123
१०७ गीता, १८.६१.
१०८ Alban G. Widgery, The Comparative Study of Religions, pp 179, 181.

में एकत्व हो जाना है। अमरता की मान्यता यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म में है। यहूदी में हिन्दूधर्म की भाँति वैकुण्ठ प्राप्ति की ही कामना होती है। इस्लाम मे भी "पुण्यशाली आत्मा ईश्वर के साथ रहती है" ऐसे निर्देश मिलते हैं।

अतः प्राणनाथ ने उक्त सभी धर्मग्रन्थों मे निहित एकता को बताते हुए यही कहा कि गुरु देवचन्द का जोश ही जबराइल है, आतम दुलहन ही श्रीठकुरानीजी अर्थात् रुह अल्लाह ईसाममीह है, नूर ही तारतम अर्थात् खुदाई इलमके अवतार मेंहदी साहब है, हुकम ही रसूल अर्थात् मुहम्मद साहब है तथा बुध मूलवलन ही असराफील है—[१०६]

श्री ठकुरानी जो रुह अल्ला, महमद श्रीकृष्णजीस्याम।
सखिया रूहें दरगाहकी, सुरत असर फिरस्ते नाम ।।
बुधजी को असराफील, विजयाभिवद इमाम।
उरभे सब बोली मिने वास्ते, वास्ते जुदे नाम ।।
बाकी तो वेदकतेब, दोउ देत है साख।
अंदर दोउके गफलत, लडत वास्ते भाष ।।

कुरान में भाषा के सम्बन्ध मे कहा गया है कि प्रत्येक जाति मे नबी उसकी भाषा में ही भेजा गया है, अतः प्रत्येक भाषा पुनीत है।[११०] अतः विशेष रूप से सूफियो ने जनभाषा का उपयोग किया। उसी प्रकार प्राणनाथ ने भी जनभाषा को "हिन्दुस्तान" (हिन्दी) नाम दिया है और जनसाधारण के लिए अपने विचार उसी मे अभिव्यक्त किये हैं।

अद्वैत वेदान्त के सदर्भ मे डॉ० राधाकृष्णन् के विधान उल्लेखनीय है—सूक्ष्म और गभीर विचारो से भरी हुई शकर की रचनाओं को बिना यह अनुभव किये पढना असभव है कि हम एक अत्यन्त सूक्ष्म अन्तदृष्टि और पूर्ण आध्यात्मिकता से युक्त मस्तिष्क के सम्पर्क में है ·· उनका दर्शन पूर्ण रूप मे उपस्थित है, जिसमे न किसी पूर्व की आवश्यकता है और न अपर की ·· चाहे हम सहमत हो अथवा असहमत, उनके मस्तिष्क का तीव्र प्रकाश हमे जहाँ हम थे, वहाँ कभी नही छोड़ता है।[१११]

शकर के मतानुसार ब्रह्म सर्वोच्च परमार्थ सत्य है।[११२] वह पूर्ण और एकमात्र सत्य है। ब्रह्म जगत की उत्पति, स्थिति तथा लय का कारण है। ब्रह्म स्वयं ज्ञान, ज्ञाता एवम् ज्ञेय है। ब्रह्म का सत् (सत्ता), चित् (ज्ञान) और आनन्दस्वरूप

---

१०६ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० १२, चौ० ५३-५४

११०. डॉ० सरला शुक्ल, जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य-प्राक्कथन।

१११. Dr. Radhakrishan, Indian Philosophy, Vol. II. pp. 446-447

११२. एकमेव हि परमार्थ सत्य ब्रह्म।

—तैत्तरीय उप० शांकर

(सच्चिदानन्द) लक्षण है।[११३] लेकिन माया के कारण वही सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है। वस्तुतः निर्गुणब्रह्म ही परम सत्य है। सगुण-अपरब्रह्म सोपाधि, सविशेष और सप्रपंच है जबकि निर्गुण निरुपाधि, निर्विशेष और परब्रह्म है। सच्चिदानन्द परब्रह्म के लक्षण हैं। सगुण ब्रह्म की कल्पना उपासना के निमित्त व्यावहारिक दृष्टि से ही की गई है।[११४] आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। ये दोनों मन, इंद्रिय, और बुद्धि से परे हैं। ब्रह्म और आत्मा के इस समन्वय को लेकर शंकर ने पारमार्थिक, ज्ञानात्मक एवं मूल्यात्मक अद्वैत की व्याख्या की है। ब्रह्म आत्मा के रूप में घट घट में व्याप्त है। विभु में जो है वही अणु में भी है। सीमित जगत में समान से समान में समान निकलने पर कुछ नहीं बचता। परन्तु असीम के क्षेत्र में पूर्ण में पूर्ण निकलने पर पूर्ण ही बचता है।[११५] वस्तुतः जगत की सृष्टि, प्रलय, जीवन और ईश्वर के भेद आदि का व्यावहारिक महत्त्व है। पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म ही परम सत्य है। वही आत्मा भी है और वही अज्ञान के कारण जीव, जगत और ईश्वर के स्वरूप में दिखाई पड़ता है। ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के लिए उन्होंने कार्यकारण के सम्बन्ध में भी विचार किया है। कार्यकारण से भिन्न नहीं है और सत् से असत् की उत्पत्ति कभी नहीं मानी जा सकती। समस्त जगत स्वयं ब्रह्म है।[११६] जगत ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नहीं। ब्रह्म अनिर्वचनीय और निर्वैयक्तिक है।

परमेश्वर की बीज शक्ति का नाम माया है। मायारहित होने से परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती और न वह जगत की सृष्टि करता है। शंकराचार्य ने माया का स्वरूप दिखाते समय लिखा है कि माया भगवान की अव्यक्त शक्ति है जिसके आदि का पता नहीं चलता, वह गुणत्रय से युक्त अविद्यारूपिणी है। उसका पता उसके कार्यों से चलता है। वही इस जगत को उत्पन्न करती है।[११७] माया की आवरण और विक्षेप दो शक्तियाँ हैं। सृष्टि की तरह माया भी अनादि है। माया के आवरण से वेष्ठित ब्रह्म को ही ईश्वर कहते हैं। परमेश्वर का सृष्टिव्यापार लीलामात्र है।[११८] ईश्वर नित्य, एक और सर्वव्यापी है। वह मोक्ष प्राप्ति में

---

११३. (अ) तैत्ति० उप० २।१।१ (ब) वृह उप० ३।९।२८
११४ प० वलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ४२८
११५. पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णं मुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेव वशिष्यते।
११६ ब्रह्मैव इदं विश्वं समस्तं इदं जगत। —मुण्डकशांकर भाष्य १:२-१२।
११७ विवेक चूडामणि, श्लोक ११०
११८. शांकर भाष्य, २/१/३२-३३/ (ब्रह्मसूत्र)

सहायक है। उनके मत से आत्मा और ब्रह्म अभिन्न है।[११९] आत्मा अव्यभिचारी और स्वयंसिद्ध है। आत्मा निरुपाधि एवम् अद्वय है जबकि जीव सोपाधि और अनेक हैं। आत्मा अशरीरी और नित्य मुक्त है तथा जीव शरीरी, सुखदुःख आदि से युक्त है। शंकराचार्य के अनुसार आत्मा में अविद्या की मोक्ष है। मुक्ति न तो प्राप्य है और न उत्पाद्य है। वेदान्त मत में मुक्ति की दशा नितान्त आनन्दमयी है। अज्ञान का आवरण हट जाने से ब्रह्म की अनुभूति होती है और आनन्दमयी दशा प्राप्त होती है। यही मोक्ष है।

रामानुज के विशिष्टाद्वैत ने चित, अचित और ईश्वर इन्हीं तीन को परम मूल तत्त्व माने हैं। इस दर्शन में ईश्वर प्रधान अंगी है और 'चित्' तथा 'अचित्' उसके दो अंग या विशेषण हैं। चित् तत्त्व ही जीवात्मा है और वह ज्ञाता, कर्ता एवम् भोक्ता है। वह देह इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि से भिन्न है। जीव ईश्वर की प्रेरणा से ही कर्म करता है। जीव और ईश्वर एक नहीं हो सकते। जिस तरह अंश का अस्तित्व अंशी पर या जीवित शरीर का अस्तित्व आत्मा पर निर्भर है, उसी प्रकार जीव भी ईश्वर पर निर्भर है। इसीलिए उनके अनुसार 'तत्त्वमसि' का अर्थ है अन्तर्यामी ईश्वर और विश्वप्रपंच का निर्माता ईश्वर दोनों की तात्त्विक एकता है। जीव और ईश्वर में अद्वैत अवश्य है, परन्तु विशिष्ट प्रकारों का अद्वैत है क्योंकि दोनों एक नहीं है।[१२०] रामानुज ईश्वर और जीव के सम्बन्ध में भेद, अभेद और भेदाभेद तीनों को मानते हैं। भेद का अर्थ है ईश्वर पूर्ण और अनन्त है तथा जीव अपूर्ण और अणु है।[१२१] अभेद का अर्थ है कि ईश्वर जीवों का आत्मा है, चित् और अचित् ये दोनों ब्रह्म में नित्य वर्तमान हैं और सर्वव्यापी ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी नित्य अविच्छेद्य रूप से सम्बद्ध है। अखण्ड सत्ता के रूप में ब्रह्म सभी जीवों का उपादान स्वरूप है। ब्रह्म और जीव में पूर्ण और अंश का तथा कार्य और कारण का सम्बन्ध है। इसलिए जीव और ब्रह्म में भेदाभेद का सम्बन्ध है। अतः ईश्वर के बिना शरण में गये जीव का निस्तार तथा कल्याण नहीं हो सकता, शरणागति ही जीव की आध्यात्मिक उन्नति का साधन है।

---

११९. केन उप० शांकर भाष्य-५

१२०. प्रकार द्वयविशिष्टैकवस्तुप्रतिपादनेन सामानधिकरण्य च सिद्धम् ॥
—श्री भाष्य १ १ १।

१२१ (अ) बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः सः चानन्त्याय कल्पते ॥
—श्वेताश्वतर उप० ५/९

(ब) मुण्डक उप०, ३/१/९

जीव बद्ध, मुक्त और नित्य, तीन प्रकार के माने हैं। बद्ध जीव उन्हें कहते हैं जिनका सांसारिक जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है। ये १४ भवनों में रहते हैं। ब्रह्मा से लेकर तुच्छ जीवों तक सभी हैं और ज्ञान, भक्ति व प्रपत्ति से मुक्ति चाहते हैं। मुक्त जीव सब लोकों में इच्छानुसार विचरण कर सकते हैं। नित्य जीव कभी संसार में नहीं आते। इनके अवतार स्वेच्छा से होते हैं।

उन्होंने सृष्टि के विषय में उपनिषदों का सिद्धान्त मान्य रखा है। ईश्वर अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत की सृष्टि करता है। ईश्वर की यह सृष्टि उतनी ही वास्तविक और सत्य है जितना स्वयं ईश्वर। उन्होंने "अचित्" तत्व के तीन भेद माने हैं। शुद्ध-सत्व मिश्र-सत्व और सत्व-शून्य। प्रलय दशा में जीव तथा जगत सूक्ष्म रूप धारण कर ब्रह्म में तद्रूपित हो जाते हैं।[१२२] उन्होंने इस तरह शंकराचार्य के ब्रह्म, जगत, जीव और मुक्ति के सिद्धान्तों का खण्डन किया।

माध्वमत के अनुसार परमात्मा के गुण अनन्त हैं और प्रत्येक गुण निरवधिक तथा निरतिशय है। परमात्मा ही उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बंध और मोक्ष के कर्ता है। जीव, जड़ और प्रकृति से वे विलक्षण हैं। आनन्द ज्ञान आदि कल्याण गुण भगवान के शरीर होने पर भी नित्य और सर्व स्वतंत्र है। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है। वह परमात्मा के अधीन रहती है, पर परमात्मा के समान नित्यमुक्ता है। गुण में लक्ष्मी परमात्मा से न्यून है, परन्तु देशकाल की दृष्टि से उनके समान व्यापक है। इस मत के अनुसार जीव तीन प्रकार के होते हैं—मुक्तियोग्य, नित्यसंसारी और तमोयोग्य। देव, ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्यरूप मुक्ति प्राप्त करने योग्य जीव है। नित्यसंसारी जीव कर्मानुसार सुखदुःख या ऊँच-नीच गति को प्राप्त कर स्वर्ग, नरक तथा भूलोक में विचरण करता है। दैत्य, राक्षस तथा पिशाचों के साथ अधम मनुष्य तमोयोग्य जीव है। मुक्तावस्था में जीव परमसाम्य को प्राप्त कर लेता है।[१२३] कर्मक्षय, उत्क्रान्ति, अर्चिरादि मार्ग और भोग ये मोक्ष के चार प्रकार माने गये हैं। उनमें से भोग के सालोक्य, सामीप्य और सायुज्य प्रकारान्तर्गत सायुज्य मुक्ति को, अर्थात् भगवान में प्रवेश कर उन्हीं के शरीर से आनन्द भोग करना, ही श्रेष्ठ माना है। माध्वमत में इस जगत के जन्मादि व्यापार में परमात्मा केवल निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है। पंचविधभेद का जिसमें ईश्वर का जीव से भेद, ईश्वर का जड़ से भेद, जीव का दूसरे जीव से भेद और एक जड़ पदार्थ का दूसरे जड़पदार्थ से भेद इन पांचों का

---

१२२ पं० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृ० २१०

१२३. "निरंजन परमं साम्यमुपैति"—मुण्डक उप० ३/१/३

परिज्ञान मुक्तिसाधक माना गया है। ज्ञान सुखादि का अवभान परमात्मा में ही होता है और यही तारतम्यज्ञान है।

निम्बार्क के द्वैताद्वैतदर्शन में रामानुजाचार्य के चित्, अचित और ईश्वर का स्वरूप मान्य गया है। जीव अर्थात् चित् ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय है।[१२४] जीव में संसारी एवम् मुक्त दशा में कर्तृत्व की सत्ता है। ईश्वर नियन्ता है और जीव नियम्य। ज्ञान और भोग की प्राप्ति के लिए जीव ईश्वर के अधीन है। जीव परिमाण में अणु है और प्रतिशरीर में भिन्न है, अतः वह अनन्त है। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, अंशी है और जीव उसका शक्तिरूप है अतः अंश है। माया के आवरण में जीव का धर्म-भूतज्ञान संकुचित हो जाता है। भगवान् के प्रसाद से जीव के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।[१२५] जीव दो प्रकार के माने हैं बद्ध और मुक्त। बद्ध जीव में भी मुक्ती का इच्छुक जीव मुमुक्षु और विषयानन्द का इच्छुक बुभुक्षु कहलाता है उसी तरह मुक्त जीव में प्राकृत दुःख रहित और नित्य भगवान् के स्वरूप का दर्शन करने वाला नित्यमुक्त और अविद्या से उत्पन्न दुःखो के अनुभवों से रहित जीव केवल मुक्त कहलाता है। अचित् तीन प्रकार होता है-प्राकृत, अप्राकृत और काल।[१२६] प्राकृत के अन्तर्गत महत्तत्व से लेकर महाभूत तक प्रकृति से उत्पन्न जगत का समावेश होता है। अप्राकृत में विष्णुपद या परमपद आदि संज्ञाओंवाला भगवान का लोक, जो प्रकृति के राज्य से बहिर्भूत जगत है। काल जगत का नियामक होने पर भी भगवान् के अधीन है। ईश्वर समस्त प्राकृत दोषो से रहित और अशेष ज्ञान, बल आदि कल्याणगुणों का निधान है।[१२७] जीव और ब्रह्म में द्वैताद्वैत सम्बन्ध स्वभाविक और प्रत्येक दशा में नियत है। ईश्वर जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है। कर्मानुसार फल का वितरण करता है। प्रपत्ति से जीवों को भगवदनुग्रह की प्राप्ति होती है और भगवत्साक्षात्कार से जीव समस्त क्लेशो से मुक्त हो जाता है। जीवन्मुक्ति की कल्पना अमान्य है।[१२८]

आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैत दर्शन के ब्रह्म को माया से अलिप्त और इसीलिए नितान्त शुद्ध माना है। मायासम्बन्धरहित ब्रह्म ही अद्वैत तत्त्व है। ब्रह्म के सगुण

---

१२४. दशश्लोकी १

१२५. अनादिमायापरियुक्तरूप त्वेन विदुर्वै भगवत्प्रसादात्—दशश्लोकी २।

१२६. दश श्लोकी, ३।

१२७. वही, ४

१२८. वही, ६

और निर्गुण द्विविध रूप माना है। ब्रह्म तीन प्रकार के हैं आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक अर्थात् परब्रह्म, अक्षरब्रह्म और जगत। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं और सच्चिदानन्दमय हैं। अक्षरब्रह्म से उत्तम होने के कारण वह पुरुषोत्तम है। कार्यकारण में भेद न होने से कार्यरूप जगत कारणरूप ब्रह्म ही है। जगत का आविर्भाव कार्य केवल लीलामात्र है।[129] जगत का संहार भी उन्हीं के अधीन है। अपनी अचिन्त्य माया से वस्तुओं की सृष्टि करता है और अन्त में अपने में तिरोहित करता है। यह जगत मायिक और असार नहीं है। जीव तीन प्रकार के माने गये हैं–शुद्ध, मुक्त और संसारी। अविद्यापूर्व जीव शुद्ध कहलाता है। मुक्त जीव जीवन्मुक्त और केवलमुक्त इन दो प्रकार के होते हैं। मुक्त दशा में जीव आनन्द अंश को प्रकट कर स्वतः सच्चिदानन्द बन कर अभेद प्राप्त करता है। अविद्यायुक्त जीव संसारी कहा जाता है। जीव नित्य है। शुद्धाद्वैत में जगत और संसार में सूक्ष्म भेद माना है। परमात्मा के सदंश से बना हुआ पदार्थ जगत और अविद्यायुक्त जीव द्वारा कल्पित पदार्थ संसार है। जगत की उत्पत्ति और विनाश नहीं, लेकिन आविर्भाव और तिरोभाव मानते हैं। भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए पुष्टिमार्ग को सर्वोत्तम कहा गया है। भक्तिमार्ग ही पुष्टि मार्ग है।

(ख) प्राणनाथ और स्वलीलाद्वैत

ब्रह्म—प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर श्री मद्भागवत तथा भगवद्गीता का विशेष प्रभाव पड़ा है। ब्रह्म के क्षर, अक्षर और अक्षरातीत तीन रूप माने गए हैं। ब्रह्म के इन तीनों रूपों की कल्पना गीता में प्रस्तुत है[130]

"द्वाविमौपुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षरएवच ।
क्षर सर्वाणि भूतानिकूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत ।
योलोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्ययईश्वर ॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम ।
अतोऽस्मिलोके वेदेचप्रथित पुरुषोत्तम ॥

क्षर को नश्वर, अक्षर को नित्य अविनाशी और अक्षरातीत को परात्पर नित्य अखण्ड उत्तमपुरुष मानते हैं। अक्षर अक्षरातीत में लीलाभेद से स्वरूप भेद है अन्यथा अंगांगी भाव से दोनों एक ही हैं। प्रातीतिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक भेद से क्षर, अक्षर एव अक्षरातीत ये तीन प्रकार के पुरुष हैं एव इनको जीव, ईश्वरी

---

१२९. सुबोधिनी, तृतीय स्कंध।
१३० श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १५ १६–१७–१८

और ब्रह्म नाम की त्रिधा सृष्टि है।[131] श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण और ब्रह्म में नितान्त अभेद है। कृष्ण का ब्रह्म रूप में गीता,[132] उपनिषद,[133] ब्रह्मवैवर्त[134] भागवत,[135] पुराणों में ग्रहण किया गया है। अक्षरातीत परब्रह्म ही आलबन-आराधना करना, यही सर्व श्रेष्ठता-उत्तमता है। इस ब्रह्म को पूर्णतया पहचान लेने से परमधाम की प्राप्ति होती है।[136] क्षर-अक्षर से पर जो अक्षरातीत ब्रह्मस्वरूप है वही प्रणामी सम्प्रदाय में उपास्य है। अतिउज्ज्वल एवं अति उत्तम निजधाम में रहने वाले परम प्रकाशक, शुभ्र और शुद्ध सच्चिदानन्द अक्षरातीत ब्रह्म को ब्रह्महंस-ब्रह्ममूर्तियाँ पहचानते हैं। सुवर्ण के समान प्रकाश वाले, अपनी इच्छानुसार लीला करने वाले और प्रत्येक प्राणियों के कारणभूत अक्षरातीत परमात्मा को जो विद्वान् जब जान लेता है, तब वह लौकिक सुखदुःखों को त्यागकर परमशान्ति पाता हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।[137] इस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को "स्वलीलाद्वैत" मानने का हेतु यह है कि श्रुति-स्मृति में ब्रह्म के दिव्य अलौकिक नित्य-विग्रह तथा शक्तिसमूह एवं धाम, वन, सरोवर आदि सामग्री का वर्णन किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है, अतः ब्रह्म को अनंत शक्ति धाम-लीलादि सामग्री से पूर्ण ही अद्वैत मानना चाहिए। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है[138]—

यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितम् ।
तं चेद् ब्रूयुरस्मिश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वं समाहितम् ॥
स एकधा भवति त्रिधा भवति पंचधा भवति ।
सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादश. स्मृतः ॥

अर्थात् इस उपासक के इस लोक में जो भोग्य वस्तु है और जो मनोरथ मात्र गोचर यहाँ पर नहीं हैं सपूर्ण वह उस ब्रह्मधाम में निरन्तर विद्यमान है। ब्रह्म और

---

१३१. श्री भट्टाचार्यकृत निगमार्थ प्रदीप : ५०
"तदेव क्षरमक्षरमक्षरातीतं चेति त्रिविध पदार्थो भवति। एतत्त्रये। तत्र क्षर प्रतीतिकत्वाक्रान्तम्। अक्षरन्तु व्यावहारिकसत्वाक्रान्तम्। अक्षरातीत नु पारमार्थिकसत्वाक्रान्तम्। तत्र च त्रिविधा सृष्टि"।
१३२. श्रीमद्भगवतगीता, अध्याय १०:१२। १३३. कल्याण उप० अंक, श्लोक १२
१३४. ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, अ० १३३ श्लोक ७२
१३५. श्रीमद्भागवत् १·२:११
१३६. श्री भट्टाचार्यकृत निगमार्थप्रदीप, पृ० ४६
१३७. वही, पृ० ६०–६१
१३८. छान्दोग्य उप० ८–३–३ एवम् ७–२६

मुक्त पुरुष दोनो ही ऐश्वर्य, आनन्द और संकल्प सिद्धि मे समान सामर्थ्य रखते हैं। एक से दो हो जाते हैं, तीन, पांच, सात, दस, सौ दो सौ, सहस्रश रूप मे अपनी इच्छानुसार ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं।

अक्षरातीत परब्रह्म को प्रणामी सम्प्रदाय "धीराज" नाम से पुकारता है। "राजते स्वय प्रकाशते य. स राज" के आधार पर जो स्वय प्रकाशमान है, जिसके प्रकाश से क्षर, अक्षर की तमाम समृद्धि सनाथ है और प्रकाशित होती है। उसी पूर्णब्रह्म अक्षरातीत के दो भेद है। प्रथम भेद है स्वलीला अन्तर्गत किशोर स्वरूप का और दूसरे भेद मे अपने अंग की ज्योति से सर्वत्र परिपूर्ण अद्वैत है। उसी तरह महारानी श्यामा (राधा) तथा बारहजार ब्रह्मागनाओं व अन्य पदार्थ एकरसरूप है[139] —

मनमुख रोशन पिवत ।। पुरण पाचो इन्द्रि स्वरूप ।।
एक एकमे पाच पूरण ।। एक एक मे वल पाचका ।।
हर एक मे पाच गुण ।। एक एक जाहिर सबमे ।।
एक एक मे चार बातुन ।। इनबिध न्हे भुतनके ।।
असल अरस मे तन ।। अरस तन रूहे आतमा ।।
तरफ सबो बराबर ।। पुरण कहावे याही वास्ते ।।
सब विधो ए कादर ।।

पूर्णब्रह्म परमात्मा पाँच लक्षणों से युक्त हैं। ये पाच लक्षण हैं सत्, चिद्, आनन्द, अनन्त और अद्वैत।[140] सत् मे हरेक पदार्थ मे सत्तात्मक स्वरूप सर्वत्र व्यापक है; चिद् मे चैतन्य धर्मावच्छिन्न, नित्य, ज्ञानपूर्ण है; आनन्द मे धर्मावच्छिन्न, पूर्णसंपूर्ण, सदासर्वदा मुसदाना, नित्यलीलाविशिष्ठ और सर्वत्र सत्ता मात्र मे आनन्द पहुँचानेवाले हैं; अनन्त मे धाम, गिरि, नदी, वृक्षादि तथा जो जो पदार्थ हैं वे सब सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वैत अनन्त लक्षणगुणयुक्त विद्यमान है तथा अद्वैत से सदा सर्वदा एक रस, अखण्ड और सर्व पदार्थ एक ब्रह्म स्वरूप होने से अद्वैत स्वरूप है। पूर्णब्रह्म परमात्मा अक्षरातीत कभी पैदा हुए नहीं। वे सर्वदा अविनाशी, अखण्ड, एक ब्रह्मानन्द स्वरूप है। उनसे पर कुछ नहीं है। क्षराक्षर उनके प्रकाश स्वरूप स्थित है। अत पूर्ण परिचय मे इस अक्षरातीत परब्रह्म कृष्ण की उपासना के संदर्भ मे प्राणनाथ ने कहा है—

---

१३९. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप।
१४०. रणछोडदास वीरजी, पाताल मे परमधाम (गुजराती), पृ० १७६

"अटकले एम केम पामीए, ए तो नहि पंच-प्रपंच मारा संबंधी।
एने पगले न पहुँचाये, जहा चौकस न किजे वित मारा संबंधी ॥
जहां अटकल तहा ओतडी, अने भ्रान्त तो थई आडी पाल।
पार जवाये पूरण दृष्टे, इहा रज न समाये पपाल ॥

०० ०० ००

क्षरथी तीत अक्षर थया, अने अक्षरातीत कहेवाये।
आपनने जावु एणे घेर, इहा अटकले केम पहुँचाये ॥[१४१]

वैष्णवमतों के अनुसार ही प्रणामी सम्प्रदाय ने भी परब्रह्म अक्षरातीत के परमधाम का वर्णन किया है। उस परमधाम को दिव्य ब्रह्मपुर कहा गया है और यह अद्वैत, अखण्ड एकरस व आनन्दघन सर्व प्रकार की सच्चिदानन्द सामग्री से युक्त है। अक्षरातीत का यह परमधाम अक्षर ब्रह्म के धाम के सामने ही—एक ही भूमिका पर स्थित है। दोनों के बीच जमुना की धारा बहती है। अक्षरातीत का यह परमधाम रंगभुवन है। अक्षरातीत का स्वरूप सत् अर्थात् वस्त्राभूषण, उसी के स्थूल रूप में पुन. सत् चित् और आनन्द में सत् से अक्षरब्रह्म का स्वरूप और आनन्द मे श्यामाजी का स्वरूप है और चित् भाव से दोनों स्वरूपों में अन्तर्यामी रूप से व्यापक है। परमधाम के रगभुवन आदि पचीसपक्ष ब्रह्मानन्द किशोरीलाल को नित्यविहार जगह और उनके सौंदर्य का वर्णन शब्दातीत है—

न कहेवाय मायामा वाणी, पण माय मारे कहेवाणी।
माय ना रदे रमाडवा तो मे शब्दमां आणी ॥[१४२]
बे सुमार लाःवे सुमारमें वास्ते आवने दिल रहून।[१४३]

सच्चिदानन्दमय उस परमधाम का विपरीत रूप से—असत्, जड और दु.खमय होकर इस ससार मे प्रतिबिम्बित है।[१४४] इसी रंगमहल की दश भूमिकाओं की कल्पना की गई है। इन दश भूमिकाओं को मूल मिलावा (अथवा आधारभूमिका), भूलवनी (भूमिका), मवादभूमिका (या भोग मुक्ति भूमिका), आनन्द (प्रेमरस या शयन) भूमिका, शिविका, दोनिका, हिंडोला, दूरदर्शिनी भूमिका और सर्वदर्शिका भूमिका क्रमश. नाम माने गये हैं। मूल-मिलावे के मध्य में रत्नजड़ित सुवर्ण सिंहा-

---

१४१. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, कि०, प्र० ६८, चौ० १-२, प्र० १७, चौ० ५
१४२. वही, ,
१४३. वही, पृ०
१४४. श्री भट्टाचार्यकृत निगमार्थप्रदीप, पृ० ५६

मन पर "श्रीराजश्यामा" (कृष्णराधा–युगलस्वरूप) विराजमान हैं और उनकी चारों ओर तीन पंक्तियों में १२ हजार ब्रह्मात्माएँ बैठी हैं और उनमें परस्पर प्रेमालाप होता है। अतः प्राणनाथ ने कहा है—

'अपना धनी श्रीश्यामाश्याम, अपना वासा है निजधाम।''[१४५]

दूसरी भूमिका में कृष्णराधा और सखियों के बीच मूल मुलाकातों की लीला होती है। तीसरी भूमिका में परस्पर प्रेम की चर्चा होती है। चौथी भूमिका में नित्य प्रथम प्रहर रात्रि भर वृन्दावन आदि लीलाएँ होती हैं। पाँचवीं शयन लीला की भूमिका है। छठवीं भूमिका में सुखपान आदि सर्व प्रकार के वाहन रहते हैं। सातवीं में कृष्ण-राधा की सखियों के साथ झूलन की लीला होती है। आठवीं भूमिका सातवीं जैसे ही है और रंगमहल ध्वनि में नर्तना होती रहती है। नवीं भूमिका में परमात्मा अक्षरातीत दृश्यों का अवलोकन करते हैं और दसवीं भूमिका के मध्य में स्थित चबूतरे पर पूर्णिमा के दिन राधाकृष्ण-सखियाँ चाँदनी का सुख लेते हैं। सखियाँ इस युगलस्वरूप की निरन्तर सेवा करती हैं।

अक्षरब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों को अपनी सत्ता के अन्तर्गत रखते हैं। अक्षर ब्रह्म अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की अपनी माया शक्ति से उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाले, ऐश्वर्यादि अनेक गुणसम्पन्न, अविनाशी सर्वशक्तिमान और नित्य बैकुण्ठलोक [illegible] निवास करने वाले हैं। परमधाम में प्रतिकृतिरूप प्रतिबिम्बित इस संसार का प्रत्येक प्राणी अक्षर ब्रह्म द्वारा उत्पन्न होता है, एवं इसके अन्दर उन्हीं अक्षर की बिम्बानुबिम्बित चेतनता आती है और इन्हीं जीवों से व्यावहारिक और पारमार्थिक पदार्थ का भी प्रतिभास होता है।[१४६] अक्षरब्रह्म अक्षरातीत के नित्य सुबह के दर्शन करने जाते हैं[१४७]—

सुन्दर सैंया एक निकसें एक पैठे, एक आवें उठे एक बैठें।
इन अक्षरके अक्षरातीत इन, दर्शनहु आवे नित्य।
झरोखे आगे मुजरा करे, प्रणाम करके फिरे॥

---

१४५ प्राणनाथ कुलजमस्वरूप (प्रगटवाणी) प्रकाश प्र० ३७ चौ० ६

१४६. "जीवात्मा चाक्षरचैतन्यांशत्वेन प्रतिबिम्बात्मकत्वस्य साक्षिकत्वं प्रतिबिम्बत्वादेव जीवात्मानन्यामन्यद। स्वप्नदृष्टु व्यावहारिकपदार्थवज्जीवा स्वप्नदृष्टकल्पित स्वाभिक पुण्यापुण्यसंबन्धस्य नश्यतो ध्यान इति न किंचिदनवद्य।"—श्री महाचार्य कृत "सिद्धान्तदर्शन", पृ० ५७

१४७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश, प्र० ३१ चौ० ८१

यह विश्व अक्षर भगवान के द्वारा अधिष्ठित है अर्थात् अक्षर ब्रह्म के द्वारा स्थापित है गुहागत (अक्षरधाम) ब्रह्माण्ड और ही है, वही गुहाचर नामक स्थान महान तेजस्वी और चेतन है।[१४८] जिस तरह प्रदीप्त अग्नि से चिनगारियाँ उड़ती हैं इसी तरह अक्षर ब्रह्म से सांसारिक जीव पैदा होते हैं और अंत में ही उन्हीं के अन्दर जा कर लीन हो जाते हैं। उनका अखण्ड वैकुण्ठधाम माया से परे है। अक्षर ब्रह्म धाम और परमधाम में विचरते हैं और स्वप्न द्वारा तृतीय ब्रह्मांड (इस संसार) में भी संचरण करते हैं। जिन अक्षर ब्रह्म के अंशांशी प्राणी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। सम्पूर्ण संसार के अधिनायक वैकुण्ठाधिपति विष्णु भगवान् हैं और अव्यक्त अक्षर भगवान् कालस्वरूप हैं, जो अक्षर भगवान् बाललीलावत् जगत् की उत्पत्ति और प्रलय करते हैं।[१४९] अक्षर ब्रह्म काल संसार के प्राणियों का ईश्वर है परन्तु वह सर्वेश्वर प्रभु का शासक नहीं है। वस्तुतः अक्षरब्रह्म अक्षरातीत परब्रह्म का मनस्वरूप है। प्राणनाथ ने कहा है—

'स्वरूप एक ने लीला दोय।"[१५०]

अक्षरब्रह्म के चार स्वभाव हैं—सत् स्वरूप, सबलिक ब्रह्म, अव्याकृत ब्रह्म और केवल ब्रह्म। सच्चिदानन्द अक्षरातीत के चित् के तीन स्वभाव हैं—सत्, चिद् और आनन्द। पुनः इन्हीं तीन भावों के स्थूलपाद में आनन्द स्वभाव अन्तर्गत लक्ष्मीजी और १२ हजार सखियों का स्वरूप है। लक्ष्मीजी में भी ये ही तीन भाव हैं। इस तरह परमधाम और धाम के प्रत्येक अंग में सच्चिदानन्द स्वरूप से अपार लीला प्रसारित है। ऊपर कहे गये स्वभावों में से प्रथम सत् स्वरूप अक्षरब्रह्म का मनरूप है। कूटस्थ अक्षरब्रह्म के चार अंतःकरण मन बुद्धि, चित् और अहंकार माने गये हैं।[१५१] अक्षरब्रह्म की दो वृत्तियों में से विलास की वृत्ति (सुरता) से अपने धाम में आनन्द-क्रीडा होती है और खेल की वृत्ति से अव्याकृत में चेतन का आभास होता है। मनस्वरूप के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और निर्मल चैतन्य लीलाभेद से पाँच स्थान हैं। निर्मल चैतन्य को तुरीयातीतावस्था कहा जाता है। यही उत्तम जीवों का मुक्तिस्थान है। महाकारण में सदंश, चिदंश और आनन्दांश तीन मुख्य रूप से विद्यमान हैं। इसको तुरीयावस्था कहा जाता है। कारण के अन्तर्गत सत्-आनन्द भाव से केवल ब्रह्म का शृंगाररस स्वरूप है। सूक्ष्म को अक्षर-ब्रह्म का चित् स्वरूप

---

१४८. श्री भट्टाचार्यकृत, निगमार्थप्रदीप, पृ० ५६

१४९. वही, पृ० ७३

१५०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप।

१५१. रणछोड़दास बीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० १७

है। स्थूल में प्रकृतिपुरुष अव्याकृत का स्वरूप है। इसे सदुरा माया या अपरा प्रकृति कहते हैं। इस सत् स्वरूप में त्रिविध भाव का सदैव प्रकाश बना रहा है। केवल ब्रह्म अक्षरब्रह्म की बुद्धि का स्वरूप और शृंगाररस का स्वरूप है। इनके साथ अर्धांगना स्वामिनीजी और १२ हजार सखियाँ हैं। प्राणनाथ ने स्वामिनीजी को आनंद-योगमाया कहा है। इनका धाम केवलधाम है। कृष्ण का महारास आनन्दयोगमाया का आश्रय ग्रहण करके स्वतन्त्र योगमाया का नया ब्रह्माण्ड बनाकर हुआ। केवल-ब्रह्म रसानन्द है अतः इसमें चतुष्पाद की कल्पना नहीं है। सबलिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षर का दिव्यस्वरूप है या अक्षरब्रह्म का चिद् स्वरूप है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के कर्ताहर्ता सबलिक ब्रह्म है। सर्वान्तर ब्रह्म के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण चतुष्पाद स्वरूप हैं। निर्मल चैतन्य अक्षरब्रह्म का प्रतिभास है और कृष्ण के श्याम-स्वरूप का यही मुक्तिस्थान है। इसी तीसरे मुक्तिस्थान के संदर्भ में प्राणनाथ ने कहा है,

> 'जिन दिन साह हवसी, सई माहे मे सरियत।
> बहिस्त होसी तिनो तीसरी, माने ना जले कयामत।'[152]

महाकारण में केवलब्रह्म के अखण्ड राधाकृष्ण का अखण्ड महारास वर्तमान है। कारणस्वरूप में नित्य गोलोक है। सूक्ष्म के अन्तर्गत केवलब्रह्म का आनन्द अंश और सबलिक ब्रह्म का चिदंश मिलकर चिदानन्द सहगोलक स्वरूप है। वस्तुतः कूटस्थ अक्षरब्रह्म के हृदयाकाश से उदित यही सुमंगला शक्ति है। स्थूल में प्रकृति-पुरुष का निरन्तर वास है और इसके कारणपाद में पाँच शक्तियों का मूल है, सूक्ष्म पाद में पाँच वासना (महाविष्णु, शिवजी आदि) का मूल है और ७२ हजार शक्तियों का मूल है तथा स्थूलपाद में पाँच वेद तथा ऊँकार प्रणव ब्रह्म रोधिनी शक्ति अव्यक्त रूप में है। अव्याकृत ब्रह्म अक्षरब्रह्म के अहंकार का अन्तःकरण स्वरूप है। यही प्रतिबिम्बित गोलोक है। अव्याकृत के महाकारण, कारण, सूक्ष्म और स्थूल चार पाद है। महाकारण के भी शुद्ध महाकारण, शुद्ध कारण, शुद्ध सूक्ष्म और शुद्ध स्थूल चार पाद हैं। अव्याकृत ब्रह्म का स्थूलपाद ही बेहद भूमिका है[153]

> हदके पार बेहद, बेहद पार अक्षर, अक्षर पार अक्षरातीत।

इसी स्थूल पाद में प्रणव ब्रह्म और ज्ञानशक्ति गायत्री स्थित हैं। प्रणव ब्रह्म के पर और अपर दो स्थान है।

१५२　प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० ५ चौ० १६
१५३　वही

को समेट कर महाविष्णु में और महाविष्णु प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार महाप्रलय में व्यष्टि समष्टि सब का लय हो जाता है—

नारायणश्च सम्पूर्ण सहृत्य स्वगुणान् बहून्।
महाविष्णौ विलीनश्च ते सर्वे क्षुद्र विष्णवः।
महाविष्णु प्रकृत्या च सा चैव परमात्मनि ॥[१५७]

लीला रहस्य

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की तरह प्रणामी सम्प्रदाय में उपास्य परब्रह्म कृष्ण की लीलाओं का महात्म्य है। लीला को छोड़ कर इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं। प० बलदेव उपाध्याय लिखते हैं,[१५८] भगवान् की लीला भी उन्ही के समान नित्य, अनन्त तथा चिन्मय होती है। लीला साम्यभाव, सख्य की भावना पर आश्रित रहती है, असमानता या वैषम्य के उदय होने पर लीला का प्रादुर्भाव कथमपि नहीं हो सकता। लीला के विषय में वैष्णवमतों में पर्याप्त मत विभिन्नता लक्षित होती है। भगवान् के माधुर्य भाव के प्राधान्य होने पर सद्रूप लीला का प्रसंग उठता है।

प्रणामी सम्प्रदाय कृष्ण के तीन प्रादुर्भाव मानता है। उनके प्रत्येक प्रादुर्भाव में स्वरूप और उनकी शक्ति का महत्व भिन्न भिन्न प्रकार से माना गया है। कंस का वध वासुदेव कृष्ण ने किया, नन्दनन्दन कृष्ण ने नहीं। कृष्ण के अ श स्वरूप विष्णु द्वारिका गमन किया था। अखण्ड विहारी परमात्मा ने निजांश द्वारा ही व्रज में साक्षात् कृष्ण स्वरूप धारण किया था। व्रजविहारी नन्दनन्दन कृष्ण के अंश मात्र कृष्ण ने मथुरालीला की तथा द्वारिका गमन करने वाले कृष्ण मथुरावासी कृष्ण के अ शभूत थे। इस प्रकार कृष्ण की त्रिवलीला की मान्यता है—[१५९]

(अ) पृश्नि और सुतपा को पूर्व जन्म में दिया हुआ वरदान तथा पाप पीड़ित पृथ्वी का गोरूप धारण कर वैकुण्ठगमन और अवतार धारण के लिए प्रार्थना के फलस्वरूप वासुदेव कृष्ण का देवकी के यहाँ कारागृह में जन्म हुआ था।

(ब) वासुदेव जिस कृष्ण को गोकुल में पहुँचा आये और नन्दजी के घर पर पुत्रोत्सव मनाया गया। यह स्वरूप गोलोक की सामग्री युक्त था। इसी पर अक्षरात्मा और पुरुषोत्तम अक्षरातीत का आवेश विराजमान हुआ है। इस

---

१५७. ब्रह्म वै० पु० कृष्णजन्म खंड
१५८. प० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृ० ६४६
१५९. पं० श्रीकृष्णदत्त शास्त्री, सम्प्रदाय सिद्धान्त, पृ० ३३

द्वितीय प्रादुर्भाव के कारणों में, गोलोक में श्रीदामा और राधा का कलह, विरजा सखी के साथ कृष्ण का नित्यविहार, राधा और श्रीदामा का परस्पर शापादि एवं देवों सहित नारायणजी का गोलोक जाना और पूर्णावतार धारण कर सब के दुःख हरने की प्रार्थना करना; परमधाम में अक्षरातीत के साथ शक्तियों का प्रेमसंवाद होना, अक्षरब्रह्म के खेल को देखने की इच्छा, अक्षरब्रह्म के मन में अक्षरातीत की किशोरलीला देखने की कामना, सखियों के प्रेम की परीक्षा लेना, उनको अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराना आदि माने गए हैं।

(ख) रासरात्रि के बाद पुनः जगत प्रकट होता है और उसमें वेदऋचा सखीरूप में प्रकट होती है। गोलोक के कृष्ण कृष्णरूप से प्रकट हो प्रातःकाल नन्द के घर से उठते हैं। अपनी माया से उद्भूत यह लीला साल भर की है। रासलीला के समय काल माया के ब्रह्माण्ड का लय हो गया था और योगमण्डल की रचना हुई। उसमें गोलोकी स्वरूप कृष्ण का अवतरण हुआ था। यद्यपि नन्दपुत्र कृष्ण में गोलोकी स्वरूप और चारव्यूह सहित विष्णु-भगवान का अंश गोकुल में भी विद्यमान था। अधिकार के कारण पूतना अघासुर बकासुर का वध भी उन्हीं के द्वारा हुआ था। इस प्रादुर्भाव में पूर्णब्रह्म कृष्ण का आवेश मुख्य रूप में था। ११ वर्ष और ५२ दिन की कृष्णलीला को ही प्रमुख लीला माना गया है। वही ब्रह्मलीला है। कृष्णलीला के अन्तर्गत रासलीला वास्तवी, प्रतिमासिकी और व्यावहारिकी इन तीन भेदों में विभाजित है। वास्तवी अखण्ड लीला को ही उत्तम माना गया है। अक्षरब्रह्म के हृदय में जो लीला होती है वह वास्तवी, नित्य वृन्दावन की रासलीला प्रातिमासिकी और काल माया के ब्रजमंडल में हुई रासलीला को व्यावहारिकी कहा जाता है। सारांशतः ब्रज मध्यवर्ती गोलोकी और द्वारिका कृष्ण की लीलाओं में ब्रजलीला ही सर्वोच्च है क्योंकि ब्रज में कृष्ण के ११ वर्ष और ५२ दिन तक के स्वरूप पर अक्षरातीत पूर्णब्रह्म आवेश, अक्षरब्रह्म की आत्मा और गोलोक की सामग्रीयुक्त उनका स्वरूप था। वह परमधाम की लीलायुक्त होने से अवतार संज्ञा में भिन्न है।[१६०]

अक्षरब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म की ब्रह्मलीला देखने की जो इच्छा हुई थी उसके संदर्भ में प्राणनाथ ने कहा है—[१६१]

---

१६०. रणछोड़दास बीरजी, परमधाम प्रणालिका (गु० स०), पृ० ६१५

१६१. प्राणनाथ, कुलजम स्वरूप

"तब हक्के अंग का नूर जो, जो है नूरजलाल ।
तब तिनके दिल पैदा हुआ, देखूं इश्क नूरजमाल ॥
कैसा इश्क बड़ी रूहमों, कैसा इश्क साथ इदन ।
बड़ी रूहका इश्क हकसों, इश्क हकसों कैसा सखन ।।"

× × ×

या समये श्री वैकुण्ठ नाथ, इच्छा दर्शन करने साथ ।
प्रसार मन उपजी यह आश, देखूं धनीजी की प्रेम विलास ।।

जो वास्तवी लीला है वह आत्मज्ञान से ही जानी जा सकती है, व्यावहारिकी लीला को उत्तम जीव जान सकते हैं। किन्तु वास्तवी लीला के ज्ञान बिना व्यावहारिकी लीला का और व्यावहारिकी लीला के बिना वास्तवी लीला का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। इन दोनों लीला के ज्ञान से सच्चिदानन्दस्वरूप एक अन्य अखण्ड लीला का आत्मा में प्रकाश होने लगता है। वास्तवी लीला इस जगत से परे है और उसका प्रतिभास वृन्दावन की लीला में होने से उसे प्रातिभासिकी कहते हैं। वृन्दावन लीला भी नित्य है। रासलीला ही आध्यात्मिकी लीला है। नित्य रासलीला इस जगत से परे नित्य वृन्दावन स्थान में हुई है। डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने बताया है कि[१६२] राधाकृष्ण की नित्य लीला का स्थान अखण्ड वृन्दावन है। वास्तव में वह स्थान अखण्ड वृन्दावन से परे है। उस महारासलीला का वर्णन करते हुए प्राणनाथ कहते हैं कि कृष्ण ने शृंगार करके नृत्य किया और सब सखियों ने भी उनका अनुसरण किया। वाद्य बजने लगे, दिव्य शब्द की ध्वनि उठी, आभूषणों की आवाज, पग के घुंघर की मधुरध्वनि से सारा वातावरण गूंज उठा। इसको देख कर वृक्ष-पशु-पक्षी-लतादि मग्न हो गये, यमुना का जलप्रवाह रुक गया, चन्द्रमा की गति स्थिर हो गई—[१६३]

"मोरलिया नाचे रंगे राचे, शब्द करे टहुकार ।।
बादरडा पाये उभा माय, लिये गुलाटो मार ।।
पशुपंखी वासे मन उल्लासे, आनंदियो अपार ।।
वनकुलाने वेलो आवे, फूलडा करे वेहेकार ।।
वादलियो तेजे जुवे हेजे, नीचो आवी निरधार ।।
जल यमुनाना वाध्या घणा, आघा न वहे लगार ।।
चड़छदा बाजे धोम विराजे, पड़ताले धमकार ।।
सघली सगे उमंग अंगे, अजब रसे अधार ।।

१६२. डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिंदी साहित्य में कृष्ण, पृ० १८४
१६३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, रास, प्रकरण, ४, चौ० १८–१३

भूषण वाजे धरणी गाजे, वृन्दावन हो होकार ॥
अमृत श्रा वाये लहेरो लिये वनराय,
अंग उपजावे करार ॥
एम केटली भांते रमिया खाते, रामत रग अपार ॥
कहे इन्द्रावती एणीपेरे लिजे, वालो मुख तणो सरदार ॥

अवतार निरूपण

गीताकार ने "सभवामि युगे युगे" लिख कर और भागवतकार ने २४ अवतारों को ग्रहण करके कृष्ण को अवतारी और अवतार रूप मे प्रचलित किया। कृष्ण को अवतारी समझने के साथ ही उनके ससर्ग मे आने वाली प्रत्येक चीज या व्यक्ति अलौकिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। इस सृष्टिचक्र को व्यवस्थित चलाने के हेतु विष्णु के अशस्वरूप पृथ्वी पर ये २४ अवतार हुए। इन अवतारों को प्रणामी सम्प्रदाय ने अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार स्फूर्ति अवतार, लीलावतार और पूर्णावतार मे विभाजित किया है।[१६४] गुरु देवचन्द को आवेश अवतार और प्राणनाथ को प्रवेश अवतार माना गया है। लेकिन व्रजलीला करने वाले कृष्ण विष्णु की सोलहकला, सर्व देवराशि, चार व्यूह, नव रस इत्यादि युक्त समझा जाता है। उसे ही पूर्णावतार की सज्ञा दी गयी है। प्राणनाथ ने कहा है कि इम कृष्ण के बालचरित्रों एवम् किशोर स्वरूप की लीला का वर्णन किस मुंह से करूं—[१६५]

"बाल चरित्र लीला जोवन, कै विधस्नेह किये सैयन।
कै लिये प्रेम विलास जो सुख, सो मैं केता कहूं या मुख ॥"

जिस तरह सूरदास ने [१६६] "वेद ऋचा होइ गोपिका हरि सो कियो विहार" बृहदवामन पुराण की कथा के आधार कहा है, उसी प्रकार प्राणनाथ ने कहा है—[१६७]

"कालमायाको यह जो इंड, उपज्यो और जाने माई ब्रह्माड।
ये तीसरा इंड नया भया जो अब, अक्षर की सुरत का सब ॥
याहि सुरत की सखिया भई, प्रतिबिम्ब वेदऋचा जो कही।
जिनको कह्यो उद्धव ज्ञानं योगारम्भ,
सोक्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिम्ब ॥

---

१६४. रणछोडदास वीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० २३३ और ६१३–६१४
१६५. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश (प्रकटवाणी)।
१६६. सूरदास, सूरसागर, पृ० ४६२
१६७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश (प्रकटवाणी), ४३-४७

(२) जीव

प्राय. जीव और ब्रह्म के तात्विक अभेद को सभी अद्वैतवादी दर्शनो ने मान्य रखा है। मुंडक और बृहदारण्यक उपनिषद मे ब्रह्म को अग्नि और जीवों को स्फुलिंगो का रूप दिया गया है। तैत्तरीय उपनिषद के "एकोऽहं बहुस्याम्" के अनुसार ब्रह्म की इच्छा से ही जीवो की उत्पत्ति भी मानी जाती है।[१६८] प्राणनाथ ने तीन प्रकार की जीवसृष्टि (जीवात्मा) बतायी है—

मास्त्रो तीन सृष्ट कही, जीव इश्वरी ब्रह्म।
तिनके ठौर जुदे जुदे, देखियो अनुक्रम ॥
जीवसृष्ट वैकुण्ठ लो, सृष्टि ईश्वरी अक्षर।
ब्रह्म सृष्टि अक्षरातीत लो, शास्त्र कहे यो कर ॥[१६९]

अर्थात् ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरी और जीवसृष्टि इन तीन प्रकारो मे से जीवसृष्टि के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। ब्रह्मसृष्टि नित्यमुक्त, ईश्वरी सृष्टि मुमुक्षु और जीवसृष्टि बद्धमुक्त है। परमधाम से इस ससार के मायापूर्ण खेल देखने के लिए आने वाले जीव—ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी–सृष्टि—जीवसृष्टि से अलग है। क्षरपुरुष की यह जीवसृष्टि खेल रूप है—स्वप्नवत् है और ब्रह्म—ईश्वरी जीवात्माए खेल देखने के लिए आने वाली जाग्रत हैं। किन्तु माया के कारण इस संसार के लोग नही पहचान सकेंगे —

यामे जीव दो भात के, एक खेल दूजे देखनहार।
पहिचान ना होवे काहूको, आडी मायामोह अधकार ॥[१७०]

बद्धमुक्त प्रकार के जीव मे से जो उत्तम हैं वे भक्ति के नीतिनियमो का पालन करते हैं, उत्तम देवो की उपासना करके स्वर्ग, वैकुंठ, कैलास या महानारायण पद तक पहुँच पाते हैं। महाप्रलय तक अपने इष्ट के साथ रहते हैं और अन्त मे अव्याकृत मे लीन हो जाते है। मध्यम प्रकार के जीव देवदेवी की उपासना सकामवृत्ति से करते हैं, ससार की जाल मे फँसे रहते हैं, अतः स्वर्ग, मृत्यु व पाताल लोक के मध्य मे कर्मानुसार आवागमन के चक्र मे फिरते रहते हैं। कनिष्ठ जीव हिंसा आदि पापकर्मो मे डूबे रहते हैं। वे नर्कयातना भुगतते हैं और ८४ लक्ष योनि

---

१६८. (अ) बृहदारण्यक उप० २:१:२०
(ब) मुंडक, २:१:१
१६९. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० ३७, चौ० २२–२३
१७०. वही

के चक्र में फिरते रहते हैं। जगत के प्राणीपदार्थ भी इसी प्रकार के माने जाते हैं। जीव-सृष्टि अर्थात् बद्धमुक्त जीव मिथ्यात्वयुक्त है और उसके परमधाम मोक्ष अप्राप्त है। बद्धमुक्त जीव मोक्ष का अधिकारी ही नहीं है। उसके लिए तो वैकुण्ठगमन ही माना जाता है।[१७१]

ईश्वरीय जीव ब्रह्मज्ञान से जाग्रत होता है। यह जीव अक्षरब्रह्म की सुरता स्वरूप है। भक्ति, ज्ञान और कर्म से अक्षरब्रह्म में लीन हो जाता है। अक्षरब्रह्म के ईक्षणादि से प्रवेशान्त जो सृष्टि वह ईश्वरी सृष्टि है।[१७२] इस प्रकार के जीव का मोक्षधाम अक्षरधाम ही है।

ब्रह्मसृष्टि की वासनायुक्त जीव सर्वोत्तम है। माया का आवरण उनको भी स्पर्श कर लेता है—"ब्रह्मसृष्टि भी धरे मोहके आकार"।[१७३] यह जीव शाश्वत है। इसको किसी ने सृजा नहीं लेकिन ब्रह्म की शक्तिस्वरूप सनातन है। छान्दोग्य उपनिषद "सन्मूला सोम्येमाः प्रजाः सदायतना सत्प्रतिष्ठाः" के आधार पर यह सनातन धाम-परमधाम का है और इसकी प्रतिष्ठा भी सनातन है। श्री भट्टाचार्यजी लिखते हैं कि ब्रह्मात्माएँ परस्पर सद्बोध के द्वारा परमधाम को प्राप्त हो जाते हैं। ब्रह्मात्माएँ भी लोकदृष्टि से स्वप्नमयी जीव के समान जन्मवाले तथा मरण धर्मा प्रतीत होती है। वस्तुतः वे वैसी नहीं हैं।[१७४] ब्रह्मात्मा आन्तरबाह्य ढंग से शुद्ध एवं प्रेमलक्षणाभक्ति युक्त होती हैं। प्रणामी सम्प्रदाय का "सुन्दरसाथ" (अनुयायी) इसी कक्षा की जीवात्माएँ हैं।[१७५] इन ब्रह्मात्माओं का परमधाम प्रेमलक्षणा भक्ति है—

जब प्रेम इन्हो आवसी, तब देखेंगे मुझको।
प्रेम बिना इन खेलमे, मैं मिलूं नहीं इनको।।
खद प्रियनने प्रियसो, किया प्रेम का जोष।
तो धाममें प्रेम बिना, बैठ ना सके कोय।।[१७६]

इसीलिए जो ब्रह्मात्माएँ इस संसार में अवतरित होकर अपना असल स्वरूप

---

१७१. श्री भट्टाचार्यकृत निगमार्थ प्रदीप, पृ० ९४ और ९६
१७२. भविष्यकरण पर्व ३–२०–५५
१७३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप।
१७३. श्री भट्टाचार्य कृत निगमार्थ प्रदीप, पृ० ९६
१७५. रणछोड़दास वीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ५६६
१७६. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप।

भूल गयी है और माया में डूब गयी है उनको अपनी निंद—अज्ञान, मोह—हटा देने के लिए प्राणनाथ ने कहा है—[१७७]

निंद उडाये जब चिन्होंगे आपको, तब जानोंगे मदोंत यु रचानो ।
तब आपई घर पाओगे आपको, देखोगे अलख लखानो ।।

(३) जगत

शंकराचार्य के "जगन्मिथ्या" उद्‌घोष के पश्चात् जगत का मिथ्यात्व का विषय विकास पाता रहा । वल्लभाचार्य ने इस तत्त्व को नये ढंग से देखा । लेकिन प्रणामी सम्प्रदाय ने गीता के क्षर तत्त्व को ही ग्रहण किया है । अक्षरब्रह्म की परा शक्ति से इस जगत की रचना हुई है । कालमायाकृत यह संसार जगत नाशवन्त है जिस तरह प्रदीप्त अग्नि से चिनगारियाँ उड़ती हैं इसी तरह अक्षरब्रह्म से सांसारिक जीव पैदा होते हैं और अन्त अन्त में उन्हीं के अक्षर आकर लीन हो जाते हैं ।[१७८] शक्ति और शक्तिमान के बीच कोई भेद नहीं है अर्थात् दोनों एक ही हैं । परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति से यह सारा जगत ब्रह्मस्वरूप कहा जाता है । इस जगत की उत्पत्ति के लिए अक्षरातीत परमात्मा और उनकी इच्छाशक्ति को महाकारण माना गया है । प्राणनाथ ने कहा है कि जिस वक्त न ईश्वर की उत्पत्ति हुई थी, न मूल प्रकृति पैदा हुई, उन वक्त सिर्फ अक्षरातीत पूर्णब्रह्म थे और उनके मनः स्वभाव का स्वरूप अक्षरब्रह्म थे, इनके सिवाय कुछ नहीं था—[१७९]

ना ईश्वर ना मूल प्रकृति, ता दिन की कहूं आपावीती ।
निज लीला ब्रह्मवाल चरित्र, जाकी इच्छा मूल प्रकृति ।।

भागवत के कथन का ही अनुसरण किया गया है कि आदि देव नारायण प्रकृति में अधिष्ठित होकर पंचभूतों की सृष्टि करते हैं तथा उनके द्वारा ब्रह्माण्ड नामक विराट की रचना करते हैं—"भूतैर्यदा पंचभिरात्म-सृष्टैपुर विराज विरचय्य तस्मिन् ।"[१८०] सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था । उसने निश्चय किया कि मैं जगत को उत्पन्न करूँगा और उसने लोक उत्पन्न किये । उसने सूक्ष्म और स्थूल, रूपहीन और रूपवान पैदा किये । आकाश आत्मा से उत्पन्न हुआ, वायु आकाश से उत्पन्न हुई, अग्नि वायु से उत्पन्न हुई, जल अग्नि से उत्पन्न हुआ, पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई

---

१७७. वही
१७८. श्री भट्टाचार्यकृत, निगमार्थप्रदीप, पृ० ५८ और ८०
१७९. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश (प्रकटवाणी) .
१८०. भागवत ११–४–३

और पृथ्वी मे पौधे उत्पन्न हुए।[१८१] जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। वह ब्रह्म से उत्पन्न होता है, उसी से पलता है और उसी मे समा जाता है। इस जगत को स्वप्नवत् माना गया है और स्वप्न मे जिस तरह अघटित घटनाएँ दीख पड़ती हैं। परमात्मा की इच्छा शक्ति से जगत की उत्पत्ति के साथ ही परिणामवाद और विवर्तवाद की चर्चा उपस्थित हो जाती है। महाकारण से विषम सत्तावाले कार्य की उत्पत्ति को विवर्तवाद कहा जाता है। इस दृष्टि से सच्चिदानन्दमय परमात्मा से असत्, जड़ और दुःखमय जगत उत्पन्न हुआ। अतः यह जगत परमात्मा का विवर्त-रूप है। ब्रह्म की इच्छामात्र से समुत्पन्न यह पंचभौतिक जगत अष्टावरण सहित प्रकृति पर्यन्त सब अनित्य है।[१८२] जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय भगवान् के कारण है। गीता के अनुसार ईश्वर की अध्यक्षता मे प्रकृति से जगत उत्पन्न होता है—[१८३]

"मय ध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।।"

लेकिन गीता की तरह इस जगत को नित्य और सत्य नही माना गया। ईश्वर जगत की उत्पत्ति के लिए निमित कारण तो है ही, परन्तु उपादन कारण भी है।

सृष्टि उत्पत्ति और विकास के संदर्भ मे माना गया है कि [१८४] महत्व नारायण की अहंकार से आध्यात्मक की तीन शक्ति, ज्ञान की क्रिया और इच्छा त्रिगुण हो कर प्रकट हुई। ज्ञानशक्ति स्वातम अहकार के रूप मे, क्रियाशक्ति राजस अहकार के रूप मे और इच्छाशक्ति तामस् के रूप मे प्रकट हुई। पुनः स्वातस अहकार से चार व्यूह-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध-अन्तःकरण पैदा हुए। राजस् अहंकार से पाच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। तामस् अहंकार से शब्द तन मात्रा, इस तन मात्रा से आकाश तत्व, आकाश से स्पर्श तन मात्रा, स्पर्श तन, मात्रा से वायु तत्व, वायु तत्व मे रूपतन मात्रा, से तेज तत्व, तेज तत्व से रस, रस तत्व से जल तत्व से गध तन मात्रा, गंध तन मात्रा से पृथ्वी तत्व–इन दश तत्वो का प्रादुर्भाव हुआ। इन २४ तत्वो मे नारायण भगवान की अंशरूप चेतनाशक्ति मिलकर २५ प्रकृति मानी जाती है। संकर्षण व्यूह अहकार की सुरता

---

१८१ ऐतरेयोपनिषद् १:१ और २:५, ६,७
१८२. प० कृष्णदत्त शास्त्री, सम्प्रदाय सिद्धान्त, पृ० ४
१८३ श्रीमद्भगवत् गीता, ६ १०
१८४ रणछोड़दास वीरजी, परमधाम प्रणालिका, १०७–१३७

है। वह महानारायण के चनुपाद का प्रशमात्र ढँग धारण करके मताम्प पाताल में उतरी और मोहसागर के प्रश से पाताल में गर्भोदक की रचना की। उसमें महाप्रकाशवान अण्ड स्वरूप किया। इसीमें से शेषशायी नारायण की उत्पत्ति हुई। सृष्टि तीन प्रकार की है—महदसृष्टि, मानसीसृष्टि और मैथुनीसृष्टि। चौदह लोक, इस प्रकार माने गये हैं—सत्यलोक, तपलोक, जनलोक, महरलोक, स्वर्गलोक, पितृलोक मृत्युलोक, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल और पाताल। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन अष्टावरणों की कल्पना की गई है। आगे बताया जा चुका है कि मैथुनी, मानसी और महद् सृष्टि है उनको चार प्रकार के प्रलय नित्यप्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृत प्रलय और आत्यंतिक महाप्रलय लागू पड़ते हैं। अन्तिम प्रलय में जगत अव्याकृत में लीन हो जाता है।

(४) माया

शंकराचार्य ने अविद्या, अज्ञान, अध्यास, आध्यारोप, अनिर्वचनीय, विवर्त, भ्रान्ति, भ्रम, नामरूप, अव्यक्त, बीजशक्ति, मूलप्रकृति आदि शब्दों का प्रयोग माया के अर्थ में ही किया है। विशेषतः माया, अविद्या, अध्यास, और विवर्त को तो एक समानार्थी ही बताया है—"अविद्यालक्षणा अनादि माया।[१८५] लेकिन दार्शनिकों ने सूक्ष्म भेद बताया कि अविद्या और माया एक ही तत्त्व के आत्मगत और वस्तुगत पक्ष हैं। जीव में अविद्या है और माया जगत के नाम रूपात्मक प्रपंच की स्रष्टा है।[१८६] कृष्ण की परमधाम की अखण्ड वृन्दावन की रासलीला योगमाया के आश्रित हुई थी लेकिन उस वक्त कालमायाकृत संसार नहीं था। योगमाया अनिर्वचनीय एवं महाशक्ति मानी गयी है। शायद इन्हीं दो स्वरूपों के लिए "सनारक" और "विनाशक" शब्दों का उपयोग भी किया जाता है।[१८७] परब्रह्म की पहचान कराने में और संसार को पार करने में सहायक होनेवाले सनारक माया है और माया को ही सत्य मानकर मोह पैदा करने वाला स्वरूप विनाशक है। प्राणनाथ का कहना है कि लोग इस विश्व में पूर्ण ब्रह्म की व्यापकता मानते हैं लेकिन वह संसार तो स्वप्नवत् है और पूर्णब्रह्म तो स्वप्नवत् के द्रष्टा है, जाग्रत है—[१८८]

लोक चौदह दसों दिश, सब नाटक स्वांग संसार ॥
आवे नैन श्रवण मन वचन, ए सब माया मोह अंधकार ॥

---

१८५. माण्डूक्य उप० शांकर भाष्य३ .३६
१८६. श्री भट्टाचार्यकृत, निगमार्थ प्रदीप, पृ० ६२–६३
१८७. रणछोड दास वीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ५०२
१८८. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप।

क्या दानव क्या देवता, क्या तिर्थंकर अवतार ।।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश लो, सो भी पैदा मायामोह अहंकार ।।

अर्थात वास्तविक चैतन्य तो माया से पर परमधाम में ही है। इस विश्व का चैतन्य मायावी है। इस नश्वर जगत के अधीश्वर महानारायण है और वह भी पूर्ण ब्रह्म की माया से ही उद्‌भूत है। मुक्त जीव-ब्रह्मसृष्टि भी इस जगत में अवतरित होकर माया के धर्म को सत्य मानकर चलते हैं और उन्होने भी मोह के आकार धारण किये हैं—

ब्रह्म सृष्टि भी धरे मोहके आकार,
सो इत आवही कौन प्रकार ।।[१८६]

जगत मायावी और विनाशशील है। पूर्णब्रह्म की प्रेरणा से अक्षरब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति से उसकी उत्पत्ति हुई है। अत पूर्णब्रह्म परमात्मा माया से पर है, अक्षरब्रह्म ही माया का बीज है। माया भावरूप है यद्यपि वह यथार्थ नहीं है। यह विज्ञान तिरस्या भी है अर्थात् ज्ञान होने पर वह दूर हो जाती है। अविद्या के नाश होने पर विद्या का उदय होता है। पारमार्थिक सत्ता पर एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है। माया व्यावहारिक जगत मे उसी ब्रह्म का विवर्त है। अत माया अनिर्वचनीय है। माया का आश्रय और विषय ब्रह्म है तथापि जिस प्रकार रूपहीन आकाश पर नीला वर्ण का कोई प्रभाव नही पडता अथवा जिस प्रकार जादूगर अपने जादू से स्वय प्रभावित नही होता, उसी प्रकार ब्रह्म पर माया का भाव नही पड़ता। माया अपनी आवरण और विक्षेप शक्ति से असली स्वरूप पर पर्दा डाल देती है तथा विक्षेप से दूसरी वस्तु का आरोप कर देती है। इस प्रकार माया हमारे लिए भ्रम का कारण होती है। इस माया ने सबको भ्रमित किया है और अपना प्रभाव बढाती रही—[१९०]

ए माया छे बलवती, अपनी छे मूल धणी थकी ।।
मुनिजनने मनाव्या हार, शिवब्रह्मादिक नव लहे पार ।।
शुकसनका दिकने नव टली, लक्ष्मीनारायणने फरीवली ।।
विष्णु वैकुण्ठ लीधा माहे, सागरशिखर न मूक्या क्याए ।।
ए उपर हवे शुं कहूं, बीजा नाम ते कोना लऊ ।।
एने वचने सरवालो थयो, ब्रह्माण्डनुं धम सरवे आवयुं ।।
सत्व सहुणो जीती लीधा, चौद लोक पोताना कीधा ।।
वली लीधुं तत्व मोह, ने थकी उपज्या सहु कोय ।।

१८९. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप
१९०. वही, रासप्रकरण १, चौ० ४–८

कहे इन्द्रावती वल्लभा, ए माया छे अति छल ।।
हवे बुद्ध माइयुं छे अमर्ण, एहनुं कह्युं न जाय बल ।।

उन्होंने यहाँ का चैतन्य भ्रामक बताया है—[161]

"ए चेतन कहावे झूठी जिमी, सो सब जड तुम जानो ।
जो स्थिर कहावे अर्शमें, सो चेतन सदा परवान ।।"

कृष्ण परमात्मा माया के इस खेल के द्रष्टा हैं एवम् ज्ञाता भी—[162]

जा कारण माया रची शास्त्र भी तिन कारण ।।
खेल भी एही देखही, और अर्थ भी लिए इन ।।

यह माया स्वरूप, कुटिल, चचल, चपल है—[163]

एमना आयुध अमृतस्वरूप, छलबल बल प्रबल ।
अगिन कुटिल ने कोमल, चचल चतुर ने चपल ।
एहनो केटलो कहू विस्तार, जोरावर अति अपार ।
मोसु युद्ध माइयुं छे अमाघार, युद्ध करे छे वारवार ।

माया का निरूपण श्रीमद्भागवत् मे[164] भी कुछ इसी प्रकार का है ।

प्रणामी सम्प्रदाय ने माया को हटाने के लिए, मोह अज्ञान का नाश करने के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति का महत्व अ कित किया है । विशेषतः प्रेमलक्षणा भक्ति ही एक सर्वोत्तम साधन माना गया है कि जिससे जीव निर्विरोध ईश्वर प्राप्ति कर सके ।

साधना पक्ष

(१) कर्म, ज्ञान और भक्ति

सुखप्राप्ति मानवप्रकृति में आदि काल से ही शायद संशोधन का विषय रहा । यह सृष्टि, यह जीवन आदि सब आश्चर्य है और इन सब के पीछे कौनसी प्रेरणा काम कर रही था कौन-सी शक्ति है, यही एक बात ने मनुष्य को उस अलौकिक तत्व के प्रति आकर्षित किया है । मनुष्य के कल्याण हेतु कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का प्रादुर्भाव हुआ है । वेद कर्मवाद में मानते है । वेद के अनुसार जीव अनेक बार इस ससार मे जन्म लेता है और मरता है तथा अगले जन्म में शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ता है । पूर्व जन्म के दुष्ट कर्मों के कारण लोग पाप कर्म में

---

१६१ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप
१६२ वही,
१६३ वही, रास प्रकरण ।
१६४ श्रीमद्भागवत् पुराण स्कन्द ११-२८

प्रवृत्त होते हैं ।[१६५] श्रीमद्भागवत् में सात्विक, राजस् और तामस् कर्मों के संदर्भ में कहा है—

शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठान् लोकानाप्नोति कर्हिचित् ।
दुःखोदर्कानियायासांस्तमः शोकोत्कटान्क्वचित् ॥
क्वचित्पुमान्क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमंधधीः ।
देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथा कर्मगुणं भवः ॥
क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ।
चरन्विदति यद्दिष्ट दंडमोदनमेव वा ॥
तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमत् ।
उपर्यधो वा मध्ये, वा याति दिष्ट प्रियाप्रियम् ॥[१६६]

सात्विक कर्म से कभी अच्छा और ज्ञानयुक्त जन्म मिलता है, राजस् कर्मों से परिश्रमपूर्ण और दुःखयुक्त अवतार मिलता है और तामस् कर्मों से अज्ञान-शोकयुक्त जन्म प्राप्त होता है । तामस् कर्मों से विभिन्न निम्न कोटि के जन्म लेने पड़ते है । कर्मकांड के मुताबिक जप, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, यज्ञ, पचाग्नि, चान्द्रायन आदि का महत्त्व है। निस्वार्थ मन से और आत्मा को वश में रखनेवाला, सब पदार्थों का त्याग करनेवाला, अपने शरीर के लिए सिर्फ आवश्यक कर्म करने वाला पापमुक्त रहता है । लेकिन प्राणनाथ ने इन बाह्याडंबरो के प्रति तिरस्कार बताया है—

"वेद अगम कही उलटे फिरे, निगम नेति करी गया है ।
खबर न पड़ी बिन्द उपज्या कहा थे, ताथे नाम निगम धराया है ।[१६७]

× × ×

ज्ञानि अनेक कथे बहु ज्ञान, ध्यानि कइ विध धरे ध्यान ।
पर ये सब ही शून्य के दरम्यान, छुट्या नाकाहू सशय उन्मान ॥[१६८]

उन्होंने चमत्कार करने वालो के लिए कहा—[१६९]

"आगम भाखो मनकी परखो, सूझे चौदे भूवन ।
मृतकको जीवित करो, पर घर की ना होवे गम ॥"[१६९]

---

१६५. ऋग्वेद, ७-८६-६
१६६. श्रीमद् भागवत् ४:२९:२८-३१
१६७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।
१६८. वही
१६९. वही

इतना स्पष्ट है कि ज्ञान और भक्ति ये दोनों ही साधना के महत्वपूर्ण साधन हैं। फिर भी ज्ञानयोग की सफलता भक्तियोग के ऊपर आधारित है। कामना और वासना का क्षय और तत्वज्ञान की प्राप्ति के निरन्तर प्रयत्न ही ज्ञानयोग के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। इस प्रक्रिया के लिए भक्तियोग की सहायता लेनी ही पड़ती है। भक्ति की सहायता के बिना ज्ञानमार्ग विघ्नमय हो जाता है तथा पद-पद पर पतन की आशंका बनी रहती है। ज्ञान भक्ति का पूरक और प्रकाशक है।[२००] उपासनात्मक ज्ञान और भक्तियोग दोनों में कोई अन्तर नहीं है। सर्वदा भगवान् का चिन्तन, ध्यान, स्मरण भगवान् में अनन्य विश्वास और तत्परायण भजन का नाम उपासना है। उपासना की सफलता के लिए भगवान् के प्रति असीम प्रेम का होना जरूरी है। हृदय के अनुराग के बिना केवल जप, तप आदि से भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती—

"कै आचारी अपरसी, कै करें कीरतन ।
यो खेलें जुदे जुदे, सब पड़े बस मन ।
कै कीरतन करें बैठे, कै जाग जगन ।
कै कथे ब्रह्म ज्ञान, कै तपे पच अगिन ।।
× × ×
खेल मेलें आप रवदें, मिनो मिने करें क्रोध ।
जैसे मछ गलागल, छोडे ना कोई ब्रोध ।।"[२०१]

गीता, भागवत, नारद भक्तिसूत्र, नारद पांचरात्र, शाण्डिल्य भक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों द्वारा कर्मयोगादि से भक्ति का स्थान श्रेष्ठता के पद पर पहुँचा और भक्ति की महिमा का प्रसार होता रहा।

(२) भक्ति [redacted] प्रकार और प्रेमलक्षणा भक्ति का महत्त्व

भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में विभिन्न मत हैं। फिर भी सभी ने प्रेमतत्त्व को स्वीकार किया है। "प्रेमपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्यभिधियते" आदि श्रुति वाक्यों में यह स्पष्ट है कि शास्त्रों में सामान्यतया प्रेमपूर्वक किये जाने वाले भगवद्ध्यान को भी भक्ति कहा गया है। श्रीमद्भागवत में भक्ति को "नवधा" कहा है—[२०२]

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।
इतिपुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा ।।

---

२००. साधु श्री प्रज्ञानायजी, कल्याण (भक्तिअंक), जनवरी, ५८, पृ० ६४
२०१. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, कलश, प्र० १४, ३३०–३३१, ३४४
२०२. श्रीमद् भागवत, ७:५.२३–२४

आचार्य श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति के चार प्रकार बताये हैं—वैधी, रागानुगा, भावभक्ति और प्रेमाभक्ति।[२०३] उसी तरह भक्ति को सगुण और निर्गुण में भी विभाजित किया जाता है। वैधी भक्ति में जिस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से पूजन-अर्चन, गुरुपादाश्रय, साधुसेवा, भोगादि का त्याग, बहुग्रन्थकलाभ्यास, वैष्णवतिलकमुद्रादिघ-धारण, अर्चना, परिक्रमा, जप, गीत, संकीर्तन, नैवेद्यग्रहण, एकादशी आदि व्रत और जन्माष्टमी उत्सव प्रवृत्तिधारण का जो महत्त्व है उसी प्रकार सगुण भक्ति में भी। लेकिन निर्गुण-भक्ति परा भक्ति है और उसमें श्रवण, कीर्तन, ध्यान, धारणा, समाधि, प्रपत्ति, व्रत, नमस्कार, दान, पूजा आदि पराभक्ति के साधन मात्र हैं।[२०४] शंकराचार्य के स्थूला और सूक्ष्मा भेद, वैष्णव आचार्यों ने गौणी, वैधी, रागात्मिका रागानुगा, उत्तमा भक्ति, प्रेमाभक्ति, साधन भक्ति आदि भक्ति के प्रकार बताये हैं। किन्तु भागवत के "भक्त्या संजातया भक्त्या" वचनानुसार साध्यसाधन भेद से दो प्रकार हैं।[२०५] नवधा भक्ति प्रेमलक्षणा भक्ति को सिद्ध करनेवाली होने के कारण "साधनभक्ति" के अन्तर्गत है और प्रेमलक्षणा भक्ति को "साध्य भक्ति" कहते हैं। जैसे पतिव्रता नारी के लिए पति ही एक मात्र परमस्वार्थकेन्द्र है वैसे भक्त के लिए एक भगवान ही मात्र परमस्वार्थकेन्द्र हो—

पतिव्रता नारी ते पतिने पूजे, सेवे अनेक पेरे।
पोउ पर वचन सुणे जो बाकूं तो देहत्याग त्यहा करे ॥[२०६]

इसीलिए, भक्त भगवान को वेश्या की तरह बारबार नहीं बदलता—

"पतिव्रतापणे सेविए, न थइए वेश्या जेम।
एक मेली अनेक कीजे, तेनी थाय धणीवट केम ॥[२०७]

इस तरह भगवान ही साधनरूप और वही फलस्वरूप है और इसीलिए इस भक्ति को "ऐकान्तिकी" भी कहते हैं। गुणभेद से तामसी, राजसी और सात्त्विकी भक्ति ही पराभक्ति में परिणत हो जाती है। "दे० भागवत" में गुणश्रवण, नाम-कीर्तन, एकलीनता आदि प्रेमलक्षणा के लक्षण बताये है—

अधुना तु पराभक्तिं प्रोच्यमानं निबोध मे।
मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम् ॥

---

२०३. आचार्य श्रीरूप गोस्वामी, भक्ति रसामृत सिन्धु, पृ० ४।१
२०४. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, ७१, ५६–७०
२०५. श्री मद् भागवत, ११:३:३१
२०६. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० ६४, ७८१ चौ०
२०७. वही।

कल्याणगुणरत्ना नामकराया मयि स्थिरम् ।
चेतसो वर्त्तनं चैव तैलधारा सम ॥[२०८]

प्रेमलक्षणा भक्ति मे भक्त भगवान से अभिन्नत्व की स्थिति पर पहुंच जाता है।[२०९] प्रणामी सम्प्रदाय के अनुसार यही एक सर्वोत्तम भक्ति प्रकार है। आ० मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति की उत्पत्ति के पूर्व ११ भूमिकाओं को बताते हुए अंतिम भूमिका में पराभक्ति को ही माना है।[२१०] प्रेमभक्ति से आत्मा पवित्र हो जाय पीछे फिर ध्यान की भी जरूरत नहीं, क्योंकि उस दशा में पहुंचने पर आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है।[२११] प्रेमलक्षणाभक्ति ज्ञान-विज्ञानपूर्ण एव परम प्रेमरूपा है क्योंकि "मैं कौन हूं" इस प्रकार की जिज्ञासा का प्रश्न होते ही परात्मज्ञान की जिज्ञासा होती है और उसकी प्राप्ति के प्रेम का फव्वारा ही उड़ता है। इसीलिए प्राणनाथ ने कहा है—

पहेले आप पहेचानो रे साधो, पहेले आप पहेचानो ।
विना आप चिन्हे पारब्रह्मको, कौन कहे मैं जान्यो ॥[२१२]

× × ×

इसक लगाए पिम्रासो पूरा, खेले अबला होए अहिनिस ।[२१३]

× × ×

पुरप दूजा कोई काहू न कहावे, सबो भजिया कर भरतार ।[२१४]

× × ×

प्रेममे भीने रहिए, पीउसो आनन्द घन ।[२१५]

भावना से डूब-सा जाता है और प्रेम के कारण भक्त पलमात्र मे परमात्मा के पास पहुच जाता है—

पथ होंं कोटि कलप, प्रेम पहुचावे मिने पलक ।[२१६]

---

२०८. देवी भागवत ७.३७: ११–१२
२०९. वही, ७:३७:१४
२१० आ० मधुसूदन सरस्वती, भक्ति रसायन, प्रथम उल्लास, कारिका ३२–३४
२११ श्री भट्टाचार्यकृत, निगमार्थप्रदीप, पृ० १६
२१२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० २, चौ० १
२१३. वही, किरतन, प्र० ६, चौ० ७८
२१४. वही, किरतन, प्र० ५३, चौ० ५७६
२१५. वही, किरतन, प्र० ३५, चौ० ४३४
२१६. वही,

प्रियतम कृष्ण की प्राप्ति के लिए दुःख भी आवश्यक है—[२१७]

दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक ।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक ।।

शायद इसीलिए भक्त की प्रियतम के प्रेम मे कितनी मग्नता है—

रस मगन भई सो क्या गावे ।
बिचली बुध मन चित मनुआ, ताए सबद सीधा मुख क्यों आवे ।
बिचले नैन श्रवन मुखरसना, बिचले गुन पख इन्द्री अंग ।
बिचली भात गई गत प्रकृत, बिचल्यो सग भई और रग ।
बिचली दिसा अवस्था चारो बिचली सुध ना रही सरीर ।
बिचल्यो मोह अहकार मूल थें, नैनो नीद न आवे नीर ।
बिचल गई सब बार पारकी, और अंग न कछुए सान ।
सिखा रसमे यो भई महामत,
प्रेम मगन क्यों करसी गान ।।[२१८]

प० श्री मिश्रीलालजी शर्मा ने कहा है कि प्राणनाथ ने आत्मा और परमात्मा की अनन्त रसमयी नित्यलीलाओ के गूढ़तम रहस्य को स्पष्ट करते हुए, उन्हें सरल ढग से एवम् सुगमरूप मे प्राप्त करने के लिए सगुण और निर्गुण से पराभक्ति प्रेम-लक्षणा को ही परमसाधन बतलाया । क्योकि प्रेमलक्षणा भक्ति क्रियामात्र से साध्य नहीं होती; उसके लिए उसकी परम सिद्धि के लिए तो आत्मपरात्मज्ञान की नितान्त आवश्यकता है ।[२१९] डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ ने कहा है कि प्राणनाथ के हृदय मे कृष्णसाक्षात्कार के फलस्वरूप जो प्रेमसागर उमडा उसको आपने प्रेम, इश्क, शराब, तारतम ज्ञान, भक्ति इत्यादि नामो से पुकारा है और श्री श्यामाजू ठकुराइन रासेश्वरी श्री राधा पर आपका अनन्य प्रेम था । श्री कृष्ण की पराभक्ति करने का उपदेश दिया है ।[२२०] वस्तुतः श्याम-श्यामा—युगल स्वरूप पर ही प्राणनाथ का अनन्य प्रेम था--

वारी रे वारी मेरे प्यारे, वारी रे वारी ।
टूक टूक कर डारो या तन ऊपर कुंजविहारी ।

२१७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० १८, चौ० २०५
२१८. वही, किरतन, प्र० २६, चौ० २८१-२८४
२१९ प० श्री मिश्रीलाल शास्त्रीजी, कल्याण (भक्तिअंक), जनवरी, ५८, पृ० ५६०
२२०. डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य मे कृष्ण, पृ० ९८

वतन के अंकुर बिना, इत दुनि करे कई बल
मुक्त सुग इत होयसी, पर पावे ना धाम निश्चल ।।[२३९]

× × ×

जैसी करनी करे इत आइ, तैसी फल लइ पहुंके ताहीं।
स्वर्गनर्क इनही ते जावे, मुक्ति चार इतही ते पावे ।।
होय ज्ञान निश्चय जेही भावे, ते पद पर ताकु पहुंचावे ।।
संस्कार जाको जहाको थाय, ते पदको पहुचे ते जाय ।।[२४०]

सायुज्य मुक्ति ही प्राणनाथ का लक्ष्य-बिन्दु रहा है।

(४) गुरु महिमा और नीति-नियम

साधना के क्षेत्र मे भारतीय परम्परा ने गुरु को महत्त्वपूर्ण और आवश्यक समझा है। भक्ति के सोपान पर अग्रसर होने के लिए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। "गुरु" "शब्द का" "गु" अन्धकार का वाचक है और "रु" उसको दूर करने का—[२४१]

गु शब्दस्त्वन्धकारस्स्यद् शब्दस्तन्निरोधक:।
अन्धकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभीधीयते ।।

ध्यान, पूजा, मुक्ति, सेवा आदि उन्ही के प्रति होना चाहिए और उत्तम सिद्धिदाता है।[२४२] गूढ आध्यात्मिकज्ञान की प्राप्ति गुरु के बिना नही हो सकती। नानक ने कहा है—

गुरु बिन राह बतावै कौन, बोहिथ क्यो पहुंचे बिन पौन।[२४३]
प्राणनाथ ने भी गुरुप्रसाद से परब्रह्म की ज्योति प्राप्त की थी—[२४४]

देत देखाई बाहेरभीतर, ना भीतर भी नाही।
गुरु प्रसादे अतर पेख्या, सो सोभा बरनी न जाई ।।
सत्गुरु सोई मिले जब भावा, तब सिंध बिंद परचावे।
प्रगट प्रकास करे पारब्रह्मसो, तब बिंद अनेक उडावे ।।

२३९. वही,
२४०. नवरंग स्वामी, गुरुशिष्य सवाद,
२४१. कुलार्णव तन्त्र, प्रथम उल्लास, १७।१
२४२. वही, १२–१३–१४
२४३. नानक, प्राणसगली, १, पृ० ६
२४४. प्राणनाथ, कुलजमस्वरुप, किरतन, प्र० ३, ८–६

आत्मा-परमात्मा क्या है और आत्मा का असली स्थान कौन-सा है, कहा पर है आदि समस्याओं का समाधान कराने वाले सत् गुरु को ही पाना चाहिए—[२४५]

"सत् गुरु सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।
पार पुरुष जो परखावे, म्हामत तासो कीजे मिलाप।"

उनको गुरुकृपा पर संतोष है क्योंकि धामपरमधाम, आत्मा आदि का ज्ञान गुरु ने दिया था—

"गुरु प्रसादे नाटक पेख्या।"[२४६]

पूर्णब्रह्म, स्वलीलाद्वैत सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की मनसा, वाचा और कर्मणा सेवा करनेवाला, लोक-अलोक-परलोक से अतीत सत्य वस्तु को समझ सकनेवाला, परमात्मा मे आसक्ति रखने वाला; निर्गुण-सगुण, साकार-निराकार, शून्य-अशून्य, व्यक्त-अव्यक्त के भेदो को सही रूप मे जाननेवाला, ईश्वर की एकता और अनेकता, व्यापकता और व्याप्यता, भेद-अभेद, उत्पत्ति लय आदि का रखनेवाला, वेद-पुराण, श्रुति- स्मृति आदि शास्त्रो का ज्ञान रखने वाला, कृष्णलीला के रहस्यो को समझानेवाला, सर्वधर्म के समभाव रखनेवाला, गुरु ही सद्गुरु कहा जा सकता है। इसीलिए प्राणनाथ ने कहा है—[२४७]

सत्गुरु साधो वाको कहिए, जो अगमकी देवे गम।
हदबेहद सब समझावे, भामे मन को भरम॥
महामत कहे गुरु सोई कीजे जो अलख की देवे लख।
इन उलटीसे उलटाएके, पिया प्रेमे करे सनमुख॥

दीपक से गुरु के लिए सूरदास ने कुछ वैसा ही कहा है—
गुरु बिनु ऐसी कौन करो।
माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै।
भवसागर ते बूडन राखे दीपक हाथ धरै।
सूरस्याम गुरु ऐसो समरथ, छिनमें लै उधरै।[२४८]

अष्टविकार, दुर्गुण, आदि पर विजय होने वाला और सब के प्रति प्रेम व समभाव रखनेवाला गुरु ही उत्तम है। वैसा अगर गुरु होगा तो शिष्य की शकाएँ दूर होंगी—

---

२४५. वही, पृ० २१, चौ० २४७
२४६. वही, पृ० ७, चौ० १७
२४७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरंतन, पृ० ५, चौ० १२–१३
२४८. सूरदास, सूरसागर, पृ० ७१

पढें गुनें विकार न छूटे, भ्राम न भ्रंमर्ये जाए।
आप वतन चीन्हे विना, तो लोजल विन गोते खाए ।।
ए ससे सब समभाएवे, कोई भ्रम करे उजास।
सो गुरु मेरा मैं सेवो ताए, सुध चित होए दास।।[२४९]

प्राणनाथ ने जपमन्त्र आदि के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं बतायी, लेकिन आज प्रणामी सम्प्रदाय के नीतिनियमों में ऐसी कई बातों का समावेश हो गया है। प्राणनाथ ने तो इन सनातन तत्वों का ही निर्देश किया है--

"सास्यात तणी सेवा कर रे, ओलखीने अंग।"[२५०]

× × ×

"प्रेम सेवा एम राखो मन"[२५१]

लेकिन अब माला, मन्त्र, पूजा, आरति आदि के भी नियम बनाये गये हैं। सुबह-शाम की पूजाविधि, आरतीविधि, छापातिलक, जप, भोग, पारायण आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। गले में कंठी लगाने का भी नियम है। पन्ना, जामनगर आदि स्थानों की यात्रा का निर्देश किया गया है। हर माह की अष्टमी और चौदहवी के दिन उपवास रखा जाता है। फिर भी कई नैतिकतापरक नियम भी रखे गये हैं। मन, वाणी, कर्म से सच्चाई को उतारना, विकारी चीजों से दूर रहना, व्यसनों का निषेद किया गया है, निन्दा चोरी आदि से दूर रहना, अहिंसा, दान-पुण्य, बाह्य एवम् आन्तरिक शुचिता, ऐक्य, प्रामाणिकता का सेवन करना, सत्सग करना, ब्रह्मचर्य पालना, किए हुए पापकर्म के लिए प्रायश्चित करना आदि नियम आवश्यक माने गये हैं।[२५२] प्राणनाथ ने आन्तरिक शुद्धि, शुभकर्म की सुवास के सदर्भ में कहा है—

साथजी साफ हुये विना, अक्षरधर्म क्यों पहोचत।
चेन शको सो चेनियो, पुकार कहे महामत।।[२५३]

× × ×

जो लो जाहिरि अंग तेरे नाम रे, तो लो आगे ना रहने अंग।[२५४]

---

२४९. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, पृ० २९, चौ० ३२६–३२७
२५०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, रास, पृ० ४, चौ० १
२५१. वही, पृ० ४, चौ० २०
२५२. रणछोड़दास वीरजी, परमपद मार्गदर्शक, पृ० ४५–५५
२५३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप।
२५४. वही।

अशुभ कर्म जेम लिये निंदा, शुभ कर्म तेम नामना लइ जाये ।[२५५]

प्राणनाथ ने अनेक आचार कर्मों से बढकर प्रेम और भक्ति को आवश्यक समझा है[२५६]—

ए सुध कैसे होवे ही, तुम देखो याको विध ।
अनेक आचार कर थके, पर हुआ न कोई सुध ।।
निसदिन ग्रहिए प्रेम सो, जुगलसरूप के चरन ।
निरमल होना याहीसो, और धाम बरनन ।।
इस विध नरक जो छोडिए, और उपाए कोई नाईं ।
भजन बिना सब नरक है, पच पच मरिए माहे ।।

सच्चे वैष्णव के लक्षण उन्होंने इस प्रकार बताये है[२५७]—

हो भाई मेरे वैष्णव कहिए वाको, निरमल जाकी आतम ।
नीच करमके निकट न जावे, जाए पेहेचान भई पारब्रह्म ।।
इसक लगाए पिआसो पूरा, खेले अवला होए अहिनिस ।
ओ मंधे अगवानी भरमये भूले, पर या ठोर प्रेमको रस ।।
जब आतम दृष्टि जुडी पर आतम, तब भयो आतम निवेद ।
या विध लोक लखे कोई नही, कोई भागवती जाने ए भेद ।।
जब वैष्णव संग किएरी प्रग्रस, और कैसी अप्रसाई ।
परस भयो जाको पुरुषोत्तमसो, सो बाहेर न देवे देखाई ।।
अहिनिस आवेस हुम्रका अंगमे, जैसे मद चढ्यो महामत ।
वाको आसा और न उपजे त्रिस्ना, वह एकमों एक चित ।।
उतपन प्रेम पारब्रह्मसग, वाको सुपन हो गयो मसार ।
प्रेम बिना सुख पारको नाही, जो तुम अनेक करो आचार ।।
साचा रे साहेब साच सो पाइए, साच को साच है प्यारा ।
या वैष्णव की गत देखो रे वैष्णवो, महामत इनसे भी न्यारा ।।

---

२५५ वही ।

२५६ वही, किरतन, प्र० १०६, चौ० १५४८-५१

२५७. वही, प्र० ६, चौ० ७७-८४
(इसी भजन की तुलना नरसिंह मेहता के "वैष्णव जन तो तेने रे कहिए" भजन, जो गांधीजी का प्रिय भजन था साथ की जा सकती है ।)

उन्होने इस तथ्य को बार-बार दुहराया है कि वेदो और कुरान मे एक ही ईश्वर का गुणानुवाद है । लेकिन दोनो ही धर्मो में आ गई बुराइयो और अंधविश्वासों की निन्दा करने में भी वे नही चूके । मौलवी और उलेमा जो कुरान की व्याख्या करते थे उनकी आलोचना करते हुए प्राणनाथ ने कहा है—

पढ़े मुल्ला आगे हुए, सो तो मब पाए गुमान ।
लोगो को वता वही, कहे हम पड़ कुरान ॥
राह वतावें दुनीको, कहे ए नबी कहेल ॥
लिख्या और कलेवमे, ए वेले और पैल ॥[२५८]

उनको फटकारते हुए वे कहते हैं[२५९]—

कुफ्र न काढ़ै आपनो, और देखे सब कुफ्रान ।
अपना औगन न देखहि, कहे हम मुसलमान ॥

× × ×

ओ राजी एक भेषमे, ताए भार गुडावे दाव ।
ओ रोवे सिर पीट ही, ऐ कहे हमे होन सबाव ॥

इसी प्रकार ब्राह्मण की भर्त्सना करते हुए उन्होने व्यग किया है[२६०]—

दोष विप्रोने काई मा देजो, ए कलजुगना एंधाण ।
आगम भाख्यू मर्ले छे सर्वे, बैराट वाणी रे प्रमाण ॥
असुर थकी समपाषा रे भमीषणे, आगल श्री रघुनाथ ।
तमसू कपट करू कुली माहे, ब्राह्मण थाऊं आप ॥

वे पूछते हैं कि अछूत कौन है ? वह शूद्र जिस का हृदय स्वच्छ है अथवा वह स्वार्थी ब्राह्मण जो सासारिक भोगो मे लिप्त है ?[२६१]

इस प्रकार उन्होने स्पृश-अस्पृश्य, निर्मलता, सत्य आदि के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। सिद्धान्त एवम् साधनापक्ष की दृष्टि से प्राणनाथ की दार्शनिक धारा वैष्णवमत के ही निकट है ।

हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी विद्वानो ने प्राणनाथ की दार्शनिकता को देखते हुए निर्गुण भक्तों की कोटि मे रखा है । लेकिन प्राणनाथ ने 'निर्गुण-निराकार"

---

२५८ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, सनध, प्र० ३६, चौ० ४, ६
२५९. वही, प्र० ३६ चौ० ८-१७
२६०. वही, किरतन, प्र० १२५ चौ० ३८-३६
२६१. वही, कलस, प्र० १५, चौ० १५-२०

शब्दों का उपयोग करके सीधे ढंग से उनके प्रति तिरस्कार बताया है। वस्तुतः उन्होंने ब्रह्म को सगुण, निर्गुण अथवा सत्-असत्, स्थूल-सूक्ष्म सभी प्राकृत धर्मों से पर माना है और उसे सच्चिदानन्दस्वरूप, अनन्त, अखण्ड स्वलीलाद्वैत प्रतिपादित किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि कृष्णलीला दो प्रकार की है–प्रकटलीला और अप्रकटलीला। मध्यकाल के भक्तकवियों ने प्रकटलीला का ही गान किया है, परन्तु अप्रकट नित्यलीला को वे भूले कभी नहीं।[२६२] स्पष्ट है कि प्रणामी सम्प्रदाय ने उसी नित्यलीला को ही प्रमुख स्थान दिया है और ब्रह्म को क्षराक्षर से पर अक्षरातीत माना है। साथ ही अन्य वैष्णव सम्प्रदायों ने छूआछूत आदि तथ्यों के प्रति जो उदार दृष्टि नहीं रखी, अतः उदारता रखने वाला यह सम्प्रदाय निर्गुण सम्प्रदाय समझा जाय यह स्वाभाविक है। सम्प्रदाय का आधुनिक स्वरूप सगुणपरक ही है।[२६३] सिद्धान्त की दृष्टि से मानसी पूजा ही स्वीकार्य है। अतः प्राणनाथ की बानियों के संग्रह की पूजा की जाती है। मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया है। लेकिन यह ग्रन्थ-पूजा-प्रतीकपूजा-मूर्तिपूजा के स्वरूप की ही भाज दिखाई पड़ती है। इतना स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सर्वधर्म समन्वयवादिता, ऐकेश्वरवाद और मूर्ति-पूजा का विरोध तत्कालीन परिस्थिति के लिए हिन्दूधर्म की दृष्टि से आवश्यक तत्त्व थे।

प्राणनाथ कबीर के माध्यम से तन्त्रमत से भी प्रभावित रहे। उनकी "धाम" की कल्पना पुराण के अनुकूल है, लेकिन संभव है कि कबीर की अभीष्ट सिद्धावस्था ही इस रूप में स्थापित हुई हो। डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के अनुसार, इस युग में पौराणिकता से प्रभावित होकर कबीर की अभीष्ट सिद्धावस्था, परमपद एक मानसिक स्थिति से अलौकिक प्रदेश के रूप में परिणत हो गई। सन्त प्राणनाथ ने इसे "धाम" की संज्ञा दी जो किसी पावन एवम् पवित्र स्थान को लक्ष्य करता था और वहाँ तक पहुँचने वाले को "धामी" नाम से अभिहित किया है।[२६४] आ० परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक कहा है[२६५] कि सूफी पीरों के वातावरण में आने के कारण प्राणनाथ की विचारधारा में इस्लामी धारणाओं का प्रवेश हुआ था।

डा० श्यामनारायण पाण्डेय और प्रो० शरण बिहारी गोस्वामी ने प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति को सखी भाव की पद्धति के रूप में स्वीकार

---

२६२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० १४६

२६३. रणछोडदास वीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ६२५

२६४. डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्तसाहित्य, पृ० ७६

२६५ आ० परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएं, पृ० ३०

किया है।[२६६] लेकिन दुर्गाशंकर शास्त्री ने[२६७] प्रणामी सम्प्रदाय को सिर्फ साधना पक्ष की दृष्टि से ही वैष्णवधर्म के अन्तर्गत लेने का स्वीकार किया है, अन्यथा तात्विक दृष्टि से उसे कोई विचित्र सम्प्रदाय ही समझा है। वस्तुतः यहाँ कहना उचित होगा कि, इस सम्प्रदाय में सूक्ष्म दशधा कृष्णभक्ति को आधार मानकर सर्वधर्मसमन्वय का प्रमाण किया गया है। इतना अवश्य हुआ है कि समन्वयवादी भावना के फलस्वरूप अन्य सगुणवादी सम्प्रदायों के समान इसमें संकीर्णता के दर्शन नहीं होते।

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने प्राणनाथ को विशिष्टाद्वैतवादी ठहराया है।[२६८] इसी आधार पर डा० रामकुमार गुप्त ने उस तथ्य को स्वीकार किया है।[२६९] लेकिन इसी बात को लेकर विशिष्टाद्वैतवादी ठहराना अनुचित है। अंश या अणु के रूप में जीव का होना ये बात सबसे पहले विशिष्टाद्वैत ने नहीं दी, लेकिन मुण्डक[२७०] और श्वेताश्वर उपनिषद में ही सर्वप्रथम मिलती है—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेय स चानन्त्याय कल्पते ॥[२७१]

इसी प्रकार बादरायण के वेदान्त सूत्र में[२७२] और श्रीमद्भागवतगीता में "जीव मेरा ही अंश है और मैं ही एक अंश से इस सारे जगत को व्याप्त कर रहा हूँ" कहा गया है—

(अ) ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन।[२७३]
(ब) विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।[२७४]

आगे कहा जा चुका है कि प्राणनाथ पर भागवत और गीता का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। अतः यह स्पष्ट है कि जीवसम्बन्धी यह तत्व-दर्शन गीता में से ही प्राप्त हुआ है, रामानुज के विशिष्टाद्वैत के प्रभाव से नहीं। वस्तुतः प्राणनाथ ने

---

२६६ (अ) श्यामनारायण पाण्डेय, हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना, पृ० ३३०
(ब) सं० रमाकान्त दीक्षित, मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १६३
२६७. दुर्गाशंकर शास्त्री, वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६१२-६१३
२६८. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १९९-२००
२६९. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्यको गुजरातके संतकवियों की देन पृ० २३३
२७०. मुण्डक उपनिषद, ३।१।९
२७१. श्वेताश्वतर उपनिषद, ५।९
२७२ बादरायण वेदान्तसूत्र, २-३-४३, ४-४-१९
२७३. श्रीमद्भगवतगीता, १५-७
२७४. वही, १०-४२

स्वलीलाद्वैत का ही अन्वेषण किया है। एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा विरोध आदि बातें संभवत कुरान, तौरेत और जबूर से प्रभावस्वरूप ही हो। विशेषत उन पर सूफीमत का ही प्रभाव है। कट्टर इस्लाम सूफियो का विरोध करता है और इसीलिए उससे प्रभावित प्राणनाथ का कट्टर मुसलमानी औरंगजेब पर प्रभाव नहीं पड़ा। जिस प्रकार प्राणनाथ ने जीव को ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरीसृष्टि और जीवसृष्टि में विभाजित किया है, ठीक उसी प्रकार सूफीमत मे जीव के तीन भेद हैं इन्सान-उल-कामिल, इन्सान और इन्सान-उल-हैवान।[२७४] इश्क, मारफिन, हकीकत आदि सूफियों की मंजिलों का प्राणनाथ ने भी स्वीकार किया है। जैनधर्म के अहिंसा तत्त्व, बौद्ध धर्म के निस्सारत्व का भाव, शांकर के मिथ्यात्व और वैष्णवाचार्यों के लीलावर्णनों ने अवश्य ही उनको प्रभावित किया हो ऐसा लगता है।

(आ) प्राणनाथ की रचनाओं का साहित्यक मूल्यांकन

चाहे किसी भी भाषा मे हो, लेकिन भक्ति-साहित्य मानवमन की उस असीम शक्ति के प्रति जो भावना है उसी की शब्दस्थ अभिव्यक्ति है। ऐसी अभिव्यक्ति की परख करने के मानदण्ड समय-समय पर कुछ नया मोड लेते हैं। हिन्दी-साहित्य, का मध्यकाल भक्तो और सन्तो का ही बना रहा और उस युग ने उन लोगों की बानियों की सच्चाई और उपदेशपरकता को ही श्रेष्ठता प्रदान की। पं० रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन ही सभवतः इन सन्तो और भक्तों की बानियो को लागू होता है कि कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धो के संकुचित मण्डल से उठाकर लोकसामान्य भावभूमि पर ले जाती है ... इस भूमि पर पहुँचते हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नही रहता है। वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किये रहता है। ' इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारो का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।[२७६] काव्य प्रकाशकार ने भले ही काव्य के कई प्रयोजन बताये हो, लेकिन इन सन्तो और भक्तों ने प्रभुप्रीति और मानवकल्याण को ही सामने रखते हुए बानी की रचना की है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यही कहा है कि जो मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षित से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, वह साहित्य नही है। हमारे समस्त प्रयत्नो का लक्ष्य एक मात्र वही मनुष्य है। उसको वर्तमान दुर्गति से बचा कर मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण की ओर उन्मुख करना ही हमारा लक्ष्य है, यही सत्य

---

२७५. Dr Bhagwan Das, A Study in the Theory of Avataras, p 79 (Foot note)

२७६. पं० रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग १, पृ० १६२

है, यही धर्म है, सत्य वह नहीं है जो मुख से बोलते हैं, सत्य वह है जो मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण के लिए किया जाता है।[२३७] साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते समय हम मात्र शब्द और अर्थ के समुचित सम्पादन पर ही विचार नहीं करते, अपितु उसके साथ मानववृत्ति की बात पहले सोचते हैं।[२३८] डॉ० भगीरथ मिश्र ने काव्यशास्त्र के अन्तर्गत सत्य, भावना, निर्मल मति, सौन्दर्य, उर्वर कल्पना, भावुक हृदय और जीवानुभव की अभिव्यक्ति की साहित्य उत्थान के प्रेरक तत्वों के रूप में समीक्षा की है।[२३९] इतना स्पष्ट है कि काव्य के लिए भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही अपेक्षित हैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति के आधार पर स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन किया जाएगा।

(क) भावपक्ष

वर्ण्यविषय को ध्यान में रखते हुए कविता का विभाजन किया जाता है। कवि जब अपनी अनुभूति ही को व्यक्त करता है, अर्थात् अपने द्वारा अनुभूत भावों का वह वैयक्तिकतावश होकर अभिव्यक्त करता है तब उस काव्य को "स्वानुभूति निरूपक" काव्य कहा जाएगा और जब वह अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को छोड़कर इतर कल्पित या यथार्थ वस्तुओं को, मनोवेगों को अभिव्यक्त करता है तब उसे बाह्यार्थनिरूपक काव्य कहा जायगा। पहली दशा में अपने ही हृदय की आशा-निराशा, खुशी-नाराजगी आदि में कवि पाठकों को इस प्रकार सम्मिलित करता है कि पाठक अपना ही अनुभव महसूस करता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में आश्रय और कभी-कभी आलम्बन का स्थान कवि खुद ले लेता है और दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति में आश्रय और आलम्बन दोनों ही उससे अलग रहते हैं। प्राणनाथ की रचनाओं को इन दो अभिव्यक्ति प्रकारों में विभाजित करके देखना उचित होगा।

प्राणनाथ की स्वानुभूति निरूपक रचनाओं में विविध इष्टवन्दनाओं का वर्णन जिनमें वे अपने आपको एक भक्त या दर्शक के रूप में चित्रित करते हैं तथा आत्म-निवेदन, दैन्य, सख्य, दास्य, कान्तादि भावों की अभिव्यक्ति की है, वही आएँगी। स्वानुभूति निरूपक काव्य में अगर कवि अपने "अहं" की सीमाओं को तोड़कर प्रस्तुत हो सकता है तब सफलता मिलती है और काव्य में मार्मिकता आ सकती है। एकमात्र अहं की अभिव्यक्ति उस काव्य को प्रभावहीन बना देती है। जहाँ कहीं प्राणनाथ की रचनाओं में मार्मिकता आ पायी है उसके पीछे भी यही कारण है।

---

२३७. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ० १६६
२३८. डॉ० गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ० २-३
२३९. डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ० ३३२-३४२

इसी अध्याय मे अन्य स्थान पर लीलारहस्य की चर्चान्तर्गत कृष्णस्वरूप भेद और कृष्णलीला भेद का निर्देश किया जा चुका है। प्राणनाथ ने रासलीला के चित्रण मे अपने आपको भी शामिल किया है —[२८०]

दो भुजा सरूप जो स्याम,
आतम अक्षर जोस धनी धाम।
ए मेन देख्या सैया सब,
हम खेल धनी भेले आनन्द घन ॥
बालचरित्र लीला जोवन,
कै विध सनेह किए सैयन।
कै लिए विलास जो सुख,
सो केते कहूं या मुख ॥

श्रीमद्भागवत पुराण मे रासपचाध्यायी अन्तर्गत जैसा विवरणात्मक वर्णन है वैसा ही रासवर्णन प्राणनाथ ने भी किया है। लेकिन प्राणनाथ का यह अखण्ड महारास है, और वह आख्यानात्मक शैली में मिलता है। रासलीला का यही रहस्य है कि इस सृष्टि मे प्राकृतलीला आविर्भूत तिरोभूत होती रहती है। नित्यविहारस्थ आत्माओ को कभी क्षरलीला देखने की इच्छा जागृत हो तब वे अक्षरब्रह्म मे प्रवेश करके प्राकृतलीला का आस्वाद ले और अक्षरब्रह्म को नित्यानन्दविहार का आस्वाद करा दे। रसस्वरूप परब्रह्म की संयोग-वियोगात्मक द्विवालीला है।[२८१] अक्षरब्रह्म को पूर्णब्रह्म की ब्रह्मानन्द लीला देखने की इच्छा हुई और सखियो ने बाललीला देखने की इच्छा व्यक्त की।[२८२] श्रीराजजी (कृष्ण) ने वह दुःखरूपी खेल दिखाने के लिए तीन बार मना किया लेकिन सखियों ने वही मांगा।[२८३] इसी हेतु अर ब्रह्माण्ड की रचना हुई और व्रज मे सखियां गोपि का स्वरूप उपस्थित हुई—[२८४]

ज्यों निंदमे देखिये सुपन, यों उपजे हम व्रज वधू जन।
उपजती ही मन आशा घनी, हम कब मिलसी अपना धनी ॥

शरदपूर्णिमा के दिन कृष्ण ने मुरली बजायी और गोपिकाएँ मुग्ध होकर उनसे रास खेलने जा मिलीं। सखियो की इच्छा पूर्ण करने के लिए बनाया हुआ व्रजमण्डल की भूमि निराली ही थी।[२८५]

---

२८०. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, प्रकाश प्र० ३७, चौ० २५–२६
२८१. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी महाराज, श्री प्राणनाथ संदेश (रासक-प्राक्कथन), पृ० ५
२८२. प्राणनाथ, कुलजम शरीफ, प्रकाश, प्र० ३७, चौ० १२
२८३. वही, चौ० १४
२८४. वही, चौ० २०
२८५. वही, प्र० ३१, चौ० ११३

यह वन सुन्दर नौतम, नौतम वाधो वाय ।
जल जमुना नौतम, लहेरा लेवे वनराय ॥

मुरली की तान सुनकर गोपिकाएँ अपना संसार भी भूल गयी और राधिका भी तत्काल कृष्ण के पास जाने के लिए तैयार हो गयी—[२८६]

जोगमायानो देहधरीने श्री श्यामाजी थयां रे तैयार ।
तत्क्षण तीहां तेणे ठामे, मारे साथे कीधो शणगार ॥

कृष्ण का सौंदर्य अवर्णनीय है—[२८७]

शोभा ते माहारा श्यामतणी, मगी केणी पेरें वर्णवु एह ।
शब्दातीत महारा वालाजीना शोभा, माहारो जिभ्या साणे देह ॥

फिर भी उनसे श्रीराजजी (कृष्ण) का शृंगारवर्णन किये बिना रहा नहीं जाता । कृष्ण की कोमल अंगुलियाँ, हीरे जैसे नाखून, चरणतल की पद्मरेखा, हाथ में लगाए गये कंकण, घुंघरू, शरीर पर माणिक-मोती आदि के अलंकार, पीतावस्त्र, गले में रत्नहीरासुवर्ण का हार, हाथों में विभिन्न अलंकार, बाजूबंद आदि को देखते हुए आँखों को तृप्ति नहीं होती—[२८८]

"निरखी निरखी नेत्र ठरे, पण तेमे न पामिए अन्त ।"

कृष्ण का मुखसौंदर्य—गाल, होठों का रंग, अनारकली से दांत नुकीली तेजभरी आँखें, मीठी पलक, भृकुटी की शोभा, भाल पर तिलकरेखा, मस्तक पर का सुहावना मुकुट, मुँह में पान आदि को देखकर प्राणनाथ के दिल में कामभाव जागृत होता है—

"सज्ज थया शणगार करीने, राम रमवानी मन माहे ।
साथ सकल वालाजी पासे आव्यो, इन्द्रावती लागे पाय ॥[२८९]

कृष्ण के साथ ठकुराणीजी (राधा) का सौंदर्यवर्णन भी किया है । उनकी चरणअंगुलियाँ, और उस पर हीरा, माणिक और मोती के अलंकार, हाथों में मधुर ध्वनि पैदा करने वाले कंगन, पाँव में घुंघरू, सुन्दर वस्त्राभूषण, नाक-कानों पर रत्न के अलंकार आदि हैं । सुन्दर शरीर पर इन आभूषणों के कारण सौंदर्य और भी बढ़ गया, अतः वह सौंदर्य भी अवर्णनीय है—

"सुन्दर सरूपने जोई जोई, मारो जीव थाय निराल"[२९०]

---

२८६. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० ७, चौ० १
२८७. वही, प्र० ८, चौ० २
२८८. वही, प्र० ८, चौ० २०
२८९. वही, प्र० ८, चौ० ४६
२९०. वही, प्र० ९, चौ० ३०

गोपिकाएँ भी सजधज के आयी हुई थी। ये गोपिकाएँ तामसी, राजसी और सात्वसी स्वभाववाली थी। तामसी स्वभाव की गोपिकाएँ मुरलीतान, सुनते ही दौडीं, शृंगार करती हुई राजसी स्वभाव की गोपिकाएँ अपने आभूषण उलट पुलट स्थानो पर दिये और सात्वसी को सास-ननन्द-देवर-पति आदि परिवार वाले बाधा रूप लगे और सोचती है—[२६१]

"ए का थाय आडा रे दुरिजन।
ए शु आले छे वर नही ऐनो वाल्नेयो,
तो जाना वारे रे वन।।"

कृष्ण ने जब उनके प्रेम की कसौटी लेना शुरू किया तब तामसी प्रकृति वाली सखिया मुंह फट जवाब देती है, राजसी तडप रही है लेकिन सात्वसी सखियाँ कृष्ण के घर वापस लौट जाने का उपदेश सुनकर बेहोश हो जाती है। लेकिन गोपिकाएँ स्पष्ट रूप से बता देती है कि जैसे मछली जल बिना नही रह सकती, वैसे हम भी आपके बिना नही रह सकती।[२६२] अन्ततः कृष्ण को यही कहना पडा कि चलो वृन्दावन मे हम रास रचायें—[२६३]

"सखी वृन्दावन देखाडियेजी, चालो रग भर रमिये रासजी।
विविध परनी रामतोजी, आपण करशूं माहोमाहें हास रे।।"

सभवत डा० श्याम सुन्दर शुक्ल ने प्राणनाथ के इस रास वर्णन मे चित्रित नायक-नायिका राधा-कृष्ण के सौन्दर्य को देखते हुए उनकी भक्ति को रूपासक्ति स्वरूप बताया है।[२६४] लेकिन कृष्णलीला से अभिभूत भक्तो ने कृष्ण काव्य मे वैसा चित्रण किया ही है, इस परम्परा से प्राणनाथ अपने आपको दूर नही रख सके। उसी तरह उन्होने वृन्दावन वर्णन भी किया है। इस वृन्दावन वर्णन पर से प्राणनाथ के वनस्पति शास्त्र का ज्ञान स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। विभिन्न प्रकार के पेड-पौधो से यह वृन्दावन आकर्षक बन पडा है। अतः इन्द्रवाती सखी (प्राणनाथ) रासखेल के लिए बडी उत्सुक है—

"छूटक पडने घाटी छाया, रमवाना ठाम अति सारजी।
इन्द्रावती बाई अति उछरगे, आयत करे अपारजी।।"[२६५]

---

२६१ प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० ५, चौ० २३
२६२. वही, प्र० ८, चौ० ४५
२६३. वही, प्र० ८, चौ० ५७
२६४. डा० श्याम सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति पृ० २३७
२६५. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० १०, चौ० ३४

सखियाँ कृष्ण के साथ जिस प्रकार रास खेलना आदि बातों की चर्चा करती है और इन्द्रावती कृष्ण को अपने गला लेने की इच्छा व्यक्त करती है कि तुरन्त कृष्ण ने आकर उनकी बाँहें पकड़ली।[२९६] रास शुरू हुआ और सखियों की लज्जा गायब हो गयी थी। रास का रंग बढ़ता गया वैसे सखियों की खुशी भी बढ़ती गयी।[२९७] इस प्रकार सखियों की इच्छानुसार इनकी (तालमें कूदना-उछलना) आँख-मिचौनी, नृत्य आदि रासके (रासखेल) हुई। आँख-मिचौनी के वक्त सखियाँ बहुत सावधान थी, क्योंकि अगर उनके कृष्ण को ही प्रारम्भ में छिप जाने का कहा जाए तो वह तो बड़ा धोखेबाज है—[२९८]

साथ सहू कहे वालो दाव देखे, पहेलो ने पिउजीनो वारो रे।
जो पहेला दाव आपणु देऊ, सो ए सुभाव नहीं धुतारो रे॥

लेकिन जब कृष्ण ने नृत्य खेलना शुरू किया तब वृन्दावन के पशु पक्षी और पेड़–पौधों ने भी नाचना शुरू कर दिया था। कृष्ण के साथ हाथ मिलाकर ताली बजाना और रास खेलने में सब सखियों में झगड़ा हुआ और कृष्ण अपने कई देह धारण कर सखियों के साथ खेलते हैं[२९९] लेकिन इसी रासखेल में से कृष्ण जब अन्तर्ध्यान हो जाते हैं तब सब सखियाँ उदास और बावरी हो जाती हैं। उस कृष्ण बिना उनका शरीर ही अचेत हो गया—

काया केम चाले तेहरे, काजडू ने काप्यू जेहरे।
उभी केम रहेशे देहरे, बाध्या जे मूल स्नेह रे॥
हाय हाय रे दैव ने शु कयू, केम रहे रे कायामा प्राण।
जीवनजी मूकी गया रे, नव कीधू ते अमने जाण रे॥[३००]

सारे वृन्दावन में कृष्ण के नहीं मिलने पर सखियों में से राधा कृष्ण बनी और कोई नंद जसोदा आदि। लेकिन जब वहीं से कृष्ण मुरली की आवाज सुनाई

---

२९६ एवी वात समालता वालाजीए मारे, आवीने ग्रही बाँहे,
कहो सखी पहेली रामत केही कीजे, जे होय तमारा चित माहे।
—वही, प्र० ११, चौ० ९

२९७ वही, प्र० १३, चौ० १

२९८. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० १५, चौ० ३

२९९. कहे इन्द्रावती आ रामतडी, मारा वालाजी थई अति सारी।
सघली सगे रमिया रगे, एक पिउ एक नारी॥ —वही, प्र० २१, चौ० ८

३००. वही, प्र० ३२ चौ० १ और १५

पडी तब सब सखिया उसी ओर दौड़ी और कृष्ण को जकड़ लिया। सबके कारण कृष्ण ने नये देह धारण किये।[301] वियोग के बाद हुए संयोग में सखियों से रहा नहीं जाता और वे आलिंगन करती है, चुंबन करती है।[302] अब सखियां कृष्ण के हाथ को छोडती नही और इसी कारण इन्द्रावती (प्राणनाथ) और केसरबाई सखी के बीच झगडा हो गया। लेकिन कृष्ण ने कई स्वरूप धारण करके सब सखियो को संतोष दिया।[303] रास खेल फिर से शुरू हुआ और शरदपूर्णिमा की सारी रात ऐसे ही गुजर गयी। प्राणनाथ के लिए उस रात का आनन्द अवर्णनीय है—

अनेक विलास कीधा ए वनमा, भली सहू एकान्त रे।

ए मुखनी वातो शू कहू, काई रमिया अनेक भात रे।।[304]

गोपिकाओ को प्रसन्न होकर कृष्ण ने इतना आश्वासन अवश्य दिया कि मै तुम लोगो से अलग नही होने वाला हूँ, क्योकि आत्मा से हम एक ही है (हमारी एक ही आत्मा है)।[305] गोपिकाओ के इस भावपूर्ण चित्रण के सदर्भ मे डा० सावित्री सिन्हा कहती है कि रास के समय हृदय मे आवेश का सागर लिए हुए, मिलन और लय की प्रतीक्षा मे आतुर, विह्वल गोपिकाओ मे मानो गति ही गति है, कही विराम नही। जीवन की प्रत्येक गति मे अपने को डुबाये हुए नवल गोपिकाए, शृगारो से सज्जित होकर धीरे धीरे विनोद और हँसीखेल मे रत हो जाती है, इनके प्रारम्भ मे जो लज्जा उनके पथ मे बाधक बन रही थी, उसका रग लुप्त हो जाता है। यह कल्पना और सजीवता किसी भी प्रकार उपेक्षणीय नही है।[306] वस्तुतः रासवर्णन गुजराती साहित्य की देन है और उस साहित्य की दृष्टि से प्राणनाथ नरसिंह मेहता व प्रेमानंद की तुलना मे अवश्य ही पीछे है।

प्राणनाथ के कृष्ण रसस्वरूप है और कृष्ण का रसात्मक रूप ही सम्प्रदाय मे उपास्य है। लेकिन योगमाया द्वारा प्रकटलीला को रास माना गया है और परमधाम की लीला नित्यलीला मानी गयी है। इस नित्य वृन्दावन परमधाम मे युगल बिहारी राधाकृष्ण नित्यविहार करते हैं—

कई चाकिले चित्रकारी ता पर बैठे जुगलबिहारी।[307]

---

३०१. वही, प्र० ३३, चौ० ३१–३२
३०२. वही, प्र० ३४, चौ० ३
३०३ वही, प्र० ३६, चौ० १२
३०४. वही, प्र० ४१, चौ० ७
३०५. वही, प्र० ४७, चौ० ८
३०६. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां पृ० ६७
३०७. प्राणनाथ,

श्रीराज (कृष्ण) और श्यामाजी (राधा) की सेवा करके सखियाँ अपने आप को भाग्यवान और सुहागिन समझती हैं। प्राणनाथ ने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में एक तारतम्य रखा है और वृन्दावन लीला को सर्वोपरि स्थान दिया है।

रासलीला के संयोगवर्णन में भी वियोगवर्णन में प्राणनाथ का भावावेश सौन्दर्य बन पड़ा है। षड्ऋतु और बारहमास वर्णित होने पर भी कृष्णमिलन न होने पर सखियाँ व्याकुल हो गयी हैं। आषाढ़ का महिना गुजर गया और वर्षाऋतु प्रारम्भ हुई। इस ऋतु में उनकी आशा थी कि वे प्रियतम को पाकर आनन्द और सुख प्राप्त करेंगी।[308] परन्तु ये गोपिकाएँ सूखती जा रही हैं—

पवने वायु वाय, उड़ाने वन वेलड़ी रे।
हूँ तो वालाजी विनारे विरहण, सूक ए सूकनी रे।[309]

प्रियतम नहीं होने के कारण, शरद्ऋतु का सुहाना मौसम आत्मा को शान्ति देने के बजाय और विह्वल बनाता है। अतः इन्द्रावती सखी कहती है कि मेरे जन्म के जीवन साथी प्रियतम, सुहावनी भादोंमास की शुक्लपक्ष की राधाष्टमी की वही रात पहले मनभावनी व सुभावनी सुन्दर प्रतीत होती थी। लेकिन वही सुहावनी रात अब कहाँ है।[310] अगर मैं जानती कि मेरे साथ ऐसा होगा तो मैं आपको कैसे जाने देती।[311] इतना गुस्सा न करिये और इतनी कड़ी परीक्षा मत लीजिए। जीव शरीर को छोड़ देगा तब क्या आप निर्दोष हो जायेंगे?[312]

हेमन्तऋतु भी इन सखियों को कोई शीतलता प्रदान नहीं करती। वे कहती हैं कि आप दयावान होकर दर्शन दीजिए। आपके दर्शन बिना यह ऋतु असहनीय हो रही है। जरा अन्तरात्मा में विचार कर मेरी हालत का अवलोकन करिये कि कैसी है। मेरा कलेजा भीतर ही भीतर कटा जा रहा है।[313] वन में पेड़ लताओं से घिरे हुए हैं। पृथ्वी में भी शीतलता है। हवा शीतल बह रही है। जल भी शीतल है और वृक्षों की छाया भी शीतल है। परन्तु सारा वातावरण शीतल होते हुए भी

३०८ प्राणनाथ, कुलजमसागर, षट्ऋतु, प्र० १, चौ० ३
३०९. वही, प्र० १, चौ० ६
३१०. वही, प्र० २, चौ० ८
३११. वही, प्र० २, चौ० १३
३१२ वही, प्र० २, चौ० १६
३१३ वही, प्र० ३, चौ० ३

आपके वियोग से मेरा अन्तःकरण जल रहा है और शरीर में विरह रूपी अग्नि धधक रही है ।[३१४] शिशिरऋतु की हवा इन विरहिणियों को तलवार के समान चोट पहुँचा रही है। सखी कहती है, नेत्रों में शीतल जल निकल गया। अब रोते-रोते नेत्र अत्यन्त लाल अग्नि के समान हो गये। नासिका और मुँह से धौंकनी की तरह गर्म प्रश्वास निकल रही है। यह जीव जलता तड़पता हुआ पुकार कर रहा है। इसलिए उनके ऊपर कृपा कीजिए।[३१५] जिस प्रकार वर्षाऋतु के पहले पहल पानी बरसते ही लालबिलौरी नामक कीड़ी लाल रंग पकड़ लेती है। उसी प्रकार इन्द्रावती की आत्मा भी आपसे मिलते ही तुरन्त प्रेमरस में मस्त दिवानी बन जाएगी।[३१६] बिना प्रियतम के बसन्त का मौसम भी उनको अप्रिय लगता है। होली के उत्सव को याद कर वह कहती है, फागुन मास की होली का उत्सव बहुत ही सुहावना और आनन्दप्रद होता है। मेरी अभिलाषा है कि मैं आपके पास आकर अबीर रंग और गुलाल रंग लेकर आपके साथ आनन्द खेल खेलूं। विशेष सुगन्धित द्रव्यादि चोआ, चन्दन अरगजा और कई प्रकार के इत्रों से छिड़ककर मैं प्रियतम को लालोलाल करे दूं, अर्थात अत्यन्त प्रसन्न कर दूं।[३१७] ग्रीष्मऋतु तो बिना प्रियतम उनको सौसाल समान लम्बी लगती है। कोकिला की मधुर ध्वनि, तोतों की क्रीडा, मयूर आदि पक्षियों का आनन्दगान उनके विरह को अधिक प्रज्वलित करते है। इस तरह विरह में ही बारह मास व्यतीत हो जाने पर वह कहती है कि फिर वही आषाढ़ और वर्षा के दिन आने से जीव को पानी की बाढ के समान वियोग रूपी घाव का अधिक दुःख फिर से अनुभव हो रहा है।[३१८] ब्रज की सखियां कृष्ण को याद करके रोती हैं—

सखीओ ताग मुखडा संभारीने रुए,
हवे अम विजोगणीयोने कोण आवी जुए।
पीउजी बिना आमुडा ते कोण आवी लूए,
वाला पछे आवशो शुं अम मुए ।।[३१९]

इनकी शिकायत यही है कि पहले क्यों प्रेम किया और अब आसमान से पटक दिया।[३२०] हर ऋतु और हर मास के अन्त तक उनको आशा लगी रहे प्रियतम का अब तो आगमन होगा ही लेकिन निराश ही होना पड़ता था।

---

३१४. वही, प्र० ३, चौ० ६
३१५. वही, प्र० ४, चौ० ५
३१६. वही, प्र० ४, चौ० १८
३१७. वही, प्र० ५, चौ० १५
३१८. वही, प्र० ७, चौ० १४
३१९. वही, बारहमासी, प्र० ५, चौ० ६
३२०. वही, प्र० ६, चौ० ६

सूर आदि ने हिन्दी साहित्य में और नरसिंह मेहता, प्रेमानन्द, मालण आदि ने गुजराती साहित्य में भ्रमरगीत के प्रसंग को अपने काव्य का विषय बनाया है उसी प्रकार प्राणनाथ ने भी इसका चित्रण किया है। प्राणनाथ ने इस प्रसंग का अधिक विस्तृत चित्रण नहीं किया। गोपिकाएँ अपने निश्छल प्रेम और गहरी अनुभूति से ज्ञान और योग के समर्थक उद्धव पराजित कर देती हैं। उद्धव ने वचन रूपी औजार से उन सखियों के हृदय के मांस को नोच डाला—

वाला मारा हुती रे मोटी तारी आश,
जाण्युं अमने मूकशे नहीं रे निराश।
ते तो मर्म मोकल्यो तमारो स्वभाव,
तेणे आवी वछोड्यो मासीए मास ॥[321]

लेकिन अब गोपिकाएँ आश्वस्त होकर यही मानती हैं कि अच्छा हुआ शंका दूर हो गई। ज्ञान के सन्देश को सुनकर हम जागृत हो गयीं। अब हमने समझ लिया कि निश्चित रूप से आपने हमें बिल्कुल ही त्याग दिया है।[322] अब विरह किसके ऊपर करें। नन्द नन्दन होते तो आने पर प्रसन्न हो जाते। किन्तु अब वे यदुराय बन गये हैं, अतः अब भोली बातें उनको अच्छी नहीं लगती।[323] अगर कृष्ण नन्द के नन्दन होते तो शीघ्र दौड़ कर उनके पास चले जाते। वह यदुवंशी कृष्ण है न कि गोपिकाओं का प्यारा कृष्ण—

सखियो ! हवे आपोपूं सहु कोई भालो,
कान्हजी होय तो दोडी जाइये चालो।
ए जदुराय नहि रे गोपीओनो वालो,
सखियो, हवे ओवड ने गुजडी का आलो ॥[324]

इस प्रकार दिल का दर्द दिल में ही छिपाकर रखने का निर्णय करके उद्धव से साफसाफ कह देती है कि हमारे प्रियतम हमारे दिल में ही छुपे हुए हैं। सो तुम्हारे आने से हमारी शंकाएँ दूर हो गईं। और हे उद्धव तुम्हारी बातों से हमारा मन विचलित नहीं हुआ। किन्तु तुम्हारे आने से हमारा मन और सुदृढ़ हुआ है।[325] अब इनको यही लगता है कि हम अपना सामाजिक परिवार संभाल लेना चाहिए

---

३२१ प्राणनाथ, कुलजमसरूप, षट्ऋतु, प्र० ७ चौ० २
३२२. वही, प्र० ७, चौ० ३
३२३. वही, प्र० ७, चौ० ८
३२४. वही, प्र० ७, चौ० ९
३२५ वही, प्र० ७, चौ० १२

क्योंकि लोकव्यवहार से हम तो निन्दित होंगे लेकिन साथ ही प्रियतम को भी हमारे पीछे निन्दित होना पड़ेगा—

सखियो, हवे घरडां मह्णुं समारो,
रखे कोई वालाजीने दोष देवरावो।
ए विरह माहेना माहेज मारो,
सखियो, ए तो नहिं घरबार उघाड़ो ।।[326]

जीवन जीने के लिए गोपिकाओं को सिर्फ उन दिनों की स्मृतियाँ ही धन्य बना देती है कि जिस दिन प्रियतम के साथ रास खेल खेला था—

अखंड में याद देने, ए जो बेन बजायो ।
चित दे सायको ले, आप में समायो ।।
अखंडमे याद देने, ए जो खेल बनायो ।
व्रजराम जागनीमे, ए जो खेल खेलायो ।।
पीउने प्रकास्यो पेहेले, आयो सो अवसर ।
,व्रज ले रास में .खेले, खेले निज घर ।।[327]

कृष्णकाव्य में षड्ऋतुवर्णन और बारहमासा की एक पूरी परम्परा मिलती है। सूरदास, नन्ददास आदि का हिन्दी साहित्य में जिस तरह षड्ऋतु-बारहमासा वर्णन मिलता है उसी प्रकार गुजराती साहित्य में प्रेमानन्द, नरसिंह मेहता, रत्नेश्वर का भी है। हालांकि सूरदास ने क्रमबद्ध रूप से विभिन्न ऋतुओं का वर्णन नहीं किया। संभवतः गुजराती साहित्य में इन दोनों की एक प्राचीन परम्परा ही है। इस दृष्टि से प्राणनाथ का षड्ऋतु और बारहमास वर्णन उस परम्परा में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

पनघटलीला, दानलीला आदि का वर्णन प्राणनाथ ने बहुत ही संक्षिप्त में किया है। पानी भरने के लिए जाती हुई या दूध दही लेकर घर से निकली हुई गोपिकाओं को तंग करने वाले कृष्ण के संदर्भ में गोपिकाएं कहती है—

बाई रे मेहेलो वालो गेहेली वात करे.
एहने कोई तमे वारो।
दुरजन देवता अमने बोलावे,
निलजने धुतारो ।[328]

३२६. वही, प्र० ७, चौ० १३
३२७. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० ८३, चौ० १-२-३,
३२८. वही, प्र० ५०, चौ० १

गोपिका खुद कुलवधुनार है इसीलिए लोकलाज से उसे डरना पड़ता है, लेकिन कृष्ण निर्लज है।[३२६]

"तू तो निलज नन्दनोकुमार, मेरे पिउजी।
तू देख भयो मोहे बावरो, मैं कुलवधुप्रा नार।
गलिअनमे दुरजन देखे, तोमे नहीं विचार॥

× × ×

साड़ी फारी कठमर तोरी, तोड़्यो नवसर हार।
अब घर कैसे जाइए, उलटाए दियो सिनगार॥

प्राणनाथ में भी आत्मनिवेदन, दास्य, सख्य, दैन्य आदि भावना मिलती है। कहीं कहीं पर उनका दास्यभाव सख्यभाव से मिश्रित-सा दिखाई पड़ता है। वैसे तो शुद्ध हृदय से चरणस्थान भी उन्होंने मांगा है—

सतगुरु मेरा श्याम जो, मैं अहनिश चरणों रहूं।
मनमथ मेरा याहीसो, मैं तायें दास सुख लहूं॥[३३०]

उनके गुणों का वर्णन करना भी मुश्किल है क्योंकि खुद भी अवगुणों का भण्डार है—

धनीके गुणकी मैं क्या कहूं, इन अवगुन पर एते गुन।
महामत कहे इन दुलहे पर, मैं वारी वारी दुलहिन॥

× × ×

इन इंद्रियनकी मैं क्या कहूं, ए तो अवगुन ही की काया।[३३१]

भक्त के लिए भगवान पतितपावन है और इसीलिए अपने आपको पतित-पतितो का बादशाह कहकर भक्त उद्धार की याचना कर सकता है—

पतित मेरे आगे कौन कहावे,
मैं कोई न देख्या रे पतित।
तोड़ी मरजाद बिगड़्या विश्वधे,
मैं तो पतितन को पातशाह।[३३२]

---

३२६. वही, प्र० ४६, चौ० १-२, ६
३३०. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरन्तन, प्र० ५२, चौ० १
३३१. वही, प्र० ४२, चौ० ४, १६
३३२ वही, प्र० १६, चौ० १, ४

इसीलिये, उनको यही कहना पड़ा है कि मैंने आपके साथ बहुत से अवगुण किये कि जिसका कोई पार ही नहीं और बड़ी-बड़ी ऐसी भूलें की हैं। लेकिन आप मेरे उन दुर्गुणों को और भूलों को भूला दीजिए। उन अवगुणों को चित में धारण न कीजिए।[333] साथ ही भक्तों को इतना विश्वास अवश्य होता है कि कई अवगुण होने पर भी उस पर भगवान की कृपा होगी ही। अतः प्राणनाथ ने यही मांगा है कि हे कृपा के सागर, हे मेरे प्रियतम, अब कृपा कर मुझे बुलाओ। जिससे आकर मैं आपसे अंगोंअंग मे मिल के माया में रहूँ ही अखंड सुख का अनुभव करूं।[334] आप कृपालु हैं इसलिए मैं रो-रोकर विनय कर रही हू कि मेरा दु:ख दूर कीजिए।[335] इस बात का संतोष है कि भगवान की कृपा दृष्टि है —

सुन्दर सरूप श्याम श्यामाजी को, फेर फेर जाऊं बलिहारी।
इन दोऊ सरूपो दयाकरी, मुझ पर नजर तुम्हारी ॥[336]

उन्ही की दया से ही माया का परदा हट सकता है—

जिन दया का परदा उड़ाइया, मैं फेर फेर सो भागो मेहेर।
इसक दीजे मोहे अपना, जासो लगे बुजरगी जेहेर ॥[337]

अन्य भक्तों की तरह प्राणनाथ का भगवान भी पतितोद्धारक है और उन्होंने अपने उद्धार के लिये विभिन्न भावों का सहारा लेकर निवेदन किया है। यह स्पष्ट है कि उनकी प्रेम निवेदन के रूप में की हुई अभिव्यक्ति स्वाभाविक लगती है।

प्राणनाथ के बाह्यार्थनिरूपक काव्य के अन्तर्गत कृष्णलीला के कई भावपूर्ण प्रसग, विभिन्न धर्ममतों में समन्वयवादी दृष्टि का उपदेश देते हुए पद और साम्प्रदायिक तत्वों के निरूपण का समावेश होगा।

उन्होंने कृष्णलीला के साथ विशेषत: आत्मसम्बन्ध ही जोड़ा है अतः बाह्यार्थनिरूपक, लीलागान बहुत ही अल्पमात्रा में मिलता है। कृष्ण जन्म और कृष्ण की बाललीलाएँ ही ही उनकी इष्ट है और अन्य लीलाओं का उल्लेख किया है।

कृष्ण परब्रह्म अक्षरातीत के रूप में स्वीकृत होने पर उनके जन्म की घटना साधारण न रहकर एक महान् एवं अभूतपूर्व घटना बन जाती है। उस समय के

३३३. वही, षडऋतु, प्र० १, चौ० ११
३३४. वही, प्र० ४, चौ० १५
३३५ वही, प्र० ४, चौ० १२
३३६ वही, किरतन, प्र० ११६, चौ० २
३३७. वही, प्र० ६२, चौ० १३

उल्लास का अभिव्यक्त करने का प्रयत्न हरिश्च भक्त ने किया है। कृष्ण के जन्म से सारी ब्रजभूमि पुलकित हो उठी है—

आज वधाई ब्रज घर घर, प्रगट्या श्रीनंद कुमार।
दूध दधिए ऊभर थाए, तोरण बांधे ब्रजनार॥
एक बीजीने छांटे नाखे, उमंग अंग न माए।
अनेक विधना वाजा रस बाजे घुर घुर घोख्रव थाए॥[३३८]

इस प्रकार हर घर मे आनन्द छा गया, वाद्य बजने लगे और ब्रजनार ने रंग उछाल शुरू किया। अबीर गुलाल का छिड़काव करते हुए सब नन्द के घर पहुँचते हैं—

लेईने वधावा साथरी, सवन सवनथी नार।
गाए ते गीत सोहामणा, साजे सकल सणगार॥
अबीर गुलाल उड़ावनी आवे, छाया न सूझे सूर।
लाल चरण छवे नहीं भोम, जाणे उमड्यो सागर पूर॥
जुथ जुजवे जुवतियो, उछरंगनियो अपार।
मोछव करनी आविश्रो, वाला नंद तणे दरबार॥[३३९]

भाटचारणो ने आकर सारा वातावरण संगीतमय मे भर दिया है—

ब्राह्मण भाट गुणीजन चारण, सनया ते मागण हार।
निरत नटवा गंधर्व, राग सागीन थेई थेई कार॥
नाद बुंद घड़हड़ा अवनी वरत्यो जै जै कार।
नंद गोप सहु गेहेला हरखे, सोनावे भंडार॥[३४०]

कृष्ण के बालचरित्र का वर्णन रास के समय कृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं तब गोपिकाओं के अभिनय के सहारे किया गया है।[३४१] माता यशोदाजी से कृष्ण मक्खन माँगते हैं और रोते जा रहे हैं लेकिन यशोदाजी की आखें क्रोध से लाल हो गयी क्योंकि इसी कारण चूल्हे पर रखा दूध लुढ़क जाता है। मक्खन न मिलने पर कृष्ण ने मटकी ही फोड़ डाली। यह देखकर माता कृष्ण को पकड़ने दौड़ती है लेकिन कृष्ण आगे निकल जाते हैं। आखिर रस्सी से कृष्ण को बाधने का प्रयत्न किया गया।

---

३३८. प्राणनाथ, कुलजमसरोप, किरनन, प्र० ५१, चौ० १-२
३३९. वही, प्र० ५१, चौ० ३-४-५
३४०. वही, प्र० ५१, चौ० ७-८-९
३४१. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० ३३, चौ० ९-२२

कृष्ण रोते जाते हैं और रस्सी से छुडाने के लिए बार बार जोर लगाते हैं। उस अपने लाल का चमत्कारिक स्वरूप देखकर माता बावरी बन जाती है और कृष्ण को छोड कर उसके मुख को चूमती रहती है।

सभवत. प्राणनाथ ने कृष्ण के बालचरित्र का वर्णन गतानुगतिक होकर ही किया है। जैसा भावनापूर्ण चित्रण रासलीला और नित्यलीला का उन्होंने किया है वैसा यह चित्रण नही बन पडा। शुष्क वर्णन के सिवा इस चित्रण में कुछ नही है। उसी तरह सम्प्रदाय ने जागनीलीला को भी महत्त्व दिया है और अपने गुरु देवचन्दजी के द्वारा सम्पन्न जागृनि कार्य का वर्णन उन्होंने किया है।[३४२] साम्प्रदायिक तत्वो का यह निरूपण भी प्रवाहित नही है। फिर भी गुरु की याद आते ही अपने आप, पर, अपनी नासमझ पर जो दुःख हुआ है और इसी बात को लेकर जीव, आख, कान आदि को सबोधन करते हुए फटकारा है वहां पर भावुकता का अंश अवश्य ही मिलता है। सम्प्रदाय के तत्वो को अधिक स्पष्ट करने के लिए "श्री भागवत को सार" और "अठोतरसो पक्षका सार" प्रकरण प्रसग से दिये गये हैं। प्रगटवाणी और बेहदवाणी के प्रकरण क्षर, अक्षर और अक्षरातीत के तत्वों को लेकर लिखे गये हैं।

प्राणनाथ की सुधारवादी एव उदार दृष्टि से उनकी सगुण भक्ति को एक नया रंग दे दिया है। प्राणनाथ एवन् प्रणामी सम्प्रदाय जाति–पांति के भेदो को नहीं मानता इस बात का प्रमाण उनके प्रारंभिक ग्रन्थो से ही मिलता है।[३४३] ससार के सभी धर्मों ने उसी एक परब्रह्म अक्षरातीत के तत्व का निरूपण किया है, लेकिन आज ससार "पंथ पंडेंकी खेंचा खेंच" कर रहा है। वस्तुत. यह खेल ही झूठा है और सबकी मजिल एक ही है—

> जाहिर झूठा खेल ही, हिरदे अति अधेर।
> कहे हम साचे और झूठे, यों फिरे उलटे फेर॥
> पथ सारोकी एह मजल, अनेक विध वैराट।
> ए जो विगत खेल की, सब रच्यो इनको ठार॥[३४४]

प्रकाश–कलस ग्रन्थों मे उन्होंने वेद के तत्वो का निरूपण करते हुए प्रकरण दिये हैं उसी प्रकार उन्होने सनध, खिलवत, खुलासा, परिक्रमा, सागर, सिनगार, सिन्धी, मारफत सागर, छोटा कयामतनामा और बडा कयामतनामा रचनाओ मे

---

३४२. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० २३, चौ० १–१०५
३४३. वही, कलस (गुजराती), प्र० ३, चौ० १४–१५
३४४. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० १५, चौ० १६–१७

इस्लाम, ईसाई और यहूदी धर्म के मुख्य तत्वों रहस्यों की तुलना एवम् समन्वय करके, यही सिद्ध करने की कोशिश की है कि सभी धर्म एक ही मूल की शाखाएं हैं। अत. वे सब आश्वस्त करते हैं कि अब कयामत आ गई है—

कयामत आई रे साथजी, कयामत आई।
वेद कतेब पुकारत आगम, सो क्यों न देखो मेरे भाई ॥[३४५]

भले ही उन्होंने यहूदियों के तौरेत धर्मग्रन्थ और ईसाइयों के इंजिल धर्म-ग्रन्थ का नाम और उनके तत्वों की चर्चा की हो लेकिन विशेषतः इस्लाम के सिद्धान्तों को उन्होंने बार-बार प्रस्तुत करते हुए यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि खुदा और परमेश्वर में कोई भेद नहीं है। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि संसार का उद्धार करने वाला हिन्दू जाति में ही पैदा होगा और वही समस्त मानवसमुदाय को एक ही सूत्र में ग्रथित करेगा और अज्ञानमय अधकार को दूर करेगा। इन विदेशी धर्मों को स्पष्ट करने के हेतु एवं हिन्दु धर्म के तत्वों से तुलना करने के हेतु उन्होंने कुरानें शरीफ नासूत (मृत्युलोक), मलकूत (मलकोक, वैकुण्ठ), जन्नत (स्वर्ग), दोजख (नरक), जबरूत (अक्षर धाम), अमर अज़ीम (परम धाम), सा (क्षर), इलाह (अक्षर), इल्लल्लाह (अक्षरातीत), तौहीद (अद्वैत), असराफील (अक्षर की बुद्धि), जबराइल (अक्षरातीत की आवेशशक्ति), रब्बुल आलमीन (नारायण), अजाजील (विष्णु), मेकाइल (ब्रह्मा), अजराइल (रुद्र), बेचून (निर्गुण), शरियत (कर्मकाण्ड), तरीकत (उपासना), हकीकत (ज्ञान), मारफत (विज्ञान), खुदाई नूर (ज्योतिर्लिंग), नूर जमाल (परब्रह्म), आदम (मनु), जकात (अनिवार्य दान), रोजह (उपवास), रहेमानिर्रहीम (कृपाशील), जिकरुल्लाह (परब्रह्मचिन्तन), तक्वा (ईश्वरमय), तमवीह (पवित्रता), हम्द (महिमा), जिक्र (स्मरण), अजकार (जप), इबादत (तपस्या), गुनाह (पाप), कयामत (प्रलय में अखण्ड न्याय), काफिर (पापी), जिहाद (सत्कर्म अमल), हलाल (पुण्य), लानत (शाप), हवाशून्य (निराकार), आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[३४६] वे विशेषतः इस्लाम पर इसीलिए जोर देते हैं कि—

करता मारा एकरस, हिन्दू मुसलमान।
योला सबका मालके, सब का कहूंगी ग्यान ॥[३४७]

मुसलमानों से वे यही चाहते हैं कि इस्लाम की सही बातों को वे लोग ग्रहण करें। सच्चे मुसलमानों के प्रति मुझे प्रेम है और मेरे पास इसलाम का ज्ञान है उसके सहारे सच्ची बातें प्रस्तुत करूंगा—

---

३४५. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० १०४ चौ० १
३४६. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, खुलासा, प्र० १२, चौ० ३८–५५
३४७. वहीं सनंध, प्र० ३, चौ० ३

अल्लजो मुस्लिम असलू, अनी मरा हवा कुंभ।
अना हाकी हकार्डया असलू, माइ इमाम इलंम ।।[३४८]

अजाजील (विष्णु) के फुरमान को जो मानता है और जो अद्वैत की राह पड़ता है वही सच्चा मुसलमान है—

राह पकडे तौहीदको, धरे मोहम्मद कदमो कदम।
सो जानो दिल मोमन, जिन दिल अरस इलम ।।
कह्या सेजदा आदम पर, अजाजीलें फेरया फुरमान।
सो लिखी लानत सबको, ओ औलाद आदम जहान ।।[३४९]

अपने आपको मुसलमान कहनेवाले इस्लाम के सिद्धांतो के अनुसार नहीं चलते—

केहेलावें महंमदके, चले ना महंमद साथ।
डारेंजु दागें दीन मे, कहे हम सुनत जमात ।।[३५०]
कौन आप कौन और है, ऐसा छल किया खसम।
सुध ना खसम रसूलकी, नही गिरोकी गम ।।
कौन रूहें कौन फरस्ते, कौन आदम कौन जिन।
पढ़ पढ़ वेद कतेब को, पर हुआ न दिल रोसन ।।[३५१]

जो खुदा है वही परमेश्वर है और उन्हीं के प्रेम और हुक्म से हम कुछ कर सकते हैं—

"हुकमे इसक आवही, कदमो जगावे हुकम।
करनी हुकम करावही, कछु ना बिना हुकम खसम ।।
हुकम उठावे हसते, रोते उठावे हुकम।
हारजीत दुखसुख हुकमे, कछू ना बिना सुकम खसम ।।"[३५२]

इसीलिए प्राणनाथ कहते हैं कि उस शराब का मजा लीजिए—

साकी पिलावें सराब, रूहे प्याले लीजिए।
इक इसकका आव, भर भर प्याले पीजिए ।।
इक आसिक रूहनका, इन इसकका आव जे।
इन आवमें जो स्वाद है, रस जानें पीवनवाले ।।[३५३]

---

३४८. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, सनघ, प्र० २, चौ० १
३४९. वही, खुलासा, प्र० १, चौ० १९–२०
३५०. वही, प्र० १, चौ० ४४
३५१. वही, प्र० १०, चौ० ३–४
३५२. वही, खिलवत, प्र० १, चौ० ४३–४४
३५३. वही, प्र० ८, चौ० १-२

उस नूरजमाल (अक्षरातीत) के दर्शन के लिऐ नूरजलाल (अक्षर) हररोज आते है—

नूर जमाल के दीदारको, आवें नूर जलाल।
नूर जमाल के अरसमें, इत कहे कमाल॥
नूरजमाल दीदार बाहेरमें परके पीछें फिरत।
नूरजमाल के अरसमों, वही रह रहें बसत॥[३५४]

इसी नूरजमाल (अक्षरातीत) के अरस अजीम (परमधाम) का वर्णन "परिक्रमा" ग्रन्थ में किया गया है। इस अरस अजीम में एक नूरजमाल ही है और उसको प्राप्त करने के लिए इश्क ही काफी है—

महामत कहे ए मोमनो, जो अरवा अरस अजीम।
इश्क प्याले लीजियो, भर भर हलीम॥[३५५]

डा० सावित्री सिन्हा ने "सागर" ग्रन्थ के सदर्भ में कहा है कि आठ सागर जल सागरों अथवा महासागरों के नहीं है वरन् अपने विचारों और भावनाओं के असीम सागर को उन्होंने छोटे छोटे भागों में विभक्त कर दिया है। कुछ तरंगों में जहांनूर और रूहों का वर्णन है वहीं कुछ में श्री राजजी के शृंगार के नाम से राधा और कृष्ण का शृंगार वर्णन भी है।[३५६] वास्तव में उन्होंने परमधाम (अरस अजीम) के आठ सागरो का ही वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। इसमें जुगल किशोर शृंगार का वर्णन किया गया है—

आतम चाहे वरनन करूं, जुगल किशोर विध दोए।
ए दोए वरनन कैसे करूं, दोऊ एक कहावत सोए॥[३५७]

उनके सौदर्य को रुह की आंखो मे देखना चाहिए तब वे प्यारे ही लगेंगे—

रूह के नैना से देखिए, अति मीठे लगे प्यारे।
ए रस छवि इनमें, निमख न होए न्यारे॥[३५८]

पहला सागर नूरका, दूसरा रूहों की शोभा का, तीसरा रूहन की एक दिलीका, चौथा जुगलकिशोर का शृंगार, पांचवा इश्क का सागर, छठा खुदाई इलम का सागर, सातवां निसबत का सागर और आठवां सागर मेहेर का है। इन आठो

३५४. वही, प्र० ६, चौ० १२, ६३
३५५. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, परिक्रमा, प्र० ३२, चौ० ८५
३५६. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० ८६
३५७. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ सागर, प्र० ५, चौ० १०
३५८. वही, प्र० ५, चौ० ४१

सागर के वर्णन में कहीं-कहीं पर इस्लाम के सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया गया गया। इसी प्रकार "सिनगार" में भी इस्लाम को केन्द्र में रखकर महा शृंगार का वर्णन किया गया है। प्राणनाथ ने कहा है कि हक का रूप सौंदर्य जब दिलमें आकर बिराजित होता है तब आत्मा जागृत हुई ऐसा माना जा सकता है—

जब पूरन सरूप हकका, आए बैठा माहे दिल।
तब सोई अंग आतमके, उठ खडे सब मिल।
बस्तर भूखन सब अंगो, कंठ श्रवन हाथ पाए।
नखसिख सिनगार साजके, बैठे अरस दिलमें आए ॥[३५९]

सिनगार के अन्तर्गत मुखाबिंद, नाखून, कण्ठ, हक मासूक के श्रवण अंग हक मासूक के नेत्र अंग, हक मासूक की जुबान की सिफत, हक मासूक का नासिका अंग, हक मासूक के बस्तर-भूखन आदि का वर्णन किया गया।

सिन्धी मारफतसागर और कयामतनामा छोटा बड़ा में भी इस्लाम को ही दृष्टि समक्ष रखा गया है। 'सिन्धी' सिन्धी भाषा में ही लिखि हुई रचना है। उसमें उस परमधाम को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाने का उपदेश दिया गया है। मारफत सागर आदि में विशेषतः कई बातों का पुनरावर्तन मात्र है या उन्हीं बातों का दूसरे ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राणनाथ से पूर्व नानक आदि ने सर्वधर्मसमन्वय का प्रयत्न किया था, लेकिन प्राणनाथ ने हिन्दू मुसलमान के धार्मिक तत्वों का समान रूप में प्रस्तुत करके सबसे पहला एक सफल प्रयत्न किया। लेकिन कई ग्रन्थों में इस्लाम के इस विवेचन के कारण ही सभवतः प्राणनाथ एवम् प्रणामी सम्प्रदाय को हिन्दुओं ने इस्लामी सम्प्रदाय के रूप में समझ लिया गया है—

साहित्यिकता की दृष्टि से किरंतन के पद प्राणनाथ को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने की क्षमता रखते हैं। इन पदों में ज्ञान एवम् भक्ति को ही मुख्य विषय के रूप में रखा गया है। उपदेशात्मकता भी इन्हीं पदों में अधिक रुचिकर एवम् भावनापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त हुई है। साधु सज्जन वेषधारियों के लिए वे कहते हैं—

"क्रोध अहमेव अमे नहीं, अने वेश धरो छो साथ।
लोभ लज्जा नमे नहीं, माहे मोटो ते में आथ ॥[३६०]

लोभ बाहर से साफसुथरे लगते है लेकिन अंदर से मलीन रहते हैं—

ए जो दोए दिल रासत है, ए तो दुनिया की रीत।
माहे मैले बाहर ऊजले, ए जीव सृष्टि की प्रीत ॥[३६१]

३५९. वही, सिनगार, प्र० ४, चौ० ७०–७१
३६०. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरंतन, प्र० १२८, चौ० ८
३६१. वही, प्र० १०५, चौ० ७

मान और प्रतिष्ठा के लिए अगर साधुता का स्वांग सजाया जाता तो साधुता ही बेकार है—

जो तूं चाहे पतिष्टा धराए बैरागी नाम।
साथ जाने लोका दुनियां, वह तो सायो कगी हराम ।।[३६२]

अत अपने साथी-अनुयायियों को वे यही उपदेश देते हैं कि मेरी इस वाणी पर विचार करो तथा अपने दिल को परखो—

सुनो सायजी सिरदारो, ए कीजो बचन विचार।
देखो बाहेर माहे अंतर, लीजो सारको सार जो सार ।।[३६३]

लेकिन उस परमधाम-प्राप्ति का रास्ता कोई सरल नहीं, खाडे की धार पर चलने के समान है। उस राह पर अक्का-बुगत्का और कपट का काम नहीं। इसलिए पहले इनको दूर करो।[३६४] पारब्रह्म की प्राप्ति प्रेम से ही हो सकती है और अनेक कसोटियों का सामना करना पड़ता है।[३६५] इस प्रकार सोचसमझकर के ही कदम आगे बढ़ाना आवश्यक है। लेकिन भावुक भक्त को इस बात का दुःख भी है कि अपने कारण साथी अनुयायियों को कितना सहन करना पड़ता है। अत. वे कहते हैं—

साथ जी सुनो सिरदारो, मुझ जैसी ना कोई दुष्ट।
धाम छोड़ झूठी जिमी लगी, चोर चंडाल चरम दृष्ट ।।
अनेक अवगुन किए मैं साथसों, सोए प्रकासूं सब।
छोड़ अहंकार, गहू चरनोंतले, तोबा खेचत हूं अब ।।[३६६]

वे अपने आप को इसी लिए गुनहगार बताते हैं कि उन्होंने अपने साथी अनुयायियों को उनके परिवार से अलग कर दिया, दर-दर भटकते कर दिये—

तुम सीतलसों अपने घरमें, कै भातो करते प्यार।
सो मारे कर दिए दुसमन, जासो निसदिन करते विहार ।।
बाल गोपाल आहे खूबी खुसाली, करते मिल नरनार।
सो जेहेर समान कर दिए तुमको, छुड़ाए मीठो रोजगार ।।[३६७]

---

३६२. वही, प्र० १०२, चौ० १
३६३ वही, प्र० ६४, चौ० १
३६४. वही, प्र० ६७, चौ० १,७
३६५. वही, प्र० ६४, चौ० ५
३६६. वही, प्र० १०१, चौ० १,५
३६७ वही, प्र० १२०, चौ० ५–६

अतः उन्होंने यही उपदेश देना उचित समझा है कि—

"तुम समझके सगत कीजो रे बावा,
मुझ जैसा दीवाना न कोई ।।
मैं तो बात करूं रे दिवानी,
दुनिया तो स्यानी सुजान ।।
दुनिया को अमृत होए लागो,
मोहे लागत है विख ।।"[३६८]

अन्ततः साथ को अपने परमधाम के घर की याद दिलाते हुए यही कहते हैं कि[३६९]—

अब हम धाम चलत हैं, तुम हुजो सबे हुसियार।
एक खिनकी विलम न कीजिए, जाग्रो धरो करें करार।।

प्राणनाथ ने अपनी भावधारा में परब्रह्म के स्वरूप, उसके परमधाम, उसकी लीला, अक्षरब्रह्म का मायाविस्तार, परमात्मा की दया उनका घट घट में व्याप्त होने का वर्णन करके समावेश किया है। उनकी आध्यात्मिक भावनाएँ रचनात्मक एवम् आलोचनात्मक रूप में मिलती हैं। उनकी रचना के वर्ण्य विषय का दूसरा प्रमुख अंग सामाजिक एवम् धार्मिक भावनाओं का है। इसके अन्तर्गत समदृष्टि, राम-रहीम की एकता, विश्वबन्धुत्व, ऊँच-नीच आदि का खण्डन, जैसे विषयों को अभिव्यक्त किया है। अपने दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक तत्वों की शुष्कता मिटाने के लिए रसनिष्पत्ति का भी उन्होंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है। विशेषतः उनकी रचनाओं में शान्त और शृंगाररस का ही प्राधान्य है। फिर भी कहीं-कहीं पर अन्य रसों की झलक मिल जाती है। काव्यरस की शास्त्रीय कसौटी पर रसप्रक्रिया उनकी रचनाओं में चरितार्थ होती हो लेकिन इनके कई पदों को हम भक्तिरस या शृंगार-रस की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण पाते हैं।

भक्तिरस

डा० गोविंद त्रिगुणायत[३७०] भक्तिरस की स्थापना करते हुए कहते हैं कि साहित्यचार्यों ने साहित्यक्षेत्र में जब ब्रह्म के सदृश ही अनिर्वचनीय साहित्यनुभूति की अभिव्यक्ति की तो उसे भी वे रस कहने लगे और ब्रह्मानन्द सहोदर अभिनन्दित किया। अगर ब्रह्मानन्द या आत्मानन्द ही वास्तविक रस है तो सत् काव्य का प्राण भी वही मानना पड़ेगा। हमें ब्रह्मानन्द से सम्बन्धित भक्तिरस को ही रस रासत्व प्रदान करना होगा। भक्तिरस का स्थायी भाव परमात्मा विषयक अलौकिक रतिभाव

---

३६८. वही प्र० २०, चौ० १–२–३
३६९ वही प्र० ६३, चौ० १
३७०. डा० गोविन्द त्रिगुणायत, हि० नि० का० दा० पृष्ठभूमि, पृ० ६४५

परमात्मा, देवता, महापुरुष आदि उद्दीपन के रूप में, ज्ञानवैराग्य सत्संगति आदि उद्दीपन की सीमा में आवेंगे और भक्ति-भावमूलक अश्रु रोमांचादि अनुभाव होंगे। हर्ष, औत्सुक्य, आवेग, चपलता, उन्माद, चिन्ता, दैन्य एवं स्मृति आदि व्यभिचारी भाव कहे जाएँगे। डा० विजयेन्द्र स्नातक, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर को भक्तिरस के पाँच प्रकार बताये हैं।[३७१] प्राणनाथ की रचनाओं में भक्तिरस का परिपाक निम्नलिखित पंक्तियों में हुआ है—

मैं प्राण देऊं तिन सुख्खो, जो श्राडी करे जाते धाम।
मैं पिंड न देऊं ब्रह्माड, मेरे हिरदे बसे स्यामा स्याम॥[३७२]

× × ×

पुकार चले मेरे पीउजी, मैं तो नींद में उरझीय रे।
अब ढूंढे मेरा जीव रे, सो सजन अब किन पाईए॥[३७३]

× × ×

गुन केते कहूं मेरे पीउजी, जो हमसों किए धनेयजी।[३७४]

× × ×

सखी री आतम रोग बुरो लाग्यो,
 याको दारू ना मिले तबीब।[३७५]

× × ×

अल्ला आसक मासूक महमद, इसक दीजे हुम।
हुम आसक नाम धराएके, मासूक करे हैं तुम॥
तुम दुल्हा मैं दुलहिनी, और न जानूं बात।
इसक सो सेवा करूं, सब अंगों साख्यात॥[३७६]

× ×

रस मगन भई सो क्या गावे।
बिचली बुध मन चित मनुआ, ताए सबद सीधा मुख क्यों आवे।

---

३७१. डा० विजयेन्द्र स्नातक, राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ३२३
३७२. प्राणनाथ, कुलजम, किरतन, प्र० ८८, चौ० १०
३७३. वही, प्रकाश (हिन्दी), प्र० ८, चौ० १
३७४. वही, प्र० २६, चौ० १
३७५. वही, किरतन, प्र० १८, चौ० १
३७६. वही, प्र० ६२, चौ० १६-१७

बिचने नैन श्रवन मुख रसना, बिचले गुन पख इन्द्री अंग।
बीचली भांत गई गत प्रकृत, बिचल्यो संग भई और रंग॥
बिचली दिसा अवस्था चारो, बिचयो सुध ना रही सरीर।
बिचल्यो मोह अहंकार मूल में, नैना नीद न आवे नीर॥
बिचल गई अम वार पारकी ओर अंग न कछुए सांन॥
पिआरसमे यो भई महामत, प्रेम मगन क्यों करसी गान॥[३७७]

शान्तरस

प्राणनाथ की वाणी में यत्रतत्र शान्तरस ही छाया हुआ है। संसार की नश्वरता, उसमें दिखाई पड़नेवाले भौतिक पदार्थों की निस्सारता का उस परब्रह्म अक्षरातीत के स्वरूप का ज्ञान होने से मन एवं हृदय को कुछ ऐसी शान्ति मिलती है कि उसके आगे सांसारिक सुखवैभव तुच्छ लगता है। यही शान्ति भावक के अन्तर में शान्तरस की उद्भावना करता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित पद्यांश द्रष्टव्य है—

रे मन भूल ना महामत, दुनिया देख तूं आप संसार।
ए नाही दुनिया आप बावरी, ए रच्यो माया कुमार॥
असत तिनको भरम कहिए, होत है जिनको नास।
ए तो चौदे चुटकी में चली जासी, यो कहत सुकजी व्यास॥[३७८]

× × ×

मैं देख्या दिल बिचारके, जितसो अरथ लगाए।
इस मडल में आतमा, चल्या न कोई जगाए॥
मेहेनत तो बोहोतो करी, अहेनिस खोज बिचार।
तिन भी छल छूटा नही, गए हाथ पटक सिर मार॥[३७९]

× × ×

बोहोत पुकार करूं किस खातर, ए सब सपन सरूप।
बेहेद बनजका होएगा साथी, सो एक सबें होसी टूक-टूक॥
महामत ए समझे पाइए, ऐसा अखंड सुख अपार।
गुरु प्रसादे नाटक देख्या, पाया मन मनका प्रकार॥[३८०]

× × ×

---

३७७ वही, प्र० २६, चौ० १–४
३७८. वही, प्र० २४, चौ० १,६
३७९. वही, सनंध, प्र० ५, चौ० ७–८
३८०. वही, किरंतन, प्र० ७, चौ० १६–१७

पड़े गुनें विचार न छूटे, प्राण न अगयें जाए।
प्यार वचन चीन्हे बिना, तो मो जर विन गोते नाए ॥
ए गये सब समझाए के, कोई अंग करे उपाग।
मो गुरु मेरा मैं सेवो ताए, गुण बिन होए दास ॥[३८१]

× × ×

बलिहारी जाऊं कोटीन बेर, देहरी मंदिर द्वार।
वारनें जाऊं इन बिमीरे, जहां वचन मेरे आधार ॥[३८२]

शृंगाररस

वस्तुतः प्राणनाथ का दाम्पत्यप्रेम, ईश्वरीयप्रेम का स्थान प्राप्त करता है। प्राणनाथ के मतानुसार उस परब्रह्म की ब्रह्मांगनाएं ही इस सृष्टि में अवतरित हुई हैं, अतः उन्होंने परमधाम शोभा के संयोग शृंगार का वर्णन किया है उससे अधिक अपने स्वामी से बिछुड़ी हुई इन ब्रह्मांगनाओं के वियोग का वर्णन किया है। इस प्रकार उनके शृंगार में संयोग एवम् विप्रलंभ की सफल अभिव्यंजना हुई है। यह कहना आवश्यक है कि विप्रलंभ शृंगार के चित्रण में भी पूर्वराग और मान का कोई स्थान नहीं है, सिर्फ प्रवास का परिपाक हुआ है। संयोग एवम् विप्रलंभ शृंगार की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद्यांशों में हुई है—

अमृत पीजे ने सुख लीजे, कांई वालाने बलाइये रे।
हुमचडीमा भरए रस लीजे, रहन रामतडी गाइयें रे ॥
ए रामतनो विलास जे कीधो, ने कहेवाय नहीं मुख वाणी रे।
समे सुखडा लेई करीने, रह्या कदमामां जाणी रे ॥[३८३]

स्यामाजी स्यामके संग, जुवती अति जोर जंग।
करती पूरन रंग, पर आतम धरें ॥
अंग अंग उछरंग, सखी सखी मन उमंग।
अनवेनी अति अनंग, कामनी रस भरें ॥
छटके देत कठ मेल, हास मेन रगरेल।
चप बेल ढमके ढेल, कामनी बेल करे ॥
कंठ हार सजे सिनगार, नैन समार सोभे सुमार।
मग आधार, करे विहार, महामति काज सरे ॥[३८४]

× × ×

---

३८१. वही, प्र० २६, चौ० १३–१४
३८२. वही, प्रकाश (हिन्दी) प्र० २३ चौ० ४
३८३. प्राणनाथ, कुलजम, रास, प्र० १४, चौ० ६–७
३८४. वही, किरतन, प्र० १२३, चौ० १–४

एक बैठत पलंगें, पीउजी के संगें, खेलत प्रेम खुमार।
आप अपने अंगें, करत हैं जगें, कोई न देवे हार।।
एक अंग अनगे भांत पतगे, क्यों कहूं ए मनुहार।
अति उछरगे, होत न भगे, सत सुख संत भरतार।।[३८५]

× × ×

कोयलडी टहुँकार करे रे, बुलडा करे रे कलोल।
एणी ऋते हुं एकलड़ी, रोई नयणां करूं रग चोल।।
बादरे मोर झीडे वनमां, आनन्द देखी वनराय।
एणे समे वालाजी विना, विरहसुं कालजडुं रे कपाय।।[३८६]

× × ×

विनता विनवे रे, पीउजी रसिया तमे केहेवाओ।
तो एकलडा अपने मूकी, अलगा केम करी थाओ।।[३८७]
जेणी ऋते तमे मुने कीधा परदेशण, वली ते आव्यो आषाढ।
हजी विछोडो न भाजो रे वाला, जीवने थई वली बाढ।।
बाढ वशेके थई जोरावर, ते ऊपर तींयू वली लोण।
अवगुण मारा तमे आण्या चितसु, हवे खबर ते लेशे मारी कोण।।[३८८]

× × ×

पीउजी तमे शरदनी रुते रे सिधाव्या,
हो रे मारा अंगडाया विरह वन वाव्या।
ए वन क्षण क्षण कुंपलियो मूके,
हा रे मारूं तेम-तेम तनडूं सूके,
हो श्याम पीयु पीयु करी रे पुकारूं।।[३८९]

× × ×

वाला मारा आवी रे रुतडी वसन्त,
चन्द्रमुख अमृत रस से झरन्त।

---

३८५. वही, परिक्रमा, प्र० ४२, चौ० ९-१०
३८६. वही, षडऋतु, प्र० ६ चौ० ५-६
३८७. वही, किरंतन, प्र० ४४, चौ० १
३८८. वही, षडऋतु, प्र० ७, चौ० १४-१५
३८९. वही, बारहमासा, प्र० १, चौ० १

वाना वनडु मोपुँ रे कुंपलियो करन्न,
एणे मने न आवो तो आवे मारो पत ॥[३६०]

× × ×

वालो वजमा रम्या जे जुगते, अमे गहू वेप धर्या ते विगते।
पीउडो तोहे न दीसे क्याहे, वानजडू कपाय माहे ॥[३६१]

वीररस

"साहित्यदर्पण" कार ने वीररस के लक्षण बताते हुए कहा है कि "कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।",[३६२] शत्रु की ललकारें या धर्म की दुर्दशा आदि को देखने से हृदय में उनको मिटाने का जो भावावेश या जोश उत्पन्न होता है वही उत्साह है। अतः युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर के आधार पर वीररस के भी चार प्रकार माने गये हैं। प्राणनाथ ने महाराजा छत्रसाल को उत्साहित करने के लिए जिस पद का उपयोग किया था वही वीररस के उदाहरण के पर्याप्त होगा—

राजाने मलो रे राणें राए तणों, धरम जाता कोई दौडो।
जागोने जोधा रे उठ खडे रहो, नींद निगोडी रे छोडो ॥
छूटत है रे खडग छत्रियों से धरम जात हिन्दुस्तान।
मन म छोडो रे मनवादियो, जोर बढ्यो तुरकान ॥
कुलिए छुडाए रे हिलडे जुदे किए, मास ग्रह के मदमाते।
असुर माने रे असुराई करे, तो भी न मिने रे धरम जाते ॥[३६३]

× × ×

सुनियो पुकार रे स्याने सतजनो, जो न दौड्या जाते सत।
गए ने अवसर पीछे कहा करोगे, कहा गई करामात ॥
ससकर असुरोंका चहुं दिस फैलाया, बाढ्यो अतिविस्तार।
बन ने जंगल रे हिंदू रहे और कर लिए सब धुंधकार ॥
हरद्वार ढहाए उठाए तपसी तीरथ, गोवध कीधों विघन।
ऐसा जुलम हुआ जगमें जाहेर, पर कमर न बांधी रे किन ॥[३६४]

---

३६० वही, प्र० ४, चौ० १
३६१. वही, रास, प्र० ३३, चौ० २६
३६२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३।१७२
३६३. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० ५८, चौ० १–२–३
३६४. वही, प्र० ५८, चौ० ११–१२–१३

करुणरस

"एको रसः करुण एव" कहकर भवभूति ने करुणरस को ही प्रधानता दी है। प्रिय वस्तु या व्यक्ति के कारण उत्पन्न क्लेश ही करुणरस को उद्‌भूत करता है। प्राणनाथ की विशेषत. प्रारंभिक रचनाओं मे करुणरस का परिपाक हुआ क्योंकि उनके दिल में गुरू देवचन्दजी की मृत्यु की चोट लगी हुई थी। वे उनकी वाणी-तारतमज्ञान आदि को याद करते हैं—

अब कहां करूं कहां जाऊं, ए बानी धनी ढूंढों कित ।।
पोउ पहुंचाए मैं पीछे फिरी, करने विलाप रही इन ।।
अब ए तू बानी कहां सुनसी, मेरे धाम धनीके वचन।
बरनन करते जो श्रीमुख, सो अब काहूं न पाईए ठौर किन ।।[३६५]
× × ×
कर कर सोर जो वल्लभा, फिरे जो आप वतन।
चलें जो मेरे देखते, केहे केहे अनेक वचन ।।
दुलहा मेरा चल गया, मेरी चले न जुवा यों।
पल पल वचन पीउके, मोहे लगे कटारी ज्यों ।।[३६६]

अद्‌भुतरस

अद्‌भुतरस का स्थायी भाव विस्मय है। विश्वनाथ ने विस्मय के सदर्भ में कहा है कि विविध पदार्थों मे लोकोत्तरता देखकर जो प्रसार होता है उसे विस्मय कहा जाता है।[३६७] किसी असाधारण वस्तु के दर्शन मात्र से जो आश्चर्य भाव उत्पन्न होता है वही अद्‌भुत रस है। प्राणनाथ ने कृष्णवर्णन मे अन्तर्गत इस रस की अभिव्यजना की है—

ए तो वाध्या दामणिए बंध रे, जुओ काहावजी रूप अचभ,
तीहां रोतो रिखतो जाय रे, रह्यो वृक्ष उखले भराय रे।
तीहांथी निसरतां कीधु जोर मे, पड्यो वृक्ष थयो अतिशोर रे।
तेमा पुरस बे परगट थयारे अंग मोडीने उभा रह्या ।।
कर जोडीने अस्तुत कीधी, तेने तरत वाले सीख दीधी ।।[३६८]

बीभत्स रस

घृणा उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं के चित्रण से हृदय मे एक प्रकार की ग्लानि का प्रादुर्भाव होता है और उसी मे बीभत्स रस उत्पन्न होता है। डा० गुलाबरायजी

३६५. वही, प्रकाश हिन्दी), प्र० ६, चौ० ३८-३९
३६६. वही प्र० ८, चौ० ६-१०
३६७. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३।१७९, १८०
३६८. प्राणनाथ, कुलजम, रास, प्र० १३, चौ० १७-७८-१६

ने इस रस के सदर्भ मे कहा है, ससार मे वैराग्य उत्पन्न करने के कारण यह शान्तरस का सहायक होता है। जहाँ पर ससार से घृणा विवेक के कारण होती है वहाँ पर जुगुप्सा, विरेचजा कहलाती है और जहाँ साधारण रूप मे होती है वहाँ प्राय की कहलाती है। बीभत्स के लिए यह आवश्यक नहीं कि मांस और कृमि का ही वर्णन हो वरन् यदि कोई नैतिक बुराई भी हो तो बीभत्स का आलंबन बन जाएगी। सुधार के लिए बीभत्स का वर्णन आवश्यक हो जाता है।[३९९] प्राणनाथ ने दो-तीन स्थान पर इस रस की अभिव्यजना की है—

अब क्यों कहूँगी मैं बातड़ी, मासी क्यों उठाऊँगी मोह।
मेरे हाथ ऐसी भई, खलड़ी उतारूँ सिर सोंह॥
काढू तन तरवार सों, टूक करूँ हड़िया तोर।
खलड़ी उतारू पेहेले उलटी, जीव काढू सो जोर॥[४००]
हड़िया जारूँ आगमें, मांहे मास डारूँ सिर।
ए भूमी दुःख क्योंहू ना मिटे, ए समया न आवे फिर॥[४०१]

× × ×

निरमल नजरों न आवही, ले बैठी मग चढाल।
उलजन ऐसी अगर्थे, उतारूँ उलटी खाल॥
सब अंग काट चीरा करूँ, माहे भरों मिरच और लूंन।
कै कोट बेर ऐसी करूँ, तो भी न छूटे ए खूंन॥
ईहेमे ऐसी उठत, सब अंग करूँ टूक टूक।
हड़ियां सब जुदी करूँ मान करूँ मान करूँ भूक भूक॥[४०२]

कलापक्ष

भावतत्व भले ही काव्य का प्रमुख अंग हो लेकिन भावो की अभिव्यक्ति के लिए कलातत्वों का इतना ही सहयोग मिलना आवश्यक माना जाता है। शब्द और अर्थ के अभाव मे भावधारा कहीं न कही विलीन हो जाती है। अत अमूर्त विचारो एवम् भावनाओ आकर्षक मूर्त स्वरूप देने के लिए कलापूर्ण अभिव्यक्ति प्रणाली का महत्व बना रहा है। लेकिन मध्यकालीन सन्तों एवम् भक्तो ने अपने हृदय मे उठने वाली भावधारा को उसी रूप मे अभिव्यक्त किया है। कहीं भी उन्होंने कलापूर्ण

---

३९९. डा० गुलाबराय, सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १४३
४००. प्राणनाथ, कुलजम प्रकाश,, प्र० ८, चौ० १५-१६
४०१. वही, प्र० ८, चौ० २२
४०२ वही किरतन, प्र० ४२ चौ० ५-६-७

अभिव्यक्ति के लिए प्रयास भी नहीं किया। फिर भी उनकी वानियों में अनायास ही कलातत्वों के दर्शन अवश्य होते हैं। काव्यकला के संदर्भ में प्राणनाथ ने एक स्थान पर यही कहा है कि अक्षर और मात्रा की लघु-दीर्घता का ध्यान रखना यह केवल कवियों का खिलवाड़ है। इस कविकर्म के वास्तविक अर्थ को मैं समझता हूँ, लेकिन मेरी इस भावनापूर्ण आध्यात्मिक वाणी में ऐसा कविकर्म मुझे शोभा नहीं देता।[४०३] अतः स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वाणी में कलापूर्ण अभिव्यक्ति की चमक प्राप्त नहीं होती। इस बात से यह समझ लेने की भूल नहीं होनी चाहिए कि उनकी समस्त बानी में कला का कोई तत्व ही नहीं। स्वाभाविकता से आने वाले कलातत्वों के दर्शन उनकी रचनाओं में हो ही जाते हैं।

काव्यशैली की दृष्टि से प्राणनाथ को सफल मुक्तककार अवश्य कहा जा सकता है, लेकिन प्रबन्धकार के रूप में उनको सफलता नहीं मिल सकती। प्रबन्ध के लिए आवश्यक अविच्छिन्न भावधारा के उनमें दर्शन नहीं हो पाते, लेकिन मुक्त के रूप में उनके घनीभूत भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक ढंग से हो सकी है। इस भावाभिव्यक्ति में अलकार, संगीतात्मकता आदि ने अनायास ही योग दिया है।

अलंकार

भक्त या कवि अपनी भावाभिव्यक्ति की एक ऐसी चरमसीमा पर जब पहुँच जाता है तब उसकी अनुभूति तीव्रतम हो जाती है और उसको यथास्वरूप प्रगट करने पर भी आत्मसंतुष्टि के लिए अधिक प्रयत्न करता है। यही अलंकारों का संभवतः जन्मस्थान है। अनुभूति को ये अलकार आभूषित करते हैं। हालांकि प्राणनाथ ने ऐसे कई स्थान छोड़ दिये हैं। जहाँ पर वे अलंकार से अपनी भावधारा को अधिक सुशोभित कर सकते थे। उनके प्रिय अलकारों में रूपक, उदाहरण दृष्टान्त, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और उपमा रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अलकारों के दर्शन भी यत्रतत्र हो जाते हैं उनकी बानी में प्रयुक्त अलकारों में से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—
अनुप्रास[४०४]

"सुन्दर सख सिणगार सोहावे, तहां नेहेरे भूषण कह आवे।"
"सुन्दर शोभा स्यामाजी केरी, निरखी निरखी ने निरखूं।
अन्तर रालोजीने एक थया, इन्द्रावती वहे हूं हरखूं॥"

---

४०३. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० २, चौ० ३
'लघु दीर्घ पिंगल चतुराई, ये तो कविनी छे वडाई।
ए हुं अर्थ हूं जाणुं सही, पण आ निघमा ते सोभे नहीं॥"

४०४. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, रास, प्र० ६, चौ० २७; प्र० ६, चौ० ३६; प्र० ६ चौ० ७१; प्र० ३०, चौ० १; प्र० ४०, चौ० १, कलस हिंदी), प्र० ३, चौ० १; (किरतन) प्र० ३ १४४, चौ० ४

"मृदग चंग, तंबूर रग, अति उमंग, गावती सखी स्वरकरी ।"
"छेड़ो न छटके, लग न अटके, भरे पाऊं चटके, मानवती मटके ।
लिए रग लटके, छुटाके अधुर घटके, वलो वलो सटके ।।"
"दरद देहा जरद गरद रद करे, मैं क्यो धरू धीर अस्थिर सरीरे ।"
"नूर हक सहूर मजकूर नूर महामत, नूर उरया बका नूर का सूर ।
सब नूर रुहे नूर हादी नूरमे, नूर नूर मे खेंच लई इकें हुजार ।।"

उपमा[४०५]

"रेत स्वेत सोभा धरे, वृन्दावन मभार ।
सकल कलाओ चद्रमा, तेज धरा धरे अपार ।।"
"सील कहे सतोष सुनो, आपणो कीधा छे पाल ।
परवत ताणो पूर सागरना, मोहे वेहेवट छे निताल ।।
आमलिया असेखे दीसे, लेहेरो मेर समान ।
मछ जारोवर मोहे छे मोटा, पाल करवी एने ठाम ।।"
"वास्ना जीवका बेवरा एता, ज्यों सूरज दृष्टे रास ।
जीवका अग सुपनका, वास्ना अग साख्यात ।।"
"ए लीला होसी विस्तार, सूरज ठाव्या नारहे लगार ।
ए लीला क्यो ढापी रहे, जाकी रास धनी एस प्रस्तुत करे ।।",
"तरग बड़े मेरसे होए, इन खड़ा ना रैहेने पावे कोए ।
लेहेरें पर लेहेरें मारे घेर, माहे देत ममरिया फेर ।।"
"सत असत पटतरो जैस दिन और रात ।"

रूपक[४०६]

"भवसागरनो जल छे अपार, तेतां तने सेहेजे उतरया पार ।
तमे भली पहेलीने कीधी मोटी बाहर, धणी लिए तेम ली धी सार ।।

---

४०५ वही, रास, प्र० १०, चौ० ३१, प्रकाश, प्र० २०, चौ० ११०–१११; कलस हि० प्र० २३, चौ० ६१, प्र० ८, चौ० ८,, प्र० ३७, चौ० ८०; प्र० १०, चौ० १

४०६ वही, प्रकास (गुजराती), प्र० १८, चौ० ३; कलस गु० प्र० १, चौ० ३७; प्र० ७, चौ० ४५; प्र०हि०प्र० १८, चौ० २; प्र० २०, चौ० ६०; प्र० २२, चौ० २ प्र० ३७, चौ० ७६; कलस हिन्दी, प्र० ६, चौ० ७; प्र० १०, चौ० १; किरतन, प्र० १७, चौ० १२, प्र० ३४, चौ० ३; प्र० १३३, चौ० १.

कतव चितवणी जे सेवा करे, अवला गुण मोहजल परहरे।
किहा थकी अमे आवियां, अने पडया ते अंधेरेमाहे॥
जीवनजोत अलगी थई, मांहेथी न केमे निसराए॥
तारतम सूरज प्रगट्यो, सकल थयो प्रकाम।
लागी सिखरो पाताल झलक्यो, फाडियो आकास॥
सुखसागरमां झीलवो, विकार सघला धोऊं।
मैं पेहेले ना पेहेचाने श्रीराज, माहे आडी भई माया की लाज।
भवसागर को किने पाई ना किनार, सो तुम सहेजे उतारे पार॥
तारतम जोत उदयोतके आगे, असे कबू ना होए।
प्रेम प्याला भर भर पीऊं, चंलोकी छाक छकाऊं।
चौदे भुवन में करूं उजाला, फोड ब्रह्माड पीउ पास जाऊं॥
मोहजलपूर तीखा अतिजोर मन्न अंगुरीको लेजाए तोर।
विरहासागर होए रह्या, बीच मीन विरहनी नार।
दौडत हूं निसवासर, कहूं बेट ना पाउ पार॥
सतसूर सब देखहीं, जब प्रगट भयो प्रभात।
दुख सब सुपनो होए गयो, अखण्ड सुखभोए भयो।
महामत खेले अपने लालसों, जो अक्षरातीत कह्यां॥
रे जीव सरीर मंदिर सोहामनो, चौदह खने रे आवाम।
इनके भरोसे जे रहे, ते निकस चले निरास॥
प्रेममे भीने रहिए, पीवमो आनन्दघन।
विसराई गिन्यो वेजे सूंजी सघारयो बजे।
रिणायर रेल्यो वेजे, मालम कर मोहाड,
छाला पुंजे बदरपार॥ (सिन्धी भाषा)

बल्रेशा[४०७]

नामे जाको अपच, तिनमको मूल सरीर।
या बनयें बाग विस्तरयो, जानो भरया मृगजल नीर॥
नीर खारे भवसागर, घोर लेहेरा मारे मार।
बेटी बीच पछाडहीं, वार न काहूं पार॥

---

४०७. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० ३४, चौ० २; कलस हिन्दी प्र० ४, चौ० ८–६; प्रकाश गुजराती, प्र० ४, चौ० १, रास प्र० १, चौ० २; प्र० ७, चौ० ३

तान तीसे ग्राडे उलटे ग्रौर नेन भमरिया जन ।
पिने मद्य लडाइया यामे लेवें सारे निमन ॥
न काई मनमा न काई चित, न काई मारे रढ़ें एकडी मत ।
एक वचन ममू न कहेवाए, एता ग्राव्यो जाणे पूरनणो दरियाए ।
विम्बने लागी जाणे ग्राग, माहे ग्रगिन वले ग्रगाध ।
कोटानकोट जाणे सूरज उदया, ब्रह्माड न माए झलकार ।
ग्रधलपूर जाणे सायर उलटयो, एक रस थई सनेनार ॥

हृष्टान्त[४०८]

कठिन निपट घाटी प्रेम की ग्रर्वक वको मूरो किनो न ग्रगमाए ।
धार तरवार सिनगार कर, मार्मी ग्र ग माना रोमरोम भराए ॥
सुध सरीर बिसरी गई, बिसरी गया घर ।
कीडी कु जर गली गई, ग्रचरज या पर ॥
ग्रागल एम कह्या छे, ग्राधलो चाने सही ।
ज्यारे भटके भीतनलाटमा, तिहा लगे देखे नहीं ॥
तेना ग्रमने ग्रनुभव्यू, ग्रमे तोहे न जाणी सनध ।
धन लाग्यो कपालमा, ग्रमे तोहे ग्र धला ग्र ध ॥
ग्राप लमम ग्राजू गोप है, ग्रागे होत प्रकाम ।
उदया सूर छिपे नही, गयो निमिर सब नाम ।
कुकरम करो कुटिलगत चार्नो, ग्रागे पीछे चोटी हार ।
वल्लमकुंग्रर तिनको वरजे, कै उनटे सेवक ससार ॥
दोस नही इन खामी केरो, ए तो दुष्ट दासीनी कमाई ।
ग्रधम सिष्य गुरु को बुरा कहावे, पर मोने न लागन स्याही ॥
बीजा वचन भारे केम कहिए, ते ता ग्ररथी विना न ग्रपार ।
केसरी दूध कनकना रे, पात्र विना न समाए ॥
ग्रब ग्रौरनकी मैं क्या कहूं, जो वडको का ए हाल ।
जल जैसे तरग तैसे, उठे माया मोह ग्रहकार ॥

---

४०८. वही, कलस (हिन्दी), प्र० ३, चौ० २, प्रकाश (गुजराती), प्र० ३१, चौ० १३२, रास, प्र० १, चौ० ६४–६५; कलस (हिन्दी), प्र० १, चौ० ४५; किरंतन, प्र० १३, चौ० १७, प्र० १३, चौ० १८; प्र० १२८, चौ० ५६; प्र० २१, चौ० ५

उदाहरण[409]

काल ना देखें इन फेरे, याही तिमिरके फ़ेद ।
ए सूरज आंखो देखिए, पर याही फद के बप ॥
वाम्रो बादल बीजगाजही, जिमी जल न समाए ।
ए पाचो आप देखाएके, फेर ना पैदा हो जाए ॥
या भात अनेक ब्रह्माडमे, देत देखाई दसो दिमा ।
ए मोहजल लेहेरो लेवही, सागर सब एक रस ॥
ऐसा खेल छलका छोडाए नही ।
ब्रह्मांड की कारीगरी सारी करी सही ॥
कबूतर बाजीगर के, जैसे कडियाभरिया ।
सब ही देखे फूंक देहके, तुरत खाली करियां ॥
ऐहेना पात्र हमे ए जोग, आ लीलानो ते लेमे योग ।
केमरी दुध न रहे रज मात्र, उत्तम कनक विना जेम पात्र ॥
अब सुनो रे तुम सैया, कहू सो बीनक बात ।
पानी तो पीउजी ले चले, अब तलफूं मछली न्यात ॥
बोहोत देखें दुख अनेक होएमी, तार्यें उठो ततकालजी ।
जलके जीवको घटजल मे, ज्यों मकडी मोहे जालजी ॥
हाडे हाड पिमाव हैं, पकी बीच जिय भात ।
आराम ना जीवडा होव ही, तो क्यों कर उपजे स्वात ॥
खेले सब देखा देखी, ज्यो चले चीटी हार ।
यो जो अंधे गफलती, बाधे जाए कतार ॥
खेल खेलें आप खदे, मिनों मिनें करें क्रोध ।
जैसे मछ गलागल, छोडे ना कोई अोध ॥

विनोक्ति[410]

ब्रह्मा नही ब्रह्माड मे, विना सुहागिन नार ।

---

४०९. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, प्रकाश (हिन्दी), प्र० १, चौ० १७-१८-१९; प्र० ३१, चौ० १४८-१४९; प्रकाश (गुजराती), प्र० ३३, चौ० ३; प्रकाश (हि), प्र० ८, चौ० ८, प्र० ३०, चौ० १३; प्र० ४, चौ० ३; सनध प्र० १४, चौ० ३३; प्र० १५, चौ० २

४१०. वही, कलस (हिन्दी), प्र० ६, चौ० २३; सनध प्र० २७, चौ० १३; किरतन प्र० ३३, चौ० ५; कलस (गुजराती) प्र० २, चौ० १६; किरतन प्र० २६, चौ० १३; प्र० ७६, चौ० २८; प्र० १०६, चौ० ३

मो विना विरहाना जनें, होए नहीं दिलपाक ।
बिना पुरान प्रकाश न होई, शास्त्र बिना कौन माने ।
एक अक्षर को अर्थ न आवे, तो पारब्रह्म मरम में आवे ॥
बिना अगनी पर जले, अंग काम क्रोध न भाए ।
कणी बिना केम रहेवाए, जा कार्ड़क प्रोतमाए ।
मीनजलबिण जेणी अवाए अन्तरगृह न समाए ॥
पढ़ें गुनें विकार न छूटे, आग न अंग यें जाए ।
आप धनन सोन्हें बिना, सोनोजन्म जिन सोते खाए ॥
ऐं आए अनुभव लेयेके, सो पीछे दिए पटकाए ।
धनी दया अकूर बिना, जिन मन मुख लियो न जाए ॥
भज बिना सब नरक है, पच पच मरिये माहें ।

विभावना[411]

देखो अंधीम महिया, हाय बिना हथियार ।
कोई बहां है जागन, पिंड बिना आकार ॥
घोड़ा लेवे जिमी बिना, पाव बिना दौड़ी जाए ।
जल बिना भवसागर, याभे गज धुए न्हाए ॥
मूल बिना ए वृक्ष बड़ा, ताको फल चाहे सब कोए ।
ए मरम बाजी रची रामन, बहु विधे संसार ।
ए जो नैन देखे श्रवन सुने, सब मूल बिना विस्तार ॥
तेरे बीच बाट घाट न तत्व कोई, तूं करे पाउ बिना पथ ।
निरजन के परे न्यारा, तहा हमारा क्य ॥
गूंथो जासी दोरी बिना, आप बांधो माहें यंग ।
अंग बिना तमें तरफड़ो, कोई ए रामनना रग ॥

मानवीकरण[412]

हवे फिट फिट रे भूडी बुध, तें तव दीधी जीवने सुध ।

---

४११. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० २२, चौ० ६, प्र० २२, चौ० ६; प्र० २२, चौ० १६, किरंतन प्र० ८, चौ० ५ ८; प्रकाश (गुजराती), प्र० ११, चौ० ४

४१२. वही, प्रकाश (गुजराती), प्र० ४, चौ० ६१; प्र० २०, चौ० ५१; प्र० ३०, चौ० २२, किरंतन प्र० ८, चौ० १; प्र० २१, चौ० १; प्र० ७५, चौ० ६-१०; प्र० ७६, चौ० २८

महादुष्ट अभागणी तूं, जांण जीवने कां नव करयूं ।।
मद मत्सर अहंमेव अहंकार, नमे दोड कीधी संसार ।
प्रभात थासे प्रति वेगलो रे, रात छेडा केमे न आवे ।
हो मेरी वासना तुम चलो अगमके पार ।
अगम पार अपार नार, तहां हैं तेरा करार ।
तूं देख निज दरबार अपनों, सुरत एही समार ।।
दुनिया मोह मदकी छाकी, चली जात वेसुध ।
पहाड रोए टूटे टुकडे, हुए हैं भूक भूक ।
भवजल कोया सागर, सो गया सारा सूक ।।
भोम रोई भली भांतसों, टूट गई रसातल ।
नागलोक सब रोइया, सो पडया जाए पाताल ।।
जब चढे विकट घाटी प्रेम।, तब चैन ना रहे कछू नेम ।

अतिशयोक्ति[४१३]

आपण माटे दीठा सही, पण आही जिभ्याएं केहेवाए नहीं ।
भोम कहूवाकाए जो गणाए, साएर लेहेरे उठे जलमाहे ।।
मेघ पण गाजे वली पडे, वनस्पति पत्र कोई नव गणे
जदिप तेहेनो निरमाण थाए, पण धणी तण गुण केमे न गणाए ।
ए भोमनी रेत रंचकने, समान नहीं सूर कोटजी ।
बरनन करूं एक पातकी, सो भी इन जुबां कही न जाए ।
कोट ससी जो सूर कहूं, तो एक पात तले ढपाए ।।

अर्थान्तरन्यास[४१४]

साचूं कहे दुख लाग से, साचूं ते केहेने न सुहाए ।
प्रगट कहिए मोहो ऊपर, त्यारे दोहेला सहूने थाए ।।
चढवूं ऊंचूं बीरक थई, वाटें दु:ख दिए घणा दुष्ट ।
प्रवाह उतरतां सोहेलूं, पण दोहेलू तें चढता पुष्ट ।
सोहेलूं देखी का उतरो रे, आगल दोष अनेक ।।

---

४१३. वही, प्रकाश (गुजराती), प्र० ११, चौ० ८-९; कलस (गु०), प्र० ६, चौ० १७, कलस (हिन्दी), प्र० २०, चौ० २०

४१४. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरंतन, प्र० १२९, चौ० ५; प्र० १२८, चौ० १६

मारू, धनाश्री, धन्या मेवाडो, श्रीराग, केदारो गौडी
कालेरो, हिंडोल गौडी, वेराडी, केदारो, कल्याण, काफी,
पचम, सिंधुडो, बसन्त, मालव, मामेरो, ग्रासावरी, मल्हार,
बहार ग्रादि ग्रादि ।

सगीत मे भाव, लयकारी और रागो का वैविध्य समझने का ज्ञान होना चाहिए और प्राणनाथ मे ये सब होने का प्रमाण कई स्थानों पर मिलते हैं । उनके निम्नलिखित पद मे प्रियतम कृष्ण के साथ रास खेलने वाली गोपिकाओं के हृदय की खुशी हूबहू अभिव्यंजित हुई है—४२५

(अ) लटके गाए, लटके नाचे, लटके मोडे अ ग ।
लटके रामत रेहेस लटके, लटके माई लिए संग ॥

(ब) स्यामा स्याम जोड करता कल्लोल ।
रमे रग रोल, थाए झकझोल, बने एक मतमूं ॥

(स) ठेक वाले छकाईमूं, त ता थेई थेई थाए ।

(द) मृदग चग, तबू रग, अति उमग, गावती सखी स्वर करी ॥

सम्भवतः प्राणनाथ को पिंगलज्ञान से अधिक शुद्ध रूप से शास्त्रीय राग-रागिनियो का ज्ञान था और इसीलिए उनके ऐसे कई पद उत्कृष्ट बन पडे हैं ।

भाषा

भक्तो एवम् सन्तो की भाषा के सदर्भ मे निर्णय करना टेढी खीर के समान है । उन्होने अपने भावो पर ही इतना जोर दिया है कि भाषा आदि कला के अन्य तत्त्वो के महत्त्व का स्वीकार ही नही किया गया । लेकिन प्राणनाथ भाषा की दृष्टि से अन्य भक्तो-सतो से कुछ विशेष व्यक्तित्व रखते हैं । देशाटन के कारण उन्होने अरबी, फारसी, सिन्धी, कच्छी, हिन्दी और उर्दू भाषा का ज्ञानार्जन किया और उसका पूर्ण समझदारी से उन्होने उपयोग किया है । रास, प्रकास, षट्ऋतु और कलस उनकी मातृभाषा गुजराती मे लिखी गयी रचनाएँ हैं, जबकि शेष सभी रचनाएँ हिन्दी-प्रधान रही हैं । सिन्धी रचना सिन्धी भाषा मे ही लिखी हुई है । "किरंतन" मे थोडे पद गुजराती मे लिखे हुए हैं । उनके विविध भाषाज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित पद द्रष्टव्य हैं—

---

४२५. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), अ, प्र० २४, चौ० ५; ब, प्र० २६, चौ० ५; स, प्र० २६, चौ० ६; द, प्र० ३०, चौ० १

गुजराती:[४२६]

धन गयूं ते आव्यूं वली, गयो अंधकार सहू टली ।
सुखना सागर माहे गली, एने बीजो न सके कोए कली ॥

जाटी भाषा[४२७]

एक घोर अंधेरी आंखा नहीं, और ठौर नहीं बुधमन ।
विषम जल ऐसे मिने, पीउ आए मुझ कारन ॥

खड़ीबोली[४२८]

वैराट का फेर उलटा, मूल है आकास ।
डारें पसरी पाताल मे, यो कहे वेद प्रकास ॥

अरबी[४२९]

अस्मा हिंद मुस्लिम, अनी कमन सिदक ।
मा कलम अनी किजबो, मा कुम्म कलमा हक़ ॥

फारसी[४३०]

व लालु हुम्मा ऐयून, खारज बला दखल ।
वल हुम्म लेस इगत्, व ल हुम्म लेस अकल ॥

सिन्धी[४३१]

रे पिरीअम, मगा सो लाड करे ।
हेडी किंज का मुदमे, खिलंदडी लगा गरे ।

परिभ्रमण के साथ प्राणनाथ ने उन भाषाओं का स्वरूप परखा और समयानुकूल उसीका प्रयोग किया है। हिन्दी उर्दू का ज्ञान उनको प्रारंभ से ही रहा होगा क्योंकि उनकी गुजराती रचनाओं मे भी उक्त भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। साथ ही साथ इस बात का भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तरकालीन रचनाओं की अपेक्षा पूर्व कालीन रचनाओं मे गुजराती भाषा का प्रभाव अधिक लक्षित होता है।

इनकी भाषा का ध्वनि एवम् व्याकरण की दृष्टि से परीक्षण करने पर

---

४२६. वही, प्र० १, चौ० ७४
४२७. वही, प्रकाश (हिन्दी), प्र० ७, चौ० १०
४२८. वही, कलस (हिन्दी), प्र० १६, चौ० १
४२९. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, सनंध, प्र० २, चौ० २
४३०. वही, प्र० २४, चौ० ५
४३१. वही, सिन्धी, प्र० ४, चौ० १

इतना अवश्य प्रतीत होता है कि उन्होंने जिन भाषाओं के शब्दों का उपयोग किया है उनको उसी स्वरूप में नहीं दिया, तद्भव रूप ही विशेषत: अपनाया है।

ध्वनि

महा प्राण ध्वनियों का अन्त प्राणत्व यथा, मुज (मुझ), पारखी (पारखी)। समास (समावेश), पोर (प्रहर) आदि। कहीं-कहीं "ह" का लोप किया गया है, जैसे ठरते (ठहरते) और कय (कह्या) आदि।

संज्ञा

मूल रूप "आ" जोड़कर, जैसे बाता (बातें), औरना (औरनें) तथा बहुवचन के विकारी रूपों में "आ" "या" का प्रयोग हुआ है, जैसे हिन्दुआ।

परसर्ग—को, कूं, सो आदि रूप।

सर्वनाम—केरी, केरा, केरे आदि रूप।

क्रियापद—भूतकाल में "आ" अन्तवाले रूपों के अतिरिक्त "या" वाले रूप का प्रयोग किया है, जैसे बहुयाल्या, जाल्या आदि।

स्थानवाचक, कहाँ के लिए "का", यहाँ के लिए "या" का प्रयोग किया है।

उनकी भाषा तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों से युक्त है। लोचन, निकुंज, श्रीफल, सरवर आदि तत्सम शब्द एवम् निरवि, पंजर, बसन, जोति, विलोकि, जुवति जैसे तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। कित, न्यौरा, निपट, मोको, दोउ आदि ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। फारसी में इनाम, किस्सा आदि शब्दों का उपयोग किया है।

प्रो० माताबदल जायसवाल ने हिन्दवी के संदर्भ में चर्चा करते हुए ठीक ही कहा है, हिन्दवी मध्यकाल में ही अन्तर्प्रान्तीय बोलचाल या व्यवहार की भाषा बन गई थी। अतएव, हिन्दू-मुसलमान सब को संबोधित करने वाले निर्गुण संतों ने खड़ीबोली का ही सहारा लिया है। उत्तरी भारत में हिन्दवी साहित्य परम्परा की दृष्टि से प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी प्राणनाथ तथा उनके शिष्य श्यामा लालदास का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[४३२] खड़ीबोली का प्रारम्भिक स्वरूप ही हिन्दवी है। खड़ीबोली के इतिहास में स्वामी प्राणनाथ का नाम अवश्य ही अग्रतम होना चाहिए। आज की खड़ीबोली का प्रारम्भ करने का श्रेय प० लल्लू लालजी को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उनसे पूर्व प्राणनाथ ने ही खड़ीबोली को

---

४३२. स० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड), पृ० ५८६

बानीसाहित्य मे स्थान दिया और उन्होंने ही इसका "हिन्दुस्तानी" नामकरण किया।

उनकी भाषा मे सरलता और मधुरता है, लेकिन जहां कही उपदेश प्रधानता एवम् इस्लाम-हिन्दू धर्म तुलना की चर्चा की गई है वहां पर भाषा का स्वरूप भी कुछ रूखा-सा दिखाईपडता है। जहां पर तीव्र अनुभूति हुई है, वहां पर भाषा ने भी अपना सौंदर्य दिखाया है।

प्राणनाथ का भावपक्ष जितना गहरा और तीव्र है उतना ही कलापक्ष निर्बल-सा दिखाई पड़ता है। लेकिन कहीं-कही पर भावभूमि भी उतनी सबल नहीं बन पायी कि उस अनुभूति की अभिव्यक्ति हो सके। ब्रह्मज्ञान का विषय उन्होने कई रचना में बार-बार कहा है और इसी कारण शुष्कता भी बार-बार दर्शन देती है। न सिर्फ उनके विचारों का ही कई रचनाओं में पुनरावर्तन मिलता है, लेकिन कही-कहीं पर कई पंक्तियां भी वैसे ही पुनरार्वातत हुई हैं—

पतंग कहे पतंगको, कहां रह्या तूं सोए।
मैं देख्या है दीपक, चल देखाऊं तोए॥
के तो ए दीपक नही, या तूं पतग नाही।
पतग कहिए तिनको, जो दीपक देख झंपाए॥
पतग और पतंगको, जो सुध दीपक दे।
सो होवे हास तिन पर, कहे नाही पतगए॥
दीपक देख पीछा फिरे, साबित राखे अंग।
आए देवे सुध और को, सो क्यो कहिए पतग॥[४३३]

ये पंक्तियाँ अन्य स्थान पर वैसे ही ढंग से मिलती हैं।[४३४] इस तथ्य की पुष्टि के लिए चार-पांच उदाहरण दिये जा सकते हैं।

साहित्यिकता की दृष्टि से उनके "किरंतन" के ही कई पद अच्छे बन पड़े हैं।

---

४३३. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० ९, चौ० १७-१८-१९-२०

४३४. वही, सनंध, प्र० ११, चौ० २०-२१-२२-२३

पंचम अध्याय

स्वामी प्राणनाथ के योगदान का मूल्यांकन

हमने स्वामी प्राणनाथ के जीवन, तत्कालीन धार्मिक-राजनीतिक-सामाजिक परिस्थिति में उनकी विचारधारा का प्रचार और प्रसारकार्य एवं उनकी वानियों का साहित्यकता की दृष्टि से अध्ययन किया। यहां इस अध्याय में उन्हीं तथ्यों का समग्र रूप से अवलोकन करेंगे और प्राणनाथ के जीवन एवम् कृतित्व के संदर्भ में निष्कर्ष निकालेंगे।

भारत के धार्मिक इतिहास में प्राणनाथ की विचारधारा और उनके प्रणामी सम्प्रदाय ने अपनी विलक्षणता के कारण अलग स्थान बना लिया है। प्राणनाथ ने बचपन से ही भ्रमणकार्य शुरू किया था और उसीके फलस्वरूप विविध भाषा-भाषी प्रजा के सम्पर्क में आये, विविध धर्मस्थानों का भ्रमण और उनके दर्शन से ज्ञानार्जन किया तथा अपने मानसिक क्षितिज को विस्तृत और धरातल को उन्नत बनाते हुए विभिन्न अनुभवों को उन्होंने आत्मसात कर लिया। उनकी इस अनुभवजन्य मिश्रित विचारधारा में अपनी एक मौलिकता का माधुर्य है। उनकी समन्वयवादी निष्ठापूर्ण प्रवृत्ति ने तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और सफलता भी मिली। उनके अहिंसावादी और मानवतावादी विचारों के लिए पारिवारिक संस्कार एवम् परवरिश भी कारणवश हो सकती है। अपने धर्ममत की अभिव्यक्ति में भी वे अपने राष्ट्र और मनुष्यों को नहीं भूले हैं। बल्कि सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिकता को जीवित रखने का निष्ठापूर्ण प्रयत्न वे जीवन भर करते रहे।

स्वामी प्राणनाथ के योगदान को हम निम्नलिखित तत्त्वों पर से स्पष्ट कर सकेंगे—

(अ) सामाजिक विचारधारा।

(आ) धार्मिक दृष्टिबिन्दु।

(इ) राजनीतिक आदर्श ।

(ई) साहित्य एवम् भाषा की सेवा ।

हमने द्वितीय अध्याय मे प्राणनाथ के सामने जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि जो परिस्थितियाँ थी उन पर विचार किया है। यहाँ पर हम उपर्युक्त तत्वों को प्राणनाथ ने जिस रूप मे देखा, परखा और समस्याओं को सुलझाने की क्या कोशिश की है यही विशेष रूप से देखेंगे।

(अ) सामाजिक विचारधारा

शासकों की धार्मिक संकीर्णता के कारण तत्कालीन भारतीय समाज हतोत्साही एवं उदासीन हो गया था। न सिर्फ हिन्दू मुसलमान के बीच ही वैमनस्य की दीवार खड़ी थी, लेकिन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि धर्मों के मानने वालों मे आन्तरिक विष की धारा बह रही थी। इसी विषाक्त समाज को प्राणनाथ ने अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति से शुद्ध एव प्रेमपूर्ण बनाना चाहा। उनके उदारतापूर्ण विचारो को तत्कालीन समाज ने अवश्य महत्त्वपूर्ण समझा और उनके विचारो को ग्रहण किया। अगर उनकी समन्वयवादी विचारधारा को लोगो ने उत्साह मे स्वीकृत न किया होता तो संभवत. प्राणनाथ सूरत से दिल्ली तक न पहुँच पाते और आज तक प्राणनाथ एवं प्रणामी सम्प्रदाय का जो अस्तित्व है, न रहता। प्राणनाथ ने परम्परित वर्णव्यवस्था का इसीलिए विरोध किया और उसे अनावश्यक समझा की वर्णव्यवस्था ने समाज की स्वाभाविक गत्यात्मकता पर ही आक्रमण कर दिया था। सारा समाज अपने छोटे-छोटे वर्गों मे कीडे की तरह पडा रहे और मनुष्यजाति का पतन लाता रहे यह बात कोई भी समाज सुधारक सहन नही कर सकता। प्राणनाथ मध्यकालीन भारतीय समाज के अग्रगण्य समाज–सुधारक नेता थे। उन्होंने वर्णव्यवस्था के कारण हिन्दू–समाज मे खडी हुई दीवारो को तोड़ना ही मुनासिब समझा। उनकी यह प्रवृत्ति उनको निर्गुण सन्तो के धरातल पर बिठा देती है। वस्तुतः उनकी यह सुधारवादी प्रवृत्ति सगुणपरक भक्ति सम्प्रदायो मे एक विलक्षणता प्रदान करती है। लेकिन आज उन्ही के अनुयायियो मे जाति–पाँति और छुआछूत की मान्यता के दर्शन अवश्य होते हैं। संभवतः वर्तमान साम्प्रदायिक स्वरूप मे इन तत्वो ने इसीलिए प्रवेश कर लिया है कि सम्प्रदाय को विस्तृत हिन्दू–समाज से तिरस्कार नही मोल लेना है। फिर भी प्राणनाथ के लिए यह अवश्य कहा जा सकता है कि कृष्ण के युगलस्वरूप की भक्ति मे भी जाति और वर्णों के परदो को हटाना ही उन्होंने आवश्यक समझा, और अतः वे अपने समय के एक क्रान्तिकारी भक्त थे। डा० अम्बाशंकर नागर ने मध्यकालीन सन्तो के लिए जो विधान किया है वह प्राणनाथ के लिए सम्पूर्ण रूप से लागू होता है। उन्होने कहा है, भारतीय संस्कृति को सब से

बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। इस समन्वय संस्थापन का बहुत कुछ श्रेय मध्यकालीन सन्तों को है। इन सन्तों ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचकर, ज्ञान, भक्ति और प्रेम का अलख जगाया था और जाति तथा धर्म के भेदभाव को मिटा कर उन्होंने "एकेश्वरवाद" और विराट मानव धर्म की स्थापना की थी। ये लोग किसी एक प्रान्त के न होकर समस्त भारत के थे।[1]

प्राणनाथ ने समाज के अंगस्वरूप मनुष्य को महानता दी है और समभाव या सहअस्तित्व का मूल्यवान उपदेश देकर समाज को निर्मल और गतिशील बनाने का प्रयत्न किया है। समाज में जो पारस्परिक वैरभावना घर कर चुकी थी, उसको तोड़ना उन्होंने आवश्यक समझा था। विशृंखल समाज की प्रतिक्रिया में ही उन्होंने अपने सम्प्रदाय को अधिक विकसित स्वरूप दिया। विपाक्त, पाखंडी और वैमनस्यपूर्ण भावना रखने वाले समाज की उन्होंने कटु आलोचना की है। उनका तो यह दृढ़ विश्वास था कि दया और प्रेम में ही द्वेष और तिरस्कार से अधिक शक्ति है। उनके ऐसे जीवन-दर्शन में एक 'फूल की पाखुड़ी' को भी थोड़-सा कष्ट पहुँचाना अधर्म है।[2] यहाँ पर उनके अहिंसा के आदर्श का भी स्वरूप मिल जाता है। यहाँ पर पू० गांधीजी के अहिंसा, सत्य और प्रेम के सिद्धान्त का स्मरण हो जाता है। जिस विश्वबन्धुत्व की बात पर उन्होंने जोर दिया था वैसी ही प्रवृत्ति प्राणनाथ की भी एक प्रमुख अंग बन गयी थी। प्राणनाथ भी पू० गांधीजी की तरह कुरान और पुराण को अपनी प्रार्थनासभा में—साधना कक्ष में—समान स्थान देते थे। उन्होंने मानव-मात्र एक है यही सूत्र जीवन में अपनाया और उसीको आधार बनाकर वे प्रवृत्ति करते रहे। इस एकत्व की भावना की पुष्टि के लिए संतोष, अहंकार त्याग, शूरवीरता, प्रेम आदि तत्त्वों को आवश्यक समझा है और स्थान-स्थान पर उन तत्त्वों को दुहराया हैं।

(आ) धार्मिक दृष्टिबिन्दु

व्यक्ति के अच्छे-बुरे आचार-विचार का प्रतिबिम्ब ही समाज है और उसी समाज का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध है ही। एक स्थान पर डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने कहा है, समाज की धारणा करने वाले तत्त्व धर्म है और समाज है स्व-कर्तव्य का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों का समष्टि स्वरूप। कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेचन करने वाला शास्त्र नीतिशास्त्र कहलाता है। नीतिशास्त्र धर्म का प्रधान अंग है। सामाजिक

---

१. डॉ० अम्बाशंकर नागर, गुजरात के हिन्दी गौरवग्रन्थ, पृ० २३

२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप कलस, प्र० २३, चौ० ४
"दुःख न देऊं फूल पाखुड़ी, देखूं सीतल नैन।
उपजाऊं सुख सब अंगों, बुलाऊं मीठे बैन॥"

व्यक्ति, का धर्म के इस अंग से पूर्ण परिचित होना परमावश्यक है। इस प्रकार व्यक्ति, समाज और धर्म दोनों का मिलन-बिन्दु है। यही कारण है कि जब धर्म का ह्रास होने लगता है तब समाज भी दूषित हो जाता है।[3] अतः समाज की विकृति की जड़ में धर्म की विकृति को ही प्राणनाथ ने देखा। धर्म तो धारण करने वालों की सुसंगठित शक्ति है। प्राणनाथ का यही आदर्श विधान रहा कि धर्म अपने सही अर्थों में कभी भी परस्पर द्वेष-ईर्ष्या या शत्रुता का कारण नहीं हो सकता। फिर भी वे इतना स्पष्ट रूप से मानते थे कि समस्त मानव समुदाय के लिए किसी एक ही धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। परन्तु सभी धर्मों के आदर्शों और सिद्धान्तों में एक से ही तत्व पड़े हुए हैं, इसी बात को केन्द्र में रखते हुए उन्होंने अपने सम्प्रदाय एवं विचारधारा का प्रसार और प्रचार किया था। डॉ० नगेन्द्र ने सतनामी, लालदासी, नारायणी, धरनीदास और प्राणनाथ के पंथो-सम्प्रदायों का नामोल्लेख करने के बाद आगे कहा है कि समग्र रूप से विचार करते हुए इन पंथ-प्रवर्तकों को विशेष महत्व देना अनुचित होगा, क्योंकि इनमें से कोई भी मौलिक प्रतिभावान नहीं था। ...ये लोग तो वानियों के प्रचारक मात्र थे—स्रष्टा नहीं। प्रगति और सुधार का वह दुर्दम उत्साह, दलित आत्मा की वह पुकार, जिसने १५वीं शताब्दी में सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी, इस पतन काल में संभव नहीं थी।[4] वास्तव में यही कहना उचित होगा कि सर्व धर्म-समभाव की बातों को सिद्धान्त रूप में प्राणनाथ पूर्व कबीर जैसे सन्तों एवम् भक्तों ने मान्यता दी, लेकिन व्यावहारिक स्वरूप देने का श्रेय प्राणनाथ को ही मिलता है। प्राणनाथ का सही मूल्यांकन करते हुए श्री क्षितिमोहन सेन ने यही कहा है कि प्राणनाथ द्वारा प्रसारित प्रणामी सम्प्रदाय नैतिकता की शुद्धि, सहिष्णुता, कल्याण और मानवतावादी प्रेम की नींव पर खड़ा था। उनके प्रार्थना-स्थानों पर हिन्दू-मुसलमान एक साथ प्रार्थना एवं भोजन करते थे।[5] यही प्राणनाथ की मौलिक प्रतिभा का परिचयात्मक तत्व माना जा सकता है। प्राणनाथ मध्ययुग की उत्तरकालीन अवस्था के सही अर्थों में प्रमुख समन्वयवादी धार्मिक नेता

---

३. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा, पृ० ३६८

४. डॉ० नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १८–१९

५ Ed. Haridas Bhattacharya, The Cultural Heritage of India, Vol. IV, p. 392.

Their religious life is founded on moral purity, compassion, service, and love of huminity. In their places of worship, both Hindus and Mohmmedans pray and dine together.

थे। तत्कालीन भारत में प्रमुख रूप से प्रचलित हिन्दू मुसलमान और ईसाई धर्मों में एकता की आवश्यकता थी और प्राणनाथ ने सिद्धान्त एवं व्यवहार में उसी एकता को अपनाया था। विशेषतः उन्होंने इस्लाम और हिन्दू-धर्म को एक ही सिद्धान्तों को रखने वाले धर्म के रूप में सिद्ध किया है। लेकिन इस एकता को खंडित करने वाले हिन्दू पंडित और मुसलमान के मौलवी लोग थे। उन पंडितों एवम् मौलवी की उन्होंने भर्त्सना की है। उन्होंने ज्ञानदीप से संसार में व्याप्त माया रूपी अन्धकार दूर करने का प्रयत्न किया और इस प्रकार धर्म के अन्तर्गत ज्ञान का भी महत्व स्वीकार किया। उन्होंने धार्मिक अन्धविश्वासों और बाह्याडम्बरों की प्रतिक्रिया स्वरूप तीर्थव्रत, मूर्तिपूजा आदि का बड़ा विरोध किया है। इसी दृष्टि से उन्होंने प्रेम-लक्षणा भक्ति को ही भक्ति का आदर्श एवं सरल मार्ग बताया है। उनके परब्रह्म अक्षरातीत कृष्ण (श्रीराजजी) निर्गुण-सगुण से भी परे हैं। कबीर जैसे अन्य निर्गुण सन्तों ने हिन्दू-मुस्लिम विरोध का नाश करने का और समन्वय का प्रयत्न किया था, लेकिन तुलसीदासजी की तरह प्राणनाथ ने सामंजस्यपूर्ण वातावरण को उत्पन्न करना ही अधिक उचित एवं आवश्यक समझा। तत्कालीन धार्मिक वातावरण में उनकी इस प्रवृत्ति ने महदंश में सफलता भी प्राप्त की थी।

प्राणनाथ ने न सिर्फ विदेशी धर्मों में से तारतम्य ग्रहण करके दिग्दर्शन किया, लेकिन हिन्दू-धर्म के दो प्रमुख स्तंभ शिव और विष्णु को लेकर चलने वाले धर्मों-सम्प्रदायों में भी एकता स्थापित की। ज्ञान, भक्ति और कर्म का सब से प्रथम समन्वय श्रीमद्भागवद्गीता में हुआ। उसमें वेद का एकेश्वरवाद, ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्मकाण्ड, उपनिषद् के ज्ञान एवं भक्ति का समन्वित स्वरूप मिलता है। लेकिन इस समन्वय का किसी-न-किसी रूप में विरोध चलता रहा। भक्ति में भी प्रेमप्रधान और ज्ञानप्रधान भक्ति स्वरूपों में संघर्ष रहा। लेकिन प्राणनाथ ने भक्ति को समन्वयवादी दार्शनिक पद्धति पर विवेचित किया।

उनकी इस समन्वयवादी धार्मिक मान्यताओं को लेकर प्रणामी सम्प्रदाय में कई विवादास्पद तत्वों ने भी प्रवेश कर लिया। आत्मा और अवतार की बातें विचित्र-सी लगती है और प्राणनाथ की दार्शनिकता को विलक्षणता प्रदान करती हैं। प्राणनाथ ने अपने आपको निष्कलंक बुद्ध अवतार, मसीहा, इमाम मेंहदी अवतार घोषित किया है। आ० परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं, प्राणनाथ ने अपने को कल्कि अवतार अथवा संसार को सुधारकर एक सूत्र में बाँधने वाला मसीहा बतलाया तथा इसके लिए पुराने धर्म-ग्रन्थों के प्रमाणक उद्धृत किये।[६] डॉ० पीताम्बरदत्त

---

६. आ० परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य, पृ० २६३

बड़थ्वाल ने बताया है कि अपने को तो वे मेहदी, मसीहा और कल्कि अवतार तीनों एक साथ समझते थे।[७] आ० चतुर्वेदीजी का आधार लेकर ही डॉ० रतिभानुसिंह "नाहर" ने मध्ययुग के उत्तरार्द्ध के सन्तों की पन्थनिर्माण-प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए कहा है कि इनमे से कुछ तो इतने आगे बढ़े या चेलों द्वारा बढ़ाये गये कि बिहारी, दरियादास दूसरे कबीर बन गये तथा प्राणनाथ ने स्वयं को पुराणों के कल्कि अवतारी तथा मसीहा कहना आरंभ किया।[८] अंग्रेजी विद्वानों में से ग्राउज,[९] रसेल[१०] और ग्रिस्वल्ड[११] का आधार लेकर फर्कुहर ने बताया है कि प्राणनाथ ने सभी धर्मों को अपने में समाहित बताया और उन्होंने अपने को एक ही साथ ईसाई के मसीहा, मुस्लिम के मेहदी और हिन्दू के निष्कलंक अवतार[१२] घोषित किया था। आज के वैज्ञानिक युग मे किसी एक ही व्यक्ति में सभी अवतारों का समाहित होना कभी स्वीकार नही किया जाएगा। लेकिन संभवतः इसीलिए वर्तमान प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी उनके निष्कलंक बुद्धावतार को ही आगे लाते हैं। संभवतः गलतफहमियों से बचने का ही यह एक प्रयत्न है।

उसी प्रकार आत्मा के सदर्भ जो ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरी-सृष्टि और जीवसृष्टि की दार्शनिकता लेकर बताया है कि उनके सभी अनुयायी ब्रह्मसृष्टि की आत्मा है। प्रश्न यही उत्पन्न हो सकता है कि ब्रह्मसृष्टि की आत्माएँ क्या सिर्फ भारत मे ही अवतरित

---

७. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३४
८. डॉ० रतिभानुसिंह "नाहर", भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० २३९
९. Grouse, Mathura, 230 FF.
१०. Russel, Tribes and Castes of the Central Provinces, London, 1916, 216 FF.
११. Griswold, Forman Christian College Magazine, July-Nov., 1905, 216 FF.
१२. Farquahar & Griswold, The Religious Quest of India, pp. 391-392.
Early in the eighteenth century Prannath taught at Panna in Bundelkhand, that all the religions of India were reconciled in his own person, since he was at once the cristian Messiah, the Mohammedan Mahdi, and the Nishkalankavatara, 'the stainless incarnation' of the Hindus and expressed the dogma in his Kuldjama Saheb.

हुई ? संभवत: इसका सुझाव यही हो सकता है कि ये आत्माएँ सारे विश्व में अवतरित हुई और जहाँ-जहाँ अवतरित हुई वहाँ-वहाँ उनको जाग्रत करने का कार्य वहीं पर अवतरित महान् भक्तों एवम् सन्तों ने किया होगा और करते होंगे। ये ब्रह्मवासनाएँ परमधाम में किसी नाम से पुकारी जाती थी यह भी बताया जाता है, जैसे प्राणनाथ इन्द्रावती की वासना, देवचन्दजी श्यामाजी की वासना, मुकुन्द-स्वामी नवरंगबाई की वासना आदि-आदि। उन नामों के लिए कोई प्रमाण नहीं है और श्रद्धा के सिवाय इन तत्वों का स्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन तत्कालीन समाज में धर्म-प्रेरणा एवं एकता लाने के लिए प्राणनाथ ने उन बातों को आवश्यक समझा होगा। वल्लभसम्प्रदाय इससे पहले "स्वरूप" की कल्पना कर ही चुका था। वहाँ अष्टछाप के कवि अष्टसखा है। आगे चलकर यह "स्वरूप" सिद्धान्त अत्यधिक समाहृत हुआ फलत: प्राणनाथ ने इसी के अनुरूप ब्रह्म "प्रियाओं की वासना" के तत्व को जन्म दिया।

(इ) राजनीतिक आदर्श

प्राणनाथ अपने प्रारम्भिक जीवन में राजनीति से सम्बद्धित रहे और उन्हीं अनुभवों के फलस्वरूप उनके राजनीतिक आदर्शों को आकार मिला। राजनीतिक वैमनस्य, अनैतिक राजनीति और असमानता उत्पन्न करने वाली राजनीति के प्रति उनको तिरस्कार था। तत्कालीन राजनीति में ये तीन तत्व थे और इसीलिए प्राणनाथ ने औरंगजेब के धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया था। इसी सदर्भ में ही उन्होंने भारत के हिन्दू राजाओं का एक संगठन बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने महाराज छत्रसाल को राजनीति प्रयत्नों में विजयी बनाने के लिए महान आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की। इसी शक्ति के फलस्वरूप महाराजा छत्रसाल ने हिन्दुत्व की रक्षा का सफल प्रयत्न किया।[१३] प्रो० मातावदल जायसवाल कहते हैं,[१४] भारतीय इतिहास में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा, जिसने श्रीप्राणनाथ की भाँति देश के समस्त राजाओं को संगठित करने का विराट प्रयत्न किया हो। उस

---

१३ प्राणनाथ, किरंतन, प्र० ५७, चौ० १६, २०

असुर लगाए रे हिन्दुओं पर जेजिया, वाको मिले नहीं खानपान।
जो गरीब न दे सके जेजिया, ताय मार करे मुसलमान॥
बात सुनी रे बुन्देले छत्रसालने, आगे आय खडा ले तलवार।
सेवा ने लई रे मारी सिर खेचके, मादये किना सेनापति सरदार॥

१४ प्रो० मातावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ६

समय शिवाजी के ऐहिक जीवन की मशाल बुझ चुकी थी, किन्तु उस मशाल का प्रकाश अब भी छत्रसाल बुन्देला के मानसमंदिर मे टिमटिमा रहा था और धन-जन, विहीन छत्रसाल पराक्रमी धर्म विरोधी औरंगजेब की चतुरंगिणी सेना का सामना कर रहा था। छत्रसाल को अपना शिष्य बनाकर प्राणनाथजी राष्ट्रीयता की इस चिनगारी को ज्योतिर्मय कर दिया। यह बिल्कुल सही है कि मध्यकालमें जन-आन्दोलन का स्वरूप देनेवाला प्राणनाथ के सिवा अन्य कोई व्यक्ति नही निकला। संभव है कि अनैतिक मार्गों पर चलनेवाली राजनीतिक सत्ता को जनआन्दोलन से झुकाने का सर्वप्रथम सुझाव पू० गाधीजी को भी प्राणनाथ के उपदेशो से प्राप्त हुआ हो। क्योकि प्रो० स्टीफन ने गाधीजी की माता को प्रणामी धर्म की अनुयायी के रूप सिद्ध किया है।[१५] स्वामी श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी मानते हैं कि पू० गाधीजी स्वामी लालदासजी के पैत्रिक वंशजो में से ही हुए थे। माना जाता है कि गाधीजी की माताजी नन्हे गाधी को उस प्रणामी मदिर मे ले जाती थी और "कातणी" वाले प्रकरण का प्रभाव गाधीजी पर पडा था।[१६] फिर भी यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि प्राणनाथ का प्रभाव गाधीजी पर किस सीमातक पड़ा होगा। इतना अवश्य है कि गांधीजी के राजनीतिक आदर्श मध्ययुग मे प्राणनाथ ने भी जनसमुदाय के सामने प्रस्तुत कर दिये थे। "त्रैलोकी मे रे उत्तम खण्ड भारत को" कहकर उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना का भी यत्रतत्र परिचय दे दिया है। प्राणनाथ के राष्ट्रीय आदर्श की नींव मे समानता, अहिंसा, सहिष्णुता और अनुकम्पा के तत्त्व पड़े हुए थे।

(६) साहित्य एवं भाषा का महत्त्व

हिन्दीसाहित्य के अन्य भक्तो या सन्तो की तरह प्राणनाथ ने भी अपना काव्यकौशल प्रदर्शित करने के उद्देश्य से रचनाएँ नही लिखी थी। फिर भी सगुणोपासक भक्तों की तरह उन्होने अपने इष्टदेव के ही गुणगान नही गाये। व्यक्तिगत उद्गार और तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल उपदेशो के ही रूप में उनकी वाणी

---

१५. Prof. Stephen, Hoy, East Asian Research Centres, Harward University Cambridge, U.S.A. letter, Dec. 31, 1965.
Gandhi's mother come from a Pranami family in the village of Dantrana (Gujarat). Now it seems to me important to understand Gandhi's mother's religions ideas if we are to understand Gandhi's.

१६. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी (संशोधक एवं संपादक), स्वामी लालदासकृत "छोटी बिरत" (हस्तलिखित), पृ० ३

प्रस्फुटित हुई थी, इसी दृष्टि से उसका मूल्य भी है। वास्तव में वे साहित्यिक नहीं थे और न उनकी रचनाओं को साहित्यिक मानदंड के अनुसार परखना ही उचित है। डा० परशुराम चतुर्वेदी ने मध्यकाल में इन सन्तों एवं भक्तों के संदर्भ में उचित ही कहा है कि उन्होंने काव्यनिर्माण के समय अपना ध्यान काव्यकौशल की ओर नहीं दिया था और न उसमें कभी वे पूर्ण रूप से सावधान ही रहे। उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति एवं सिद्धान्तों के प्रचारार्थ ही कुछ रचनाएँ प्रचलित शैलियों के अनुसार प्रस्तुत कर दीं। ...ये रचनाएँ मनोरंजन के लिए नहीं की गई थीं और न इनका उद्देश्य कभी किसी प्रकार के यश या धन का उपार्जन ही रहा। इनके रचयिताओं ने अपने सामने "कविता कविता के लिए" का भी आदर्श नहीं रखा और न अपनी उन्मुक्त कल्पना के प्रभाव से विविध भावनाओं की सृष्टि कर, एक अपना मनोराज्य स्थापित करने की कभी चेष्टा की। उनकी व्यक्तिगत "स्वानुभूति" में विश्वजनीन अनुभूति की व्यापकता थी और उनके आदर्शपद की स्थिति ठेठ व्यवहार से कहीं बाहर न थी।[१७] प्राणनाथ का भी काव्यरचना के पीछे शुभउद्देश्य या अपने उपदेश को जनसाधारण तक पहुँचाना और जाति-पाँति, धार्मिक मतभेद और गरीब-अमीर के बीच खड़ी दीवारों को जमींदोज करना। फिर भी, उनके ग्रन्थों में से "रास", "षट्ऋतु" और किरन्तन" की कई चौपाइयाँ एवं पद अनुभूति, कल्पना और अभिव्यंजना की दृष्टि से साहित्यिक कही जा सकती हैं। "प्रकाश", "कलस", "परिक्रमा", "खिलवत", "सागर", "कयामतनामा" आदि ग्रन्थों के लिए डा० सीताराम चतुर्वेदी का[१८] मध्ययुग की इन वाणियों के संदर्भ में कहा गया विधान ठीक लागू होता है कि वह मूलतः एकांगी ठेठ दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों में लदी हुई अस्पष्ट उक्तियों का समूह है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्राणनाथ का नाम उनके भाषायी योगदान के लिए अवश्य ही बना रहेगा। हिन्दी या हिन्दुस्तानी को महत्वपूर्ण स्थान देकर मध्यकाल के सन्तों एवं मतों में उन्होंने अपना नाम प्रमुख स्थान पर रख दिया है।[१९] वे संस्कृत, सिन्धी, गुजराती, जाटी, फारसी-अरबी आदि भाषाएँ जानते थे, लेकिन

---

१७. डा० परशुराम चतुर्वेदी, सन्तकाव्य, पृ० ४९

१८. रा०प्र०म० वर्मा द्वारा संपादित "रजत जयन्ती ग्रन्थ" अन्तर्गत डा० सीताराम चतुर्वेदी का लेख "हिन्दी साहित्य का इतिहास" पृ० २५२

१९. प्राणनाथ, सनंध, प्र० १, चौ० १५

बिना हिसाबे बोलियां, मिने सकल जहान।
सबको सुगम जानके, कहूंगी हिन्दुस्तान ॥

हिन्दवी-हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा को ही उन्होंने उचित माध्यम के रूप में समझा। खड़ीबोली गद्य के प्रारंभिक स्वरूप के सर्वप्रथम दर्शन उन्ही की रचनाओं मे होते हैं। यह उनकी मौलिक देन है और अतः आधुनिक हिन्दी गद्य के पिता के रूप मे प्राणनाथ का नाम आगे रहना चाहिए। खड़ीबोली गद्य में पं० लल्लु लालजीकृत "प्रेमसागर" की रचना से लगभग डेढ़ सौ साल पूर्व औरंगजेब के समय मे स्वामी प्राणनाथ ने ही लिखना शुरू किया गया था। इतना ही नही, हिंदी साहित्यकारो मे सबसे पहले प्राणनाथजी ने ही इस भाषा को "हिन्दुस्तानी" भाषा कहा हो, वैसे उल्लेख भी मिलते हैं। हिन्दी भाषा को गौरवपूर्ण स्थान देने का श्रेय प्राणनाथ को मिलता है, लेकिन हिन्दी साहित्य मे इतिहासकारो ने इस तथ्य का उल्लेख करने का श्रेय अभी तक प्राप्त नही किया।

प्राणनाथ को किसी भूमि विशेष, किसी जाति से या किसी सीमित धार्मिक वर्ग से सम्बद्ध मान लेने से उनके आदर्शों एवम् जीवनदर्शन का संकीर्ण मूल्यांकन होगा। वस्तुतः वे विश्व की विभिन्न संस्कृति में एवं धर्मों के समन्वय के मूल प्रवर्तक थे ही, साथ-ही-साथ क्रान्तिकारी समाजसुधारक, आदर्शवादी राजनीतिज्ञ एवं भाषा के अग्रगण्य उत्क्रान्ता थे। मध्यकालीन भारत के इतिहास में स्वामी प्राणनाथ का नाम धार्मिक, सामाजिक एव साहित्यिक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। अर्थात्, भारतीय संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी देन का स्वीकार करना पड़ेगा।

—×—

परिशिष्ट-१

प्रणामी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र जामनगर (नवतनपुरी), सूरत (मंगलपुरी) और पन्ना (पद्मावतीपुरी) है। प्रथम दो केन्द्रों पर गद्दी परम्परा चलती है। प्राणनाथ जी के गुरु देवचन्द्रजी के पश्चात् जामनगर की गृहस्थ गद्दी तथा सूरत की गद्दी फकीरी गद्दी कहलाती है। गृहस्थ गद्दी के अधिकारी गुरु देवचन्द्रजी के पुत्र बिहारीलाल थे जब कि सूरत की फकीरी-गद्दी की परम्परा स्वामी प्राणनाथ से शुरू हुई। लेकिन आज जामनगर स्थित सम्प्रदाय के तीन मन्दिर—खिजड़ा मन्दिर, चालका मन्दिर और श्रीराज मन्दिर-की गद्दी परम्परा अपने-अपने ढंग से भिन्न समझी जा रही है। अतः तीनो परम्परा को यहाँ स्थान दिया गया है।

खिजड़ा मन्दिर (जामनगर) की गद्दी परम्परा

गुरु देवचन्द्रजी
|
आचार्य श्री १०८ केसरीबाईजी महात्मा
|
आचार्य श्री १८० तेजस्वी महात्मा
|
आचार्य श्री १०८ ब्रह्मचारीजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ ध्यानदासजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ मोहनदासजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ फकीरचन्दजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ अमरदासजी महाराज
|

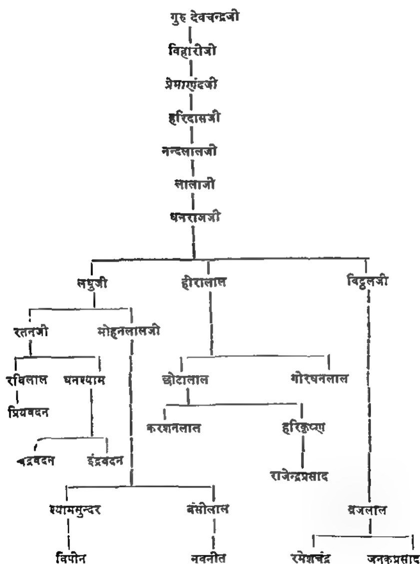
आचार्य श्री १०८ जीवरामदासजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ बिहारीदासजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ सुखलालदासजी महाराज
|
आचार्य श्री १०८ धनीदासजी महाराज

(वर्तमान आचार्य का नाम श्री धर्मदासजी महाराज हैं।)

उक्त गद्दी परम्परा खिजड़ा मन्दिर में लिखितस्वरूप में मिलती है। लेकिन रामजी भोजा नामक साम्प्रदायिक भक्त ने (श्री प्रणामी धर्म प्रकाशना पुस्तक के उत्तर अरजीभाग १, २, पृ० ४७) खिजड़ा मन्दिर की गद्दी परम्परा इस प्रकार दी है—

सतगुरु श्री देवचन्द्रजी
|
मूलशिष्य गागजीभाई तथा तथा गादीवारस गुरु बिहारीजी
|
दत्तकपुत्र परमानन्दजी
|
उसके शिष्य केसरबाई तथा तेजसीबाव
|
ब्रह्मचारीजी श्री ध्यानदासजी
|
मोहनदासजी
|
फकीरचन्द्रजी
|
अमरदासजी
|
जीवरामदास जी
|
बिहारीदासजी
|
सुखलालदासजी
|
परमेश्वरदासजी
|
नेपाल बावाजी श्री दयाल दासजी के शिष्य बावाजी
श्री धनीदासजी

घाकला मन्दिर की गद्दी-परम्परा



श्री कृष्णप्रियाचार्यजी के मतानुसार बिहारीजी के बाद उनके पुत्र नागजीभाई और नागजीभाई के बाद प्रेमाणंदजी गद्दी पर रहे ।

श्री राजमन्दिर की गद्दी परम्परा

गुरु श्री देवचन्द जी

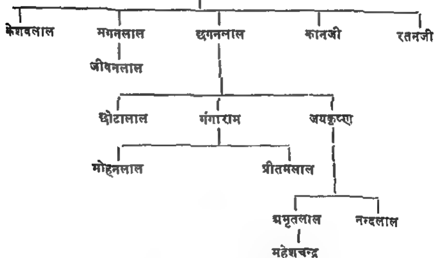
बिहारीजी

बालचन्द्रजी

नारणजी

करसनजी

सुन्दरलाल



मंगलपुरी (सूरत) फकीरी गद्दी परम्परा

स्वामी प्राणनाथ

बाबा श्यामदासजी

गोपालदासजी-महाराज

मोहनदासजी महाराज

पीताम्बरदासजी महाराज

रंगीदासजी महाराज

|

गोपालदासजी महाराज

|

मिहिरदासजी महाराज

लेकिन मणिशंकर कृष्णजी दवे ने (महागुजरातना संतो-महंतो अने महात्माओ, पृ० ७२–७३) सूरत की गद्दी परम्परा बताई है वह इस प्रकार है—

स्वामी प्राणनाथ

|

गोवर्धनजी भट्ट (गोवर्धनाचार्य)

|

मामजी मेहता (मामलाचार्य)

|

अमरेश्वराचार्य

|

मूलचन्द्राचार्य

|

जटाशंकराचार्य

|

कृष्णाचार्य (लालाजी)

|

श्यामदासजी

|

गोपालदासजी

|

मोहनदासजी

|

पीताम्बरदासजी

|

रंगीलाचार्य

|

गोपालदासजी

|

श्री कृष्णप्रियाचार्यजी

|

मिहिरदासजी

उनके कथनानुसार अंतिम आचार्य की नियुक्ति अल्पसमय के लिए हुई थी, क्योंकि तुरन्त ही सन् १९५६ में श्री कृष्णाचार्यजी उस स्थान पर पुनः आ गये। वस्तुत: वर्तमान गद्दी अधिपति श्री मगनदासजी महाराज हैं।

परिशिष्ट-२

साम्प्रदायिक मंदिर "श्री कृष्ण प्रणाम मंदिर" के नाम से ही, विशेषतः अभिहित होते हैं। इन मंदिरों की यथाप्राप्त सूची इस प्रकार है--

सौराष्ट्र-गुजरात

जामनगर, हर्षदपुर, चेलाचाना, जोड़िया, धाफा, चित्रावड़, राजकोट, मेमणी, उपलेटा, तरणसवा, पोरबंदर, जूनागढ, दात्राणा, आवलीवा, मैयारी, अवाणिया, मेदरडा, गीरहडमतिया, साजीआवदर, वाडोआ, अमृतपुर, हीपावडली, अमृतवेल, वणाकवाडा, दीवबंदर, मांगरोल, बंगला, भंजार, सिनोगरा, भद्रेश्वर, भेजपुर, मुद्रा, सूरत, खंभात, लाखावाड, खेडा, वरओला, लीगड़ा, पीपलता, कणजरी, चीखोदरा, टीम्बा, गोधरा, हरकुंडी, सुदलपुर, जैसापुर, सीहोरा, बेचरी, कालोल, अजुपुर, माघरोली, अजरपुरा, अरेरा, महेमदाबाद (माकवा), वडयाल, जाणिया, सिहुज, रुद्रण, वासणा, अहमदाबाद, सोजीआ, बालिन्टा, भिलोड़ा, मालावाड़ा, सोउपुर, मथारी आमली, मिआल, रास, अलिंद्रा, मोल, नार, धर्मज, बड़ोदरा, हेरफतेपुर, (सोनामण), सीमरडा, माढेल, जसपुरा, कुंडाल, बागोदरा, गणदेवी, भरोडा, बलसाड, नानूंदमण, बंबई, सोनगीर --धुलिया।

राजस्थान

जयपुर, डूंगरपुर (तलोद स्टेशन), पदमपुर, सूरतगढ, चूनावड, श्रीकर्णपुर, मेडता, नागोर, उदयपुर, कुडावड, ईसरवास, अजमेर।

मध्यप्रदेश

पन्ना, रानीपुर, मुकरवा, महेवा, भाडेर, सतना, ग्राम दुवगमाकुटी, गूडा, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम।

पंजाब

अमृतसर, अम्बाला, फाजिलका, करनाल, फिरजपुर, जलधर।

उत्तरप्रदेश

मज़ाहिदपुर, शेरपुर, सहारनपुर, हरद्वार, हृषीकेश, जालौन, सुगन, मिर्जापुर, मान्हेपुर, वृंदावन, मथुरा, आगरा, कानपुर, इमौनी, सिमरौना, मनिहाबाद, उन्नाव, कचनपुर, बनारसेरा, सोनाई, बेनीगंज, डोमवापुर, बाराबंकी, (मुंजीगंज), बनारस, संभाई, भैया, इलाहाबाद, आज़मगढ़, ककरामी, रजनवनी, विशुनपुरा, जगदीशपुर, धुरिया (गोरखपुर)।

बिहार

पटना, गोमुना, गंगापुर, नरही, प्रबधापुर, मूर्गी, परमाही, गोमुना, बकड़ा, मधुई।

बंगाल

कालिम्पुग (दार्जिलिंग), पुबगाबस्ती, पोम्बरेबु ग, सिगुनामकमान, सिकुरकमान, पोगककमान, पुलुगढु ग बस्ती, लैरबारी बस्ती।

आसाम

रागमाली बस्ती, घूमावारी चाय बाइन, कमालिया, मुहन्तामूटी, पगडावारी।

दिल्ली

दिल्ली

नेपाल

माठराई देवा, धरान फलेक, काठमाडू, डुवर्स, भागामोली, कालीमाटी, पापाग्राम, तिगाऊं, झिलि, बन्यूम, काशीपोखरा, जनकपुर, श्रोमना डूगा, आहाले, ग्राम मल्लिम, मवकीम, पार्वान बस्ती।

परिशिष्ट-३

प्रणामी सम्प्रदाय की साहित्यनिधि को समृद्ध करने वाले सन्त भक्त कवि एवं विद्वानों की इस सूची में उनके जीवनकाल के अनुसार क्रम रखने का प्रयत्न किया गया है।

नाम	रचनायें
(१) गुरु देवचन्द्रजी	मूल तारतम्य
(२) स्वामी प्राणनाथ	रास, प्रकाश(गु०), कलश(गु०), षट्ऋतु(गु०), प्रकाश (हिन्दी), कलश (हिन्दी), सनन्ध(हिन्दी), किरन्तन (गुजराती, हिन्दी), खुलासा (हिन्दी), खिलवत (हिन्दी), सिनगार (हिन्दी), सिन्धी (सिन्धी), सागर(हिन्दी), मारफतसागर(हिन्दी), कयामतनामा – छोटा और बड़ा (हिन्दी)। शेखमीरांजी का सवाद, कुरान के सवाल-जवाब तीसरा कयामतनामा, कुरान की पत्रिकाएं, सुन्दर साथ के नाम पत्रिकाएं, निगमागम तन्त्र संहिता, जामिलमारफत, छत्रसाल प्रबोध, बीह गिरोह की हकीकत, किताब बानी सा, नज्जुल अरवाह, असारवंजुलवईन, तरकुदुनिया आदि।
(३) तुलजाराम भट्ट (करुणावती सखी)	तारतम्य सागर, पच्चीस पक्ष।
(४) स्वामी लालदास	बीतक, बड़ी वृत्त (पद्य), छोटी वृत्त (गद्य), मोहम्मदसाहब की बीतक अर्थात् मांजजा, बड़ा

	मनोहा (गद्य), श्रीमद्भागवतकी टीका-अनुवाद, स्फुट छन्द ।
(५) स्वामी नवरंग (मुकुन्ददास)	रास, रससागर, लीलाप्रकाश, चिद्विलास, छोटा और बड़ा, महाकारण की विनती, सुन्दर सागर, बीतक, कृष्णसिद्धसागर, पन्द्रहपाखड़ी प्रकरण, तारतम्य की प्रणालिका, भागवत की टिप्पणी तारतम्य (गद्य), तत्त्वसार, गुरु शिष्य संवाद, षट्शास्त्र, गीतासार, बृहदारण्यसार, छान्दोग्योपनिषत्सार, योगारंभ, सिद्धान्त मुक्तावली, प्रेममञ्जरी, खोज के कीर्तन, गेहन नामा, जकड़ी, राम जकड़ी, श्रवण आगमवाणी के, चान्द्रायण ग्रंथ, कीर्तन, अष्टपदी, गुजराती केदारो, श्रीकृष्ण जन्म कीर्तन, श्री राधा जन्म कीर्तन, वसन्त धमार दोल के कीर्तन, श्रीधाम की वृत्त (गद्य), श्रीधाम की वृत्त (पद्य), नामरत्नमञ्जरी, पावसके हिंडोला, प्रकीर्ण कीर्तन, प्रश्नावली (संस्कृत), प्रश्नावली (हिन्दी) ।
(६) छत्रसाल महाराज.	श्रीकृष्ण कीर्तन, श्री रामयशचन्द्रिका, हनुमद्विजय, अक्षर अनन्य के पत्र और जिनके उत्तर, नीतिमञ्जरी, राजविनोद, छत्रविलास, महाराज छत्रसालकृत काव्य, स्फुट पद ।
(७) लालदास	बीतक, स्फुट कवित्त ।
(८) ब्रजभूषण	वृत्तान्तमुक्तावली (बीतक), परमार्थदीपक (गद्य) श्री प्राणनाथजीका जीवन (प), स्फुट पद ।
(९) धर्मसिंह	कवित्त-सवैये ।
(१०) जीवनमस्ताना	पद्य-दोहे ।
(११) बहुरंग	बीतक, स्फुट पद ।

(१२) बख्शी हंसराज	सनेहसागर, श्री कृष्णजूकी पाती, श्री जुगल-स्वरूप वविरह पत्रिका, फागतरंगिनी, बुरहारिनलीला, मिहिरराज चरित्र, विरहविलास, रामचन्द्रिका, बारहमासा
(१३) महात्मा प्रेमदास	बानी।
(१४) स्नेहसखी	बीतक, स्फुट कवित्त।
(१५) एहदी मुकन्द	बानी।
(१६) लल्लूजी महराज (लालसखी)	वर्तमान दीपक, ईश्वर बोधसागर, जीव-चेतावनी, आत्मबोध, श्रुतिविवाह।
(१७) वेणवती	पद।
(१८) लेखराज पजाबी	पचम दोहे।
(१९) भट्टाचार्यजी	निगमार्थप्रदीप, विद्वद्मनी।
(२०) राजा अर्जुनसिंह	बानी।
(२१) मुकुन्द	साखियाँ, पद, ग्रथज्ञानतिलक, ग्रथजागनी-लीला, परमधामवर्णन बोधसागर।
(२२) लाडबाई महाराज	बानी।
(२३) जुगलदासजी महाराज	परमधाम की बडी वृत्ति, मनमोहन रसानन्द सागर, छोटी और बडी मत्री, तारतम्य की प्रणामिका, वैराटनिरूपण, महाकारण।
(२४) गोविन्दराय	बानी।
(२५) रणछोड़दास महाराज	गुरुगीता पद।
(२६) चेतनदास	साखियाँ, पद।
(२७) साहेबदासजी	बानी। बखतवली देवका चरित्र, कयामत-नामा की टीका।
(२८) चंद्रसखी	पद।
(२९) गोपालदास	पद।
(३०) मोहनदास	कीर्तनबानी।
(३१) मेहरदासजी	स्फुट पद।
(३२) ज्ञानदासजी	कीर्तन, पद।
(३३) दर्शनदास भगत	बानी।
(३४) महन्त गोपालदास	प्रदेशी-समाचार, कवितावली, शब्दावली।

(३५) गुलाबदास	पदकीर्तन, ब्रजलीला, रासलीला, और वेनावली के पद, बारामासी।
(३६) सेवासखी	पद।
(३७) मुरलीदासजी	कवित्त, पद।
(३८) सुखानन्ददास	बानी।
(३९) हरिवंश	ब्रजलीला।
(४०) हृदयशाह	हृदयप्रकाश।
(४१) रसरंगजी	बानी।
(४२) हिम्मतदास	पद।
(४३) शिवनाथ	रसरञ्जन।
(४४) कृष्णदास	संक्षिप्त प्रणामित्रा.
(४५) शीतलदास	बानी।
(४६) आनन्दसागर	ब्रह्मविज्ञान भास्कर।
(४७) छबीलदास	स्फुटपद।
(४८) कृष्णदत्त सूरि	विराटपददर्शन।
(४९) सदानन्द गोस्वामी	पद्मावती दर्शन।
(५०) दीनकृष्ण भिखारी	निजानन्दसागर, स्फुट पद।
(५१) पं० मिश्रीलाल शास्त्री	मुक्तिपीठ, पद।
(५२) रामरतनदास "रत्न"	प्रेमरत्नावली।
(५३) कन्हैयालाल भट्ट दीन सेवक	श्री राजनाम स्तोत्र, स्फुट पद।
(५४) कविरत्नजीभाई प्रणामी	प्रणामीगीता, श्री प्राणनाथजीनुं जीवनचरित्र।
(५५) पं० प्यारेलाल	भजन रत्नावली, भ्रमरपुष्पमर्दनम्।
(५६) मोहनमुकुन्द प्रणामी	स्फुटपद, षड्ऋतु (स०), श्री प्राणनाथ वचनामृत (संकलन–प्रो० मानाबदन जायसवाल के सहयोग में।)।
(५७) श्यामदास	पद।
(५८) धर्मदास महाराज	स्फुट पद प्रणामीमत सिद्धान्त, विधिनिषेध, सेवापूजा आदि।
(५९) राजवल्लभ	प्रेमपाठ (संकलन)।

(६०) रणछोड़दास वीरजी	परमधाम प्रणालिका, सृष्टिविज्ञान वर्णन, पातालथी परमधाम (गुजराती)।
(६१) श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी	स्फुट पद, श्रीमतारतम्यानी प्रणालिका (गुजराती), लालदासजी की बीतक (सं०), नवरंगकृत बीतक (स०), करुणावतीकृत बीतक (सं०)।
(६२) मंगलदासजी महाराज	बीतक दर्शन, आत्मसोपान, आत्मपरिचय।
(६३) कृष्णदत्त शास्त्री	निजानन्द चरितामृत, सम्प्रदाय सिद्धांत, प्राणनाथवाणी (स०) आदि।
(६४) मुरलीदास धामी	धर्म अभियान, मुक्तिमार्ग।
(६५) राजदास धामी	स्फुट पद।
(६६) विमलदेवी मेहता	वाणीपरिचय, छत्रसाल।
(६७) टीकानंद	स्फुट पद।
(६८) चिमनलाल मेधा	निष्कलंक बुद्ध।

प्रमुख सहायक ग्रन्थ सूची

(अ) संस्कृत

१. ऐतरीय उपनिषद्
२. ऋग्वेद
३. कुलार्णवतन्त्र
४. केनोपनिषद् शंकरभाष्य
५. छान्दोग्य उपनिषद्
६. तन्त्रसूत्र
७. तैत्तरीय उपनिषद्
८. दशश्लोकी
९. देवी भागवत
१०. धम्मपद
११. न्यायशास्त्र
१२. नारद–भक्तिसूत्र
१३. निगमार्थप्रदीप
१४ बादरायण वेदान्तसूत्र
१५. ब्रह्मवैवर्तपुराण
१६. ब्रह्मसूत्र-शाकर भाष्य
१७. बृहदारण्यक उपनिषद्
१८. भक्ति–रसामृत–सिन्धु
१९. भक्तिरसायण
२०. भविष्यपुराण
२१. महेश्वरी तन्त्र
२२. मुण्डक शाकरभाष्य
२३. लकावतारसूत्र
२४. विवेक चूडामणि
२५. श्वेताश्वतरोपनिषद्
२६. शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र
२७. श्री भाष्य
२८. श्रीमद्भगवद्गीता
२९. श्रीमद्भागवत
३०. साहित्य दर्पण
३१. सुबोधिनी।

(आ) हिन्दी

१ अरब और भारत के संबंध — अनु० रामचन्द्र वर्मा
२ अलकुरान — सेल
३ अशोक के फूल — आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
४. आईने अकबरी — अबुल फजल

५.	आर्यसंस्कृति के मूलाधार	डा० बलदेव उपाध्याय
६.	इंजील (धर्मग्रन्थ)	—
७.	इस्लाम धर्म की रूपरेखा	राहुल साकृत्यायन
८.	उत्तरी भारतकी सन्तपरम्परा	आ० परशुराम चतुर्वेदी
९	औरंगजेब के उपाख्यान	जदुनाथ सरकार
१०.	कबीर	आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
११.	कबीर ग्रन्थावली	डा० श्यामसुन्दरदास
१२.	कबीर की विचारधारा	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
१३	कला और साहित्य	डा० गोवर्द्धन शर्मा
१४.	कविवर बिहारी लाल और उनका युग	डा० रणधीर सिन्हा
१५.	काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध	डा० उमा मिश्र
१६.	काव्य के रूप	डा० गुलाबराय
१७.	काव्यशास्त्र	डा० भगीरथ मिश्र
१८.	कुरान (धर्मग्रन्थ)	—
१९.	कुरान और गीता	पं० सुन्दर लाल
२०.	गुजरात के हिन्दी गौरवग्रन्थ	डा० अम्बाशंकर नागर
२१.	गोरखबाणी	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
२२.	चिन्तामणि	पं० रामचन्द्र शुक्ल
२३.	छत्रपति शिवाजीचरित्र	वामन सीताराम मुकादम
२४.	छत्रप्रकाश	लालकवि
२५.	छत्रसाल ग्रन्थावली	सं० वियोगी हरि
२६.	जैनधर्म	कैलाशचन्द्र शास्त्री
२७.	तौरेत (धर्मग्रन्थ)	—
२८.	दर्शन-दिग्दर्शन	राहुल साकृत्यायन
२९.	दूसरा प्रणाम	प्रो० माताबदल जायसवाल
३०.	धर्म और दर्शन	डा० बलदेव उपाध्याय
३१.	धर्म और समाज	डा० राधाकृष्णन्
३२.	नाथसम्प्रदाय	आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
३३.	निर्गुणकाव्यदर्शन	सिद्धिनाथ तिवारी

	...श साहित्य : सास्कृतिक भूमि	डा० मोती सिंह
	...ग्रापत्र सग्रह	महाराजा का संग्रहालय, पन्ना
	पन्नाराज्य का इतिहास	बाबू नगेन्द्रनाथ
.	पाहुड दोहा	मुनिरामसिंह
...८.	प्राण सगली भा० १–२	नानक
३६	बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास	गोरेलाल तिवारी
४०.	बुन्देल वैभव	गोरीशकर द्विवेदी
४१.	बौद्धदर्शन	डा० बलदेव उपाध्याय
४२.	भक्तिआंदोलन का अध्ययन	डा० रतिभानुसिंह "नाहर"
४३.	भागवत सम्प्रदाय	डा० बलदेव उपाध्याय
४४.	भारतवर्ष का इतिहास	ईश्वरीप्रसाद
४५.	भारतीयदर्शन	डा० बलदेव उपाध्याय
४६.	भारतीयदर्शन शास्त्र का इतिहास	डा० देवराज
४७	भारतीय सस्कृति	शिवदत्त ज्ञानी
४८.	भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास	सत्यकेतु विद्यालकार
४६.	भारतीय साहित्य की सास्कृतिक रेखाएँ	आ० परशुराम चतुर्वेदी
५०.	मध्यकालीन धर्मसाधना	आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
५१	मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ	ड ० सावित्रि सिन्हा
५२.	मध्यप्रदेश का इतिहास	डा० हीरालाल
५३.	महाकवि भूषण	भगीरथप्रसाद दीक्षित
५४.	महाराजा छत्रसाल बुन्देला	डा० भगवानदास गुप्त
५५.	मिश्रबन्धुविनोद भा० १–२	मिश्रबन्धु
५६.	मुगलकालीन भारत	आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
५७.	रहस्यवाद और हिन्दी कविता	डा० गुलाबराय और डा० शम्भुनाथ पाडे
५८.	राजस्थान का इतिहास	कर्नल टॉड
५६.	राधावल्लभ सम्प्रदाय . सिद्धान्त और साहित्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक

६०.	राष्ट्रभाषा प्रचार समिति	रजत जयन्ती ग्रन्थ (वर्धा प्रकाशन)
६१.	रासलीला–एक अध्ययन	सेठगोविन्ददास, अग्रवाल
६२.	विश्वधर्मदर्शन	श्री साँवलिया विहारीलाल वर्मा
६३.	वैष्णवधर्म	आ० परशुराम चतुर्वेदी
६४.	सन्तकाव्य	आ० परशुराम चतुर्वेदी
६५.	सन्त-वैष्णवकाव्य पर तान्त्रिक प्रभाव	डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
६६.	सन्त साहित्य	डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया
६७.	सस्कृति के चार अध्याय	रामधारीसिंह "दिनकर"
६८.	सिद्धात और अध्ययन	डा० गुलाबराय
६९.	सूर सागर	सूरदास
७०.	सिद्ध साहित्य	डा० धर्मवीर भारती
७१.	सूफीमत : साधना और साहित्य	रामपूजन तिवारी
७२.	हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, भाग १	स० श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
७३.	हिन्दी-काव्य की निर्गुणधारा मे भक्ति	डा० श्यामसुन्दर शुक्ल
७४.	हिन्दीकाव्य मे निगुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल
७५.	हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
७६.	हिन्दी कृष्णकाव्य पर पुराणो का प्रभाव	डा० शशि अग्रवाल
७७.	हिन्दी कृष्णकाव्य मे माधुर्योपासना	डा० श्यामनारायण पाडेय
७८.	हिन्दी गद्य का विकास	डा० प्रतापनारायण "गौतम"
७९.	हिन्दी वीरकाव्य	डा० टीकमसिंह तोमर
८०.	हिन्दी सन्त साहित्य	डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
८१.	हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)	सं० धीरेन्द्रवर्मा, ब्रजेश्वरवर्मा
८२.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा

	...ा साहित्य : सांस्कृतिक भूमि	...साय : सम्प्रदाय
	...पत्रावली संग्रह	डा० रामचन्द्र ...
	पन्नाराज्य का इतिहास	...आर्ज ग्रियर्सन
		डा० नगे...
.	पाहुड दोहा	
...८.	प्राण सगली भा० १	
३६.	बुन्देलखण्ड का स...	
४०.	बुन्देल वैभव ...–२	ज्ञान मंडल प्रका...
४१.	बौद्धदर्शन	डा० सरोजनी कुल...
४२.	भक्ति...	डा० राधाकृष्णन्
४३.	भा...	प्रो० रामदास गौड़
४४.	...हुस्तान की कहानी (संक्षिप्त)	प० जवाहरलाल नेहरू
४५.		
४६		

गुजराती

१	गुजरातनु संस्कृति दर्शन	प्रो० कुंजविहारी महेता, प्रो० रमेश शुक्ल
२.	गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास	गोविन्दलाल हा० देसाई
३	गुजरातीग्रोए हिन्दी साहित्यमा ग्रापेलो फालो	डाह्याभाई देरासरी
४.	गुजराती साहित्य-परिषद्–२०मुं सम्मेलन-अहेवाल	साहित्य परिषद, अहमदाबाद
५.	गुजराती हाथप्रतोनी संकलित यादि	प० के० का० शास्त्री
६.	चरोतर सर्वसंग्रह भाग १–२	स० पुरुषोत्तम शाह, चन्द्रकान्त शाह
७.	जामतमाची	गुणवन्तराय आचार्य
८	धर्मवर्णन	प्रा० आनन्दशंकर ध्रुव
६.	धर्मानु मिलन	डा० राधाकृष्णन्
१०	नव-दशमी गुजराती साहित्य परिषदनो अहेवाल	साहित्य परिषद्, अहमदाबाद
	प्राचीन कवियो तथा तेमनी कृतिग्रो	रमणिक श्रीपतराय देसाई
	प्राचीन काव्य मंजरी	जेठालाल त्रिवेदी

१३.	प्राचीन काव्यसुधा भा० १-२-३	सं० छगनलाल रावल
१४.	बृहदकाव्यदोहन	सं० इच्छाराम सूर्यराम देसाई
१५.	भारतनो धार्मिक इतिहास	शाह देवजी लल्लुभाई
१६.	भारतमां अंग्रेजी राज्य	पं० सुंदरलाल
१७.	मध्ययुगनी साधनाधारा	क्षितिमोहन सेन
१८.	महागुजरातना संतो, महन्तो अने महात्माओ	मणिशंकर करसनजी दवे
१९.	महोत्सव ग्रन्थ	फार्बस साहित्यसभा, बंबई
२०.	वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास	दुर्गाशंकर शास्त्री
२१.	श्री प्रणामी धर्मप्रकाश	पोपटभाई शास्त्री
२२.	श्रीमद्‌भगवत् गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र	बालगंगाधर तिलक
२३.	श्री यदुवंशप्रकाश	कवि मावदानजी
२४.	सौराष्ट्रनो इतिहास	शम्भुप्रसाद देसाई
२५.	हिन्दीना विकासमां गुजरातीओनो फालो	जनकशंकर दवे
२६.	हिन्दी साहित्यनो इतिहास	किसनसिंह चावडा
२७.	हिन्दुवेद धर्म	आ० आनन्दशंकर ध्रुव

(ई) अंग्रेजी

1.	A Brief History of Indian people	Sir W. W. Hunter
2.	A Dictionary of Islam	Zuhirruddin Ahmed
3.	A History of Indian Literature	Winternitz
4.	A History of Indian Philosophy	Das Gupta
5.	Alberun India	Suchan
6.	An Advance History of India (1950)	R. C. Majumdar

	...ch of the ...ry of Hindustan	H. G. Keene
	...study in the Theory ... Avtaras	Dr. Bhagvandas
.	Aurangzeb	Lane Poole
10.	Bombay Gazetteer Vol 1	
11.	Bombay Gazetteer, Cutch, Vol. 5	
12.	Bombay Gazetteer–Kathiawar, Vol. 8	
13.	Bombay Gazetteer Vol 9, Part II	
14.	Castes and Class in India	G. S Ghurye
15.	Cultural History of Gujarat	M R Majumdar
16	From Akbar to Aurangzeb	W. H Moreland
17.	Gorakhnath and Kanphata Yogies	Briggs
18.	Gujarat and its Literature	Dr. K M. Munshi
19.	History of Aurangzeb, Vol. III	Jadunath Sarkar
20.	History of Buddhist Thought	Edward J Thomas
21.	History of India (1000 to 1707)	A L Shrivastava
22.	History of India, Vol. I	Elliot
23.	Indian Philosophy, Vol II	Dr. Radhakrishnan
24.	India's Past	Macdonell
25.	India–What can it teach us ?	Max Muller
26.	India–Since 1526	V. D Mahajan
27.	India History–A Review	Baijnath Puri

28.	Influence of Islam	Dr. Tarachand
29.	Kabir and Kabir Panth	H. G Westcott
30.	Leviticus	—
31.	Lord Prannath	P. Krishnamurty Iyer
32.	Mathura District Memoir	F S Grows
33.	Medieval Jainism	Dr. Bhasker Anand
34.	Medieval Mysticism of India	K M. Sen
35	Mughal Administration	Jadunath Sarkar
36.	Mughal Government and Administration	Shri Ram Sharma
37.	Mughal Painting	Percy Brown
38.	Mulbar, Vol. I	Logan
39.	Muslim Rule in India	Dr. Ishwari Prasad
40.	Mysticism-Old and New	A W. Hopkinson
41.	New Testament	—
42.	Our oriental Heritage	Will Durant
43.	Obscure Religious Cults	S. K. Gupta
44.	Panna Gazetteer	—
45.	Religions of India	Barthe
46.	Religious Sects in India among Hindus	D. A. Pai
47.	Religious Systems of the World	Edward C. Brown
48.	Shakti and Shakta	John woodreoffe
49.	Sikh Religion, Vol. 1–2	M. A. Macauliff
50.	Six system of Indian Philosophy	Max Muller
51.	Studies in Islamic	R. A. Nicholson
52.	The Cambridge History of India, Vol. I	Ed. Richard Burn

Cambridge History of India, Vol. III	Ed Richard Burn
The Cambridge History of India, Vol. IV	Ed. Richard Burn
55. The Comparative Study of Religions	A G. Widgery
56. The Cultural Heritage of India	Ed. Haridas Bhattacharya
57. The Emperor Akbar Etc.	Frederick Augustus
58. The History and Culture of the Indian People, Vol. 5	Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay
59 The Kashf-Al-Mahjub	A. L. Hujwiri
60. The Medievel India	Dr. J. E. Carpainter
61 The Mystics of Islam	Nicholson
62. The Oxford History of India	V. Smith
63. The Preaching of Islam	T. W. Arnold
64. The Religions of India	A. P. Karmarkar
65. The Religions Quest of India	J N. Farquhar H. D. Griswold
66 The Shaktas	Payne
67 The Story of the Cultural Empire of India	P. Thomas
68. Tribes and Castes of the Central Provinces, Vol 1	R V. Russel
69. Vaishnava faith and Movement	Shushilkumar De
70. Vaishnavism, Shaivism and other minor Cults	Dr. Bhanderkar
71. Why Religions die ?	Pratt

(उ) हस्तलिखित ग्रन्थ

१. कुलजमस्वरूप	स्वामी प्राणनाथ
२. प्राणनाथ की होशवाणी के ग्रन्थ	सं० श्री कृष्ण प्रियाचार्यजी महाराज
३. स्वामी लालदासकृत बीतक	सशोधक श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज।
४. स्वामी लालदास की "छोटी विरत"	सं० श्री कृष्णप्रियाचार्य जी महाराज

(ऊ) पत्र-पत्रिकाएं

हिन्दी

१. कल्याण-सन्त अंक, भक्ति अंक, उपदेशांक, तीर्थांक, सन्तवाणी अंक
२. गंगा-पुरातत्वांक
३. धर्मयुग, ५ सितम्बर, १९६५
४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१५, व० ६३, अं० २, मार्च, १९६५, अंक १
५. श्री सर्वेश्वर-वृन्दावन अंक
६. सप्तसिन्धु, अगस्त, १९६४
७. सम्मेलन पत्रिका, भा० ४१, अं० १
८. साहित्य सन्देश, सन्त अंक
९. हिन्दी अनुशीलन, व० १०, अं० ४-५
१०. हिन्दुस्तानी (त्रैमासिकी), अप्रेल, १९३२

गुजराती

१. अखंड आनन्द, जुलाई, १९५९
२. श्री प्रणामी धर्म पत्रिका, उपदेशांक, भजनांक, मुकुन्दवाणी अंक, रस सागर अंक, नौतनपुरी महात्म्य अंक।

३. श्री प्राणनाथ सन्देश, रामाक, प्रणामी साहित्य अंक, जागृति अंक, पद्मावतीपुरी महात्म्य अंक ।

अंग्रेजी

Journal of Royal Asiatic Society of Bengal

(ए) अप्रकाशित शोध प्रबन्ध—

(१) गुजरात की हिन्दी सेवा — डा० अम्बाशंकर नागर ।

(२) हिन्दी साहित्यको गुजरात के सन्त कवियों की देन — डा० रामकुमार गुप्त ।